कला पुस्तक माला का तृतीय पुष्प

चरित्र निर्माण

अथवा

भावी विश्वराज्य और उसकी नागरिकता

[देशभक्त ला० हरदयाल के ग्रन्थ
Hints for Self Culture
के आधार पर]

लेखक
आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री

—❀—

भारती साहित्य मन्दिर, देहली

(मूल्य तीन रुपया)

सोल एजेण्टस्—
एस० चांद ऐण्ड कम्पनी
चांदनी चौक, देहली।

प्रथम वार

तारीख १५ जुलाई सन् १६३७ ई०।
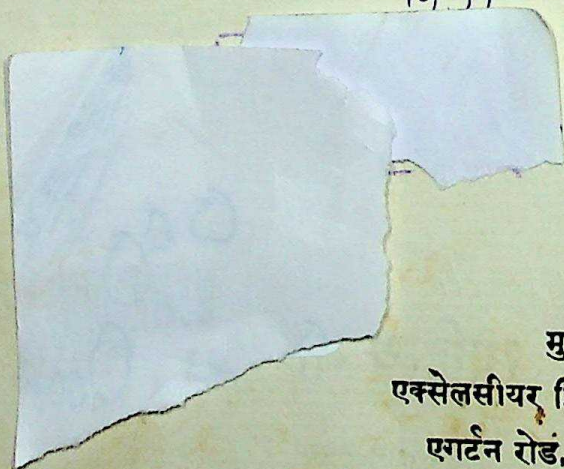
मुद्रक—
एक्सेलसीयर प्रिंटिंग प्रेस
एगर्टन रोड, देहली।

भावी विश्वराज्य

के

नवयुवक नागरिकों

को

समर्पित

उपहार

श्रीयुत ____________________

____

____
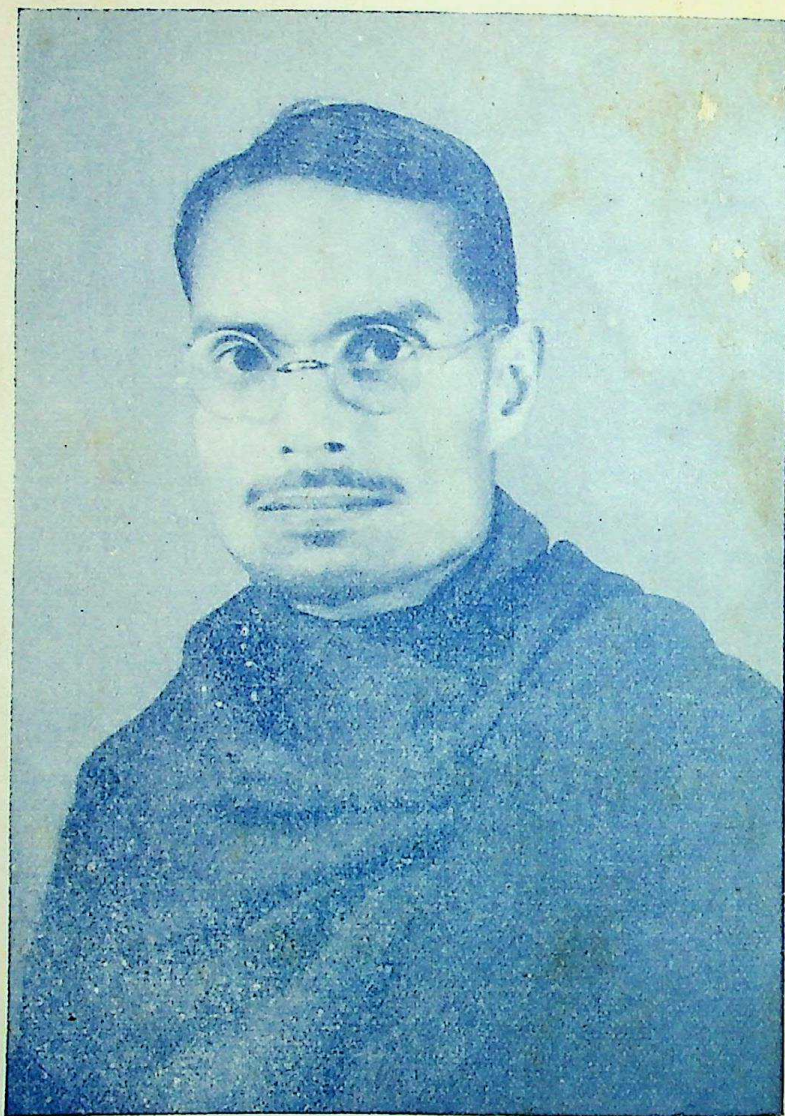
आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री,

M. O. Ph., H. M. D.

काव्य-साहित्य-तीर्थ-आचार्य,

प्राच्य विद्या वारिधि, आयुर्वेदाचार्य,

भूतपूर्व प्रोफ़ेसर बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी।

प्रस्तावना

यह ग्रन्थ वास्तव में हमारे पूर्व ग्रन्थ 'आत्म निर्माण, का ही उत्तर भाग है । इसकी रचना देशभक्त लाला हरदयाल जी के ग्रन्थ Hints for Self Culture के उत्तरार्द्ध के आधार पर की गई है ।

पूर्व ग्रन्थ में विश्वराज्य के भावी नागरिकों की बुद्धि, शारीरिक शक्ति और ललित रुचि के निर्माण का यत्न किया गया था। किन्तु इसमें उनके चरित्र को निर्माण करने के सिद्धान्त बतला कर भावी विश्वराज्य की रूप रेखा भी दे दी गई है। इसमें विश्वनागरिक के व्यक्तिगत आचरण के सिद्धान्तों और नैतिक उन्नति करने के उपायों को बतलाने के पश्चात् उन व्यक्तिगत कर्तव्यों का वर्णन किया गया है, जो हमारा विश्व के असमर्थों, रोगियों, निर्धनों और संस्थाओं के प्रति है ।

इस प्रकार व्यक्तिगत नीतिशास्त्र का वर्णन करके इसमें देशीय नीतिशास्त्र का वर्णन किया गया है। इस विषय में एक केन्द्र वाले पांच वृत्तों—कुटुम्ब, सम्बन्धियों. अपनी म्यूनिसि-

पैलिटी, अपने राष्ट्र और विश्वराज्य का वर्णन किया गया है ।
राष्ट्रीयता को सामाजिक और असामाजिक दो भागों में विभक्त करके उस पर इतना सुन्दर प्रकाश डाला गया है कि तुरन्त ही विश्वराज्य का आदर्श सामने आ जाता है। इसके पश्चात् का लगभग आधा ग्रन्थ भावी विश्वराज्य के वर्णन से भरा हुआ है । ग्रन्थ के इस अंश को विशुद्ध राजनीतिक अंश कह सकते हैं। इसमें भावी विश्वराज्य की रूपरेखा देने के पश्चात् उसके अर्थशास्त्र का वर्णन करते हुये भविष्य की उत्पत्ति, खपत और बटवारे के सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है। इसके अन्तिम अध्याय का तो नाम ही राजनीति है। इसमें अनेक शासन-प्रणालियों के दोषों का विवेचन करने के पश्चात् दिखलाया गया है कि भावी विश्वराज्य में जनतंत्र शासनप्रणाली (Democracy) ही शान्ति स्थापित कर सकती है; नियमित राजतन्त्र प्रणाली, अनियमित राजतंत्र प्रणाली, अल्पसत्तात्मक शासनप्रणाली, पार्लमेंट प्रणाली, बहुमत प्रणाली, पुलिस अथवा सैनिक शासन नहीं। फिर इसमें स्वतंत्रता और समानता के भावी कार्यक्रम का वर्णन करके भूमण्डल भर की मनुष्य जाति के प्रति भ्रातृभाव का वर्णन करके:—

"मैत्रीप्रमुदितकारुण्यमाध्यस्थानां सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनयेषु" के उपदेश का स्मरण कराया गया है।

इस ग्रन्थ को वास्तव में ही नमीन युग का नवीन धर्मशास्त्र

अथवा नवीन स्मृति कहना चाहिये। वास्तव में युग २ में धर्म और धर्मशास्त्र बदल जाया करते हैं। इस समय राजाओं को ईश्वर का अंश अथवा अपने राष्ट्र के स्वार्थ के लिये दूसरे राष्ट्रों को अपना शत्रु समझने का समय बीत चुका है। अब तो समस्त मनुष्यजाति के अपने २ प्रान्तों और राष्ट्रों तक की सीमा को भूलकर एक हो जाने और समस्त भूमण्डल में शान्ति स्थापित करने का समय है।

संसार के इतिहास में सैनिकवाद का इतना प्रचण्ड रूप कभी नहीं था, जितना आजकल है। प्रतिक्रिया विश्व का अनिवार्य और आवश्यक सिद्धान्त है। पानी के नलों में पानी इसी सिद्धान्त से चढ़ाया जाता है कि उसको जितना नीचे गिराया जायगा वह उतना ही ऊपर चढ़ेगा। अतएव संसार की शान्ति को इस समय जितना ही अधिक गिराया जावेगा, वह उतना ही अधिक ऊपर उठेगी। पिछली दशाब्दी में गतमहायुद्ध के बाद राष्ट्रसंघ (League of Nations) के रूप में प्रतिक्रिया हुई थी। किन्तु महायुद्ध सैनिकवाद का उच्चतम आदर्श नहीं था, इसी कारण उसकी प्रतिक्रिया राष्ट्रसंघ भी शान्ति के उच्चतम आदर्श की स्थापना न कर सकी। किन्तु आज का सैनिकवाद अपने भयंकर से भयंकर रूप पर पहुंच गया है। अतः यह भविष्यवाणी करना अत्यंत उचित है कि उस सैनिकवाद की प्रतिक्रिया स्वरूप ऐसी विश्वजनीन क्रान्ति होगी, जिसमें संसार भर की सैनिक सत्ताएं नष्ट हो जावेंगी और उनके स्थान

में समस्त विश्व में शान्ति का संदेश देने वाला विश्वराज्य स्थापित होगा। इस क्रान्ति की यह विशेषता होगी कि यह भगवान् महावीर, गौतम बुद्ध अथवा महात्मा गान्धी के शब्दों में पूर्ण अहिंसामयी क्रान्ति होगी । उस समय संसार भर में सत्ययुग का साम्राज्य होगा और सब कहीं

सत्यं शिवं सुन्दरम्

का दृश्य ही उपस्थित होगा।

नं० ८११ धर्मपुरा, देहली।
तारीख १ जौलाई १९३७ ई०

चन्द्रशेखर शास्त्री

—❀—

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ

चरित्र निर्माण

अथवा

भावी विश्वराज्य और उसकी नागरिकता

चतुर्थ खंड

चरित्र निर्माण

आत्म संस्कृति के शेष सभी विभागों का अन्तर्भाव नैतिक संस्कृति में हो जाता है। आचार नीति मनुष्य को सम्पूर्ण कर्तव्य की शिक्षा देती है। यह जीवन की एक मात्र स्वामिनी है। आपके सब विचारों और कार्यों का सम्बन्ध सबसे प्रथम और सबसे अधिक नीति शास्त्र (आचार नीति) से है। आपके विचार नैतिक अथवा अनैतिक ही हो सकते हैं। इस प्रकार नीतिशास्त्र का आपके व्यक्तित्व के गहनतम प्रदेश में भी अस्तित्व है. आपके कार्य अच्छे हों अथवा बुरे, नीतिशास्त्र के अनुसार वह सब ढाले जाते हैं और उनपर विचार किया जाता है। प्रतिक्षण आप ठीक अथवा गलती कार्य करते रहते हो। खड़े होते, बैठते, बातचीत करते, काम करते और यहां तक कि स्वप्न देखते समय भी आप नीति शास्त्र के अनुसार आचरण करते हो अथवा उसके विरुद्ध करते हो। नीतिशास्त्र

सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् है। उससे आप के जीवन में कुछ बच नहीं सकता।

नीतिशास्त्र के दो विभाग किये जा सकते हैं—(१) व्यक्तिगत नीतिशास्त्र, जिसमें व्यक्ति और परिवार का वर्णन किया जाता है; (२) राज्य-नीति शास्त्र, जिसमें राज्य और उसकी संस्थाओं का वर्णन किया जाता है। राज्यनीति शास्त्र के फिर भी राजनीति (Politics) और अर्थशास्त्र (Economics) दो भेद हैं।

नीतिशास्त्र के यह दोनों विभाग कैंची के दो फलकों के समान अप्रथक् और एक दूसरे के आश्रित होते हैं। व्यक्तिगत नीतिशास्त्र का राजनीति के साथ उत्थान और पतन होता है, इसी प्रकार राज्यनीति भी व्यक्तिगत नीति के साथ बदलती रहती है। गुणी व्यक्ति अच्छी २ राजनीतिक (Political) और आर्थिक (Economical) संस्थाओं का निर्माण करते और उनको चलाते रहते हैं। इसी प्रकार अच्छी संस्थाएं ही गुणी नागरिकों को उत्पन्न करती हैं। व्यक्तिगत नीति बुरी संस्थाओं के आधीन शोभित नहीं हो सकती; और उत्तम संस्थाओं का बिगड़े हुए और पतित व्यक्तियों से अस्तित्व नहीं रह सकता। व्यक्ति और राज्य के बीच में सदा ही क्रिया और प्रतिक्रिया होती रहती है। व्यक्ति और संसार के राज्यों की आवश्यकताएं और कार्य उस प्रकार अनिवार्य रूप से एक ही होते हैं, जिस प्रकार लघुचित्र में परमाणु ही सौरजगत् रूप दिखलाई देता है। जिस प्रकार आरोग्यजनक जलवायु में ही

स्वास्थ्य उत्तम सकता है, उसी प्रकार व्यक्तिगत आचरण की पूर्णता भी केवल पूर्ण राज्य में ही संभव है। कुछ अध्यापकों ने व्यक्तिगत नीतिशास्त्र का प्रचार किया है, किन्तु उन्होंने राज्य की नीति के महत्व को नहीं समझा; संभवत उनका यह विश्वास है कि आचरण का विकास सभी संस्थाओं में सामान्य रूप से हो सकता है। वह एक विशेष प्रकार के व्यक्तिगत गुण पर ही जोर देते हैं और राजनीतिक तथा आर्थिक समस्याओं पर वाद विवाद नहीं करते। एक बहाई (Bahai) प्रचारक ने मुझ से कहा, "हम सभी राज्यों (शासन प्रणालियों) में शांतिपूर्वक रह लेते हैं"। मैंने उत्तर दिया, "हम सभी राज्यों (सरकारों) को सुधारने का यत्न किया करते हैं"। अनुभव बतलाता है कि स्वेच्छाचारी सरकार और पूंजी पति राज्य में औसत स्त्री और पुरुष सत्यभाषी, ईमानदार और निःस्वार्थ नहीं होते। बड़े से बड़े साधु और महात्मा भी—यदि वह स्वेच्छाचार, अन्याय और असमानता के अधार वाले समाज में रहते हों तो अवश्य ही अपराध करेंगे। राजनीतिक तथा आर्थिक सामीप्य (environment) के प्रभाव से पूर्णतया कोई नहीं बच सकता। यूनानी और चीनी तत्त्वज्ञानियों ने व्यक्तिगत नीति और राज्य की नीति के मौलिक सम्बन्ध को पहचाना था। उन्होंने व्यक्ति और राज्य दोनों ही के उद्देश्य को खोजने और उसकी व्याख्या करने का प्रयत्न किया था। वर्तमान काल में कुछ विद्वान् इस प्रकार की गलती

करने लगे हैं कि वह केवल राजनीतिक और आर्थिक संस्थाओं पर ही पूर्णतया ध्यान देते हैं और व्यक्तिगत नीति के विकास की बिल्कुल उपेक्षा करते हैं। उनका विश्वास है अच्छी संस्थाएं स्वयं ही व्यक्तिगत नीति को उत्पन्न करती हैं। इस व्यक्तिगत नीति को वह राज्य की नीति से ही उत्पन्न होने वाला एक अंश समझते हैं। वह उन दोनों को समान और एक दूसरे के आश्रित नहीं मानते। वह नागरिकों द्वारा पहिने हुए वस्त्र को सदा ही बदलते और बार बार क्रम देते रहते हैं, किन्तु वह स्वयं मनुष्य की ही ठीक २ रक्षा करने के लिये स्वास्थ्यविज्ञान की शिक्षा नहीं देते। वह इस महान् सत्य को भूल जाते हैं कि व्यक्तिगत नीति और राज्य की नीति एक साथ उठती और गिरती हैं। जिस प्रकार एक चिकित्सक रोगी के लिये औषधि देने के साथ ही साथ कमरे की वायु को भी शुद्ध करने की व्यवस्था करता है उसी प्रकार आपको अपने को व्यक्तिगत उन्नति के साथ ही साथ राजनीतिक और आर्थिक संस्थाओं के सुधार में भी लगा देना चाहिये। अपने व्यक्तिगत और सामाजिक सामीप्य में एक साथ सुधार करके उन्नति करो। क्योंकि बुरी, उपेक्षा की हुई और कीचड़ वाली सड़क पर बड़े भारी मूल्य वाली नयी मोटरकार भी अच्छी तरह नहीं चलाई जा सकती। इस प्रकार राजनीति और अर्थशास्त्र नीतिशास्त्र के पूर्णतया भाग हैं और उससे प्रथक् नहीं किये जा सकते।

प्रथम अध्याय

व्यक्तिगत नीतिशास्त्र

व्यक्तिगत नीतिशास्त्र के तीन आधार हैं—(१) विनयानुशासन (२) उन्नति और (३) समर्पण। विनयानुशासन प्रतिषेधात्मक है। उसका उद्देश्य मनोविकार, प्रभाव और भूख के कार्यों पर उसी प्रकार शासन करना है, जिस प्रकार माली अपने पौदों को संवारता रहता है। उन्नति बढ़ने—शरीर, मन और आत्मा के विकसित होने तथा व्यक्तित्व के अधिक से अधिक विस्तृत तथा धनी बनने को कहते हैं। जिस प्रकार माली पौदों को खाद, धूप और हवा देता है, उसी प्रकार यह विध्यात्मक है। अपने विनयानुशासन वाले और उन्नत व्यक्तित्व को मनुष्यजाति और विश्व-राज्य की सेवा में उसी प्रकार लगाना चाहिये जिस प्रकार वृक्ष स्वादिष्ट और रसीले अनेक फल देता है।

इसको समर्पण कहते हैं। यह आचार शास्त्र का तीन प्रकार का कार्य है।

नीतिशास्त्र के सिद्धान्त

आराम कुर्सी तोड़ते रहने वाले दर्शनिकों के द्वारा अपनी बनजड़ पुस्तकों और कठिन रचनाओं में वर्णन किये हुए भिन्न २ प्रकार के सिद्धान्तों का अध्ययन करने की आपको अधिक आवश्यकता नहीं है। नीतिशास्त्र में सिद्धान्त व्यवहार के पश्चात् आता है, न कि उससे पूर्व। प्राणियों में गुण स्वयमेव उत्पन्न होकर पूर्णता को प्राप्त होते हैं; और उस समय विद्वान् तथा सिद्धान्तवादी लोग उसके कारण और विकास के प्रकार को खोजना आरम्भ करते हैं। किन्तु वह न तो उसका निर्माण करते हैं और न कर ही सकते हैं। इस प्रकार के सभी कार्यों की कल्पना को गोएथे ने निम्नलिखित शब्दों में व्यर्थ बतलाया है—

"प्रिय मित्र सभी सिद्धान्त श्वेत हैं,
केवल जीवन का सुनहरा वृत्त ही हरा है।"

जाति के इतिहास में भी व्यवहार सिद्धान्त से पहिले था; क्योंकि मनुष्य प्लैटो, अरस्तू और कपिल से भी बहुत पहिले से ही साधुशीलता का आचरण किया करते थे। इन लोगों ने तो बहुत बाद में गुण के कारण और उसकी प्रकृति के कारणों के सम्बन्ध में वाद विवाद किया था। व्यक्तिगत जीवन में भी नैतिकता की शिक्षा बाल्यावस्था में ही दे दी जाती है। वह उन अच्छी आदतों पर निर्भर करती है, जो बुद्धि के दार्शनिक

वादविवाद को समझने योग्य परिपक्व होने से बहुत पहिले ही बन जाती हैं। नीतिशास्त्र की उन्नति और नवीन नैतिक विचारों के आविष्कार के लिये हम इस विषय के विशेषज्ञों के बहुत कम ऋणी हैं। इस प्रकार की महत्वपूर्ण उत्पादिका स्फूर्ति नये २ धर्मों के सम्पादकों और दर्शनों के प्रणेता बड़े २ धर्मप्रवर्तकों और महात्माओं के द्वारा प्रगट किया हुआ चमत्कार है। इस प्रकार नैतिक सिद्धान्त बिल्कुल महत्वपूर्ण नहीं है और वह अध्ययन का एक तुच्छ विषय है।

आपको विभिन्न नैतिक सिद्धान्तों का अध्ययन करना चाहिये। स्टाएक्स† (Stoics) लोगों का स्वाभाविक अन्तर्दृष्टि वाद; ईसाइयों का ईश्वर वर्णन का अन्तर्दृष्टिवाद; कैंट का विनयी साहित्य का अन्तर्दृष्टिवाद; प्लैटो, प्लाटीनस (Plotinus) और कडवर्थ (Cudworth) का अध्यात्मिक अन्तर्दृष्टिवाद; ऐरिस्टीपस (Aristippus) और मैक्स स्टर्नर (Max Stirner) का व्यक्तिगत आनन्दानुभूति वाद; एपीक्यूरस (Epicurus), हेल्वेटियस (Helvetius), बेनथम (Bentham), और मिल (Mill) का सामाजिक आनन्दानुभूतिवाद; अरस्तू (Aristotle) और कोम्टे (A. Comte) का परोपकार

† स्टाएक्स लोग ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी के ज़ेनो (Jeno) नामक दार्शनिक के अनुयायी थे। ज़ेनो का सिद्धान्त था कि प्रकृति और हेतु से मिलकर चलने ही से सुख प्राप्ति हो सकती है। वह ईश्वर को संसार का आत्मा मानता था।

करने की शक्ति का सिद्धान्त: नीत्शे (Nietzsche) का स्वार्थ-वाद सम्बन्धी शक्ति का सिद्धान्त; शापेनहोर(Schopenhauer) का, साइनिक्स* लोगों (cynics) और बौद्धों का भिक्षुवाद का सिद्धान्त; स्पेन्सर (Spencer), हक्सले (Huxley) और बर्गसन (Bergson) का विकासवाद का सिद्धान्त; बटलर (Butler) का हिताहित विवेक का सिद्धान्त; हचेसन (Hutcheson) का नैतिक-बुद्धि का सिद्धान्त; थ्रैसीमैचस (Thrasymachus) और होब्स (Hobbes) का राजनीतिवाद; सिगविक (Sidgwick) और रैशडल (Rashdall) का परोपकार सम्बन्धी अन्तर्दृष्टिवाद आदि आदि अवश्य मनन करने योग्य हैं। किन्तु यह सभी सिद्धान्त केवल काल्पनिक मन बहलाव हैं। क्योंकि यह उसी कार्य के कारण की व्याख्या करते हैं, जिसको हम पहिले से ही ठीक समझे बैठे हैं। किसी भी सिद्धन्त ने नीतिशास्त्र का निर्माण अथवा विकास नहीं किया। नीतिशास्त्र अपने उद्गम, उन्नति, और जीवनशक्ति के लिये अभ्यास और व्यक्तित्व का ऋणी है।

आपको पता लगेगा कि सर्व सामान्य और विस्तृत नैतिक विधियां भी अधिक सहायता नही किया करतीं। आपको कैंट

---

*—साइनिक्स सम्प्रदाय ऐथेन्स के ऐन्टिस्थीन्स (Antisthenes) का स्थापित किया हुआ है। इसका जन्म ईसा पूर्व सन् ४४४ में हुआ था। वह धनिक, कला, विज्ञान और आमोदप्रमोद सभी के विरुद्ध घृणा का प्रचार करता था।

के विश्व-नीतिशास्त्र के प्रसिद्ध नियम और बर्ट्रैण्ड रसेल (Bertrand Russel) के इस नये विचार को अवश्य ही जान लेना चाहिये, "इस प्रकार कार्य करो, जिस से विपरीत अभिलाषाएं उत्पन्न न होकर समान अभिलाषाएं उत्पन्न हों"।

एपिक्टेटस (Epictetus) ने आत्म-पूर्णता की भावना की परीक्षा इस प्रकार निकाली है, " आप परमात्मा को किस प्रकार की वस्तु समझते हैं ? जो सुगमता से कार्य कर सके, जो आनन्दस्वरूप हो और जिसके कार्य में कोई विघ्न न डाल सके।........बुद्धिमान् पुरुष ऐसे प्रत्येक कार्य से बचने की चेष्टा करता है, जो उसकी इच्छा शक्ति से स्वतंत्र हो। ......जो अपनी शक्ति से बाहिर की वस्तुओं की इच्छा करता अथवा उनका लोभ करता है, वह न तो सच्चा और न स्वतंत्र ही हो सकता है"। स्टाएक्स (Stoics) लोग प्रायः प्रकृति से अनुरोध किया करते थे। डायोजीन्स लेर्टियस (Diogenes Laertius)इस विषय में कहता है "ज़ेनो ने कहा है कि प्रकृति के अनुसार जीवन व्यतीत करना ही निश्चय से सबसे उत्तम कार्य है। प्रकृति के अनुसार जीवन व्यतीत करना ही गुण के अनुसार जीवन व्यतीत करना है; क्योंकि प्रकृति ही मनुष्य को गुणी बनाती है।" अरस्तू (Aristotle)का सिद्धान्त है कि"गुण दो अशुभ कार्यों—अत्यन्त अधिक करने और कम करने में--छोटी दशा है।" ईसाईयों, कनफ्यूसियन धर्म वालों, हिन्दुओं और महायान सम्प्रदाय के विध्यात्मक और प्रतिषेधात्मक स्वर्ण नियम भी नैतिक सिद्धान्त के

इसी प्रकार के स्थाई गुल्ले हैं। किन्तु आप निम्न प्रकार की सूक्तियों से व्यवहारिक नैतिकता के विषय में अधिक शिक्षा ग्रहण नहीं कर सकते——"दूसरों के साथ वही व्यवहार करो, जो आप उनसे अपने लिये करने की इच्छा करते हो;" "दूसरों के साथ ऐसा व्यवहार मत करो, जो आप उनसे अपने लिये कराना नहीं पसन्द करते," "दूसरों में वही भावना रक्खो, जो आप उनकी अपने सम्बन्ध में चाहते हो, " इत्यादि। बेनथम तथा स्वार्थवादियों का यह अविष्कार है कि 'बड़े से बड़े आनन्द को अधिक से अधिक परिणाम में प्राप्त करो'। हर्बर्ट स्पेंसर ने लिखा है "सब से अधिक विकसित प्राणि--मनुष्य—के द्वारा किया हुआ सबसे अधिक उच्च कोटि का आचरण ही नीति शास्त्र का विषय है"। कोम्टे (Comte) ने कहा है——"दूसरों के लिये जियो, खूब खुल कर रहो। " इस प्रकार के सभी संक्षिप्त सामान्य नियम बुद्धि के मन बहलाव के रूप में अवश्य ही परिपूर्ण हैं, किन्तु यह आपको आपके दैनिक जीवन में मार्ग-प्रदर्शन नहीं कर सकते। आपको जीवित रहने के लिये प्रकृति के भोजन और जल की आवश्यकता है, न कि दर्शनशास्त्र की प्रयोगशालाओं में तयार करके एकत्रित की हुई गोलियों और शरबत की।

सबसे बड़ा उत्तम कार्य

सबसे बड़ा उत्तम कार्य क्या है? आपको सब से उत्तम कार्य के ईश्वरीय और अध्यात्मिक सभी सिद्धान्तों को छोड़ देना

चाहिये। मनुष्य के जीवन का उद्देश्य "ईश्वर की इच्छा के अनुसार कार्य करना." अथवा "ईश्वर की नकल करना" अथवा "ईश्वर में मिल जाने के उपाय का अन्वेषण करना" नहीं है, जैसा कि ईश्वरवादी हमको अपने पूर्ण विश्वास से आचरण करने को कहते हैं। मनुष्य के लिये परमात्मा की नकल करना उतना ही असम्भव है, जितना पुच्छलतारे अथवा घड़ियाल की नकल करना। मनुष्य ईश्वर की आज्ञा का पालन भी नहीं कर सकता, क्योंकि 'परमात्मा' की आज्ञाओं का न तो किसी को पता है और न हो ही सकता है। दान्ते (Dante) ने लिखा है—"उसकी इच्छा में ही हमारी शान्ति है।" मध्यकालीन दार्शनिक जान गर्सन (John Gerson) ने कहा है, "परमात्मा कार्यों को अच्छा होने के कारण पसंद नहीं करता, किन्तु वह उसके लिये आवश्यक होने के कारण अच्छे हैं। इसी प्रकार जिनको वह मना करता है, वह बुरे हैं।" यह अपने पूर्ण रूप में ईश्वर का वर्णन है। यह दासतापूर्ण आदर्श स्वतंत्र स्त्री और पुरुष के योग्य नहीं है। 'इस्लाम' का अर्थ ही ईश्वर की इच्छा में 'आत्मसमर्पण' कर देना है। किन्तु मनुष्य को अपना समर्पण दूसरे को करना ही क्यों चाहिये? और परमात्मा की इच्छा का ही किस प्रकार निश्चय किया जा सकता है? ईरानियों तथा अन्य रहस्यवादियों की शिक्षा है कि परमात्मा में लय हो जाना ही उच्चतम उद्देश्य है।" नसफी कहता है, "हे साधु! क्या तू समझता है कि तेरा अस्तित्व

परमात्मा से स्वतंत्र है ? यह बड़ी भारी गलती है" ? "परमात्मा का प्रेम" ही इस अत्यंत अभीप्सित ऐक्य को प्राप्त करने का सर्वोत्तम साधन हैं। जलालुद्दीन रूमी कितने मीठे ढङ्ग से—किन्तु खेद है कि गलत—गाता है:—

हे प्रेम ! तू एक सुहावना पागलपन है !
तू हमारे सब कष्टों का चिकित्सक है !
तू अभिमान को कम करने वाला है,
तू हमारे आत्माओं का प्लैटो और गैलेन है ।

इस बात को स्मरण रक्खो कि सबसे बड़े उत्तम कार्य के ईश्वर के विचार से निकाले हुये सभी सिद्धान्त समुद्रीतट के उस घोरबालू (quicksand) के समान होते हैं, जिसमें जाकर असावधान घूमने वाले डूब कर मर जाते हैं। उन सिद्धान्तों में केवल थोथे शब्दों के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। वह थोथे शब्द साबुन के भागों के समान चमकीले होते हैं, और केवल बच्चों को ही अच्छे लगते हैं। जिस समय आप चरित्र सम्बन्धी किसी व्याख्यान में निरर्थक शब्द 'ईश्वर' को सुनो तो तत्काल समझ लो कि वक्ता अब व्यर्थ का प्रलाप करने वाला है ।

सबसे बड़े उत्तम कार्य के अध्यात्मिक सिद्धान्त का विकास मुख्यरूप से हिन्दुओं, ईसाई रहस्यवादियों और प्लैटो के अनुयाइयों ने किया है; उनका सिद्धान्त है कि मौलिक द्वैतवाद ही मानव व्यक्तित्व है। शरीर और मन को विनाशीक समझा जाता है, जबकि 'आत्मा' को अजर और अमर माना जाता है।

हमको शरीर और मन का दमन करने तथा 'आत्मा' का विकाश करने की शिक्षा दी जाती है। शरीर को 'आत्मा का जेलखाना, बतलाकर उसकी निन्दा की जाती है। पुद्गल (Matter) को सभी कष्ट और दुःखों को उत्पन्न करने वाला समझा जाता है। अतएव आत्मा के पुद्गल से पूर्णतया छुट जाने—(मोक्ष) को ही जीवन का आदर्श बतलाया जाता है। प्लैटो अपने ग्रन्थ फेडो (Phaedo) में कहता है "वास्तव में आत्मा उसी समय सबसे उत्तम तर्क कर सकता है, जब उसके ध्यान को शब्द, रूप, दुःख अथवा सुख कोई भी न बटावें; उसकी प्रवृत्ति यथासंभव अधिक से अधिक अन्तर्मुख हो, शरीर की उसको बिल्कुल सुध न हो और वह बिना शरीर के सम्बन्ध की अपेक्षा किये आविष्कार में परिश्रम करने योग्य हो।" यह 'अध्यात्मिक आदर्श मानव व्यक्तित्व के इस भयंकर प्रकार से टुकड़े २ करके उसका अंगभंग कर देता है जिस प्रकार प्राचीनकाल में अभागे अपराधियों को घसीटा जाता, काटा जाता और शूली पर लटका दिया जाता था। व्यक्तित्व के आधार भूत शरीर से घृणा की जाती है; व्यक्तित्व के प्रकाशभूत मनको भूलने की चेष्टा की जाती है; व्यक्तित्व के हिन्डोले रूप समाज की उपेक्षा की जाती है; जबकि कल्पित 'आत्मा' को मनुष्य का सारतत्त्व समझा जाता है। अतएव सबसे बड़ा कर्तव्य यही है कि समय शान्ति, ध्यान और समाज से तटस्थ रहने का मध्यपरिमाण में पालन किया जावे। बौद्ध लोग भी, आत्मा की वास्तविकता का निषेध

करते हुए, निर्वाण की इच्छा से इसी उद्देश्य को अपनाये हुए हैं। उनके मतानुसार निर्वाण बिना शारीरिक तथा मानसिक विकास के केवल ब्रह्मचर्य और ध्यान से ही प्राप्त किया जा सकता है। पूर्ण मनुष्य को बहुत कम खाना और पीना चाहिये; उसको प्राय: उपवास करना चाहियें; उसको न तो विवाह करना चाहिये, न बच्चे पालने चाहियें; उसको विज्ञान, शिक्षा अथवा कला के पचड़ों में नहीं पड़ना चाहिये; उसको सामाजिक सेवा करने अथवा राजनीतिक कार्यों में व्यस्त रहने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार के शरारती अध्यापक मानव व्यक्तित्व के सभी तत्त्वों को वास्तव में उसी प्रकार नष्ट कर देते हैं, जिस प्रकार एक मूर्ख बादाम के अन्दर की पौष्टिक गिरी को फेंककर उसके छिल्के को ही खाने की चेष्टा करता है। इसके परिणाम-स्वरूप मूर्ख और निर्बल 'साधुओं को, यदि वह उपवास और जन्म भर शारीरिक तपश्चरण करके अत्यंत कृश और दुर्बल हो जाते हैं तो 'पूर्ण मनुष्यों' की पदवी दी जाती है। भारतीय योगी, सूफी दुरवेश, ईसाई रहस्यवादी और 'शरीर' तथा 'आत्मा' के मौलिक विभेद में विश्वास रखने वाले अन्य भी इसी प्रकार के साधु होते हैं। यह सबसे बड़ा अध्यात्मिक उत्तम कार्य अपने आप को कष्ट देने वाले उन धार्मिक दीवाने फ़कीरों और साधुओं को भी उत्पन्न करता है, जो आत्मा के हित के लिये शरीर को अनेक प्रकार से कष्ट और यातनाएं देते हैं।

कभी २ तो वह ओरीजेन* (Origen) और रूसी धार्मिक पक्षपातियों के समान शरीर का अंगभंग कर देते हैं। सच्चा सामाजिक आचरण गंदे भैरवी चक्र की अपेक्षा ब्रह्मचर्य और मिताहार से किया जाता है। उसमें व्यक्तित्व के दुःख पूर्ण हास्यचित्रों की 'पवित्र पुरुष' कह कर प्रशंसा नहीं की जाती। इस प्रकार की 'पवित्रता' खोखलेपन के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। मनुष्य जाति की उन्नति के विरोधी, मूर्ख, स्वार्थी, और निष्फल प्रतिबिम्ब संसार में पूज्य 'अध्यात्मिक' नेता के रूप में अकड़कर चलते हैं। वह न तो कुछ जानते हैं और न कुछ करते हैं। वह अपने स्वास्थ्य को बिगाड़ते हैं। अर्थशास्त्र और राजनीति से वह एक देहाती किसान के समान अनभिज्ञ होते हैं। विज्ञान और कला में उनकी कोई अभिरुचि नहीं होती। वह जीवन के उस पूर्ण शून्य को प्राप्त करने के लिये यत्नशील रहते हैं, जहां केवल शीत और मृत्यु का ही साम्राज्य है। इस सत्यानाशकारी सिद्धान्त की मूर्खता और व्यर्थता का दिग्दर्शन साइमियन स्टाइलाइट्स्† (Simeon Stylites) जैसे यतियों

---

*ओरीजेन (सन् १८६ से २५४ तक) एक ईसाई सम्प्रदाय का प्रवर्तक था।

†यह पांचवीं शताब्दी का शाम (Syria) का एक साधु था। इसके विषय में कहा जाता है कि वह ऐनटिओक (Antioch) के पास एक थम्भे पर तीस वर्ष तक रहा। वह वहीं से जनता को धर्मोपदेश दिया करता था।

के व्यर्थजीवन के करुणाजनक चित्र से किया जा सकता है। थेबेस (Thebes) ज़िले (मिश्र) के उन्मत्त दीवाने, सदा अंधेरी गुफ़ाओं और कोठरियों की दीवारों में बंद रहने वाले तिब्बत के बौद्ध भिक्षु, अपने शरीर से पृथ्वी को नाप २ कर लम्बी २ धार्मिक यात्राएं करने वाले हिन्दू साधु, कभी न बोलने वाले (सदा मौन रहने वाले) ट्रैपिस्ट साधु[1] (Trappists) और अपने मठ से कभी बाहिर न जाने वाली ईसाई भक्त स्त्रियां (Nuns) आदि भी इसी प्रकार की उदाहरण हैं। यह उत्साही स्त्री पुरुष आध्यात्मिक तपश्चरण से धीरे २ आत्मघात के मार्ग पर अग्रसर होते जाते हैं।

स्वर्ग की कृत्रिमता

'मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग प्राप्ति' मोक्ष में अविनाशी आनन्द' 'सुखावती के अमिताभ के राज्य में पुनर्जन्म' आदि को भी सब से बड़ा उत्तम कार्य माना गया है; ईश्वरवाद की सहारा मरु भूमि में "स्वर्ग" की इस मृगतृष्णा ने सत्यान्वेषियों के अनेक धार्मिक यात्रीदलों को भटका कर मृत्यु और विनाश के मुख में डाल दिया। ईसाईवाद, इस्लाम, और कुछ बौद्ध सम्प्रदाय इस प्रकार के ललचाने वाले प्रलोभनों और वचनों में विशेषता प्राप्त किये हुए हैं। उत्तम आचरण को

१—ईसाईयों की इस सम्प्रदाय की स्थापना सन् ११४० में नारमन्डी में ला ट्रैप (La Trappe) ने की थी। यह लोग मौन, प्रार्थना, अध्ययन और शारीरिक श्रम से अपना जीवन व्यतीत करते हैं।

पैराडाइज (Paradise), वल्हला * (Valhala), एलीसियम (Elysium); स्वर्ग और जन्नत के आमोद प्रमोद और आन्दोलन का उसी प्रकार पहिले से दिया हुआ मूल्य समझा जाता है, जिस प्रकार आप किसी नाट्यशाला में अपना किराया देकर अपने लिये पहिले से ही स्थान सुरक्षित करा लेते हैं। यह आवश्यक रूप से नीच और आनन्दवाद का सिद्धान्त सामान्य से सामान्य स्त्री पुरुषों में भी शुभाचरण के मूल्य स्वरूप भौतिक पारितोषिक प्राप्त करने की आशा उत्पन्न करके उनको पहिले से भी अधिक स्वार्थी और इन्द्रियलोलुप बना देता है। यह निम्न कोटि के अहंकार और लोभपूर्ण नैतिकता में हिसाब रखने के योग्य मूल्य की किस्त लगाता है। आचरण शास्त्र के आकर्षण के केन्द्र को 'इस जन्म' से 'परजन्म' में बदलकर यह सामाजिक उन्नति का प्रतिरोध करके उसमें बाधा पहुंचाता है। इस जीवन और इस संसार को 'अश्रुगर्त' 'अल्पकालीन विदेश वास' और 'विषय यात्रा' कह कर उसके महत्व को कम किया जाता है, और स्वर्ग को 'वास्तविक घर' और 'विश्राम का स्थान' बतलाया जाता है। धार्मिक ईसाई परोपकारी डबल्यू. विल्बरफोर्स (W. Wilberforce) ने अपनी बहिन को लिखा था, "मनुष्य को सभी मानवी वस्तुओं की निःसारता और अल्पकालीनता. इस जीवन के केवल मार्ग रूप और हमारे घर का, जहां परमात्मा के मनुष्य

---

* युद्ध में मरे हुए वीरों का लोक।

रहते हैं........ ...व्यवहारिक ध्यान करने का उद्योग करना चाहिये।" उसने हन्ना मोर (Hannah More) को भी एक पत्र में लिखा था "मेरी ग़रीब स्त्री के लिये मृत्यु पाप और दु:ख के लोक से पूर्ण पवित्रता और अनन्त सुख के लोक की प्राप्ति होगी।" ब्राउनिंग (Browning) ने इस मर्मस्पर्शी कपट को इस प्रकार कविता रूप में प्रगट किया है—

"एक ऐसा लोक है, जहां अनन्त सूर्य,

अनन्त प्रकाश देते हैं..........................

इस अन्धकार पूर्ण जेलखाने से उस पवित्र द्रव्यागार की ओर देखना उस स्वर्गीय वायु में एक बार श्वांस लेना भी ओहो! कितना प्रतापपूर्ण है।"

इस प्रकार का 'परलोकवाद' जनता और उनके नेताओं की स्वच्छता, अर्थशास्त्र, शिक्षा, और प्रतिनिधि सत्तात्मक शासन प्रणाली से उपेक्षा करता है, और वह परियों की कहानी वाले 'स्वर्ग' को प्राप्त करने के लिये उद्योग करते हैं। इस प्रकार निर्धन तथा भूखों को ईश्वरवाद के कल्पित भोज का निमंत्रण मिलता है और वह इस पृथ्वी पर अपनी दशा को सुधारने का कोई निश्चित उद्योग नहीं करते। फिलीपाइन द्वीप कई शताब्दियों तक फ्रानसिस्कन (Franciscan) महन्तों (पादरियों) के शासन में रहा, किन्तु उन्होंने इस द्वीप की स्वच्छता और शिक्षा पर कोई भी ध्यान नहीं दिया। क्योंकि यह बातें 'स्वर्ग के लिये आवश्यक' नहीं थीं। इस सम्प्रदाय का

प्रवर्तक सेंट फ्रांसिस कहा करता था कि लिखने और पढ़ने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्यों कि स्वर्ग में ज्ञान किसी काम न आवेगा। उसके शिष्यों में से एक ब्रदर लूसीडो (Brother Lucido) के विषय में कहा जाता है कि वह एक महीने तक एक स्थान में ठहरने के लिये कभी सहमत नहीं होता था। जब उस को एक स्थान में आनन्द मिलने लगता तो वह वहां से यह कह कर तुरन्त हट जाता था, "हमारे लिये रहने का स्थान यहां नहीं, वरन् स्वर्ग में है" 'स्वर्ग' के इस सर्वसामान्य भ्रमपूर्ण विचार ने व सच्ची नैतिकता और क्रमिक उन्नति को बिल्कुल असम्भव कर दिया। विज्ञान से यह शिक्षा लेनी चाहिये कि बड़े से बड़े दूरवीक्षण यन्त्र में (Telescope) में भी विश्व में कहीं भी 'स्वर्ग' नहीं मिला, और न हम—जीवन के विश्वास दिलाये जाने पर भी—किसी उष्ण तारे अथवा नीहारिका (Nebula)में रहना पसंद करेंगे। ज्योतिर्विज्ञान को स्वर्ग के वर्तमान विचार के महत्व को घटाना चाहिये, और इस प्रकार जनता को नीतिशास्त्र के आरम्भिक भाग में प्रवेश कराना चाहिये। इस अन्धविश्वास के मस्तिष्क पर छा जाने से वास्तविक गुण की प्रशंसा उसी प्रकार नहीं की जा सकती, जिस प्रकार पाले में सड़क की बिजली की बत्तियां दिखलाई नहीं देतीं। आधुनिक मनुष्य को उस स्वर्ग के स्वप्न देखने बन्द कर देने चाहियें।

जापाना कवि ओमी ओकुरा (Omi Okura) की इस बुद्धिमत्ता पूर्ण कविता पर विचार करो।

"स्वर्ग को प्रकाशित करने के ढङ्ग बहुत दूर है;
अब तू ! अपने पास की वस्तुओं पर ध्यान दे;
हे मित्र ! तू अपने पार्थिव गृह की ओर ध्यान दे !
और अपने कर्तव्य को यहाँ पूर्ण करने का उद्योग कर ।

वैज्ञानिक आचरण शास्त्र का क्षेत्र और उद्देश्य ईश्वर-वादी और अध्यात्मिक आचरण शास्त्र से बिल्कुल ही भिन्न है। वह सबसे बड़े उत्तम कार्य की परिभाषा 'ईश्वर', 'आत्मा', 'स्वर्ग', 'निर्वाण' अथवा 'मुक्ति' के शब्दों में नहीं करता। इसका सम्बन्ध प्रकृति द्वारा उत्पन्न की हुई परिस्थिति में मनुष्य जाति के द्वारा व्यतीत किये हुये पृथ्वी के इस जीवन से है। उसका आदर्श:—

शारीरिक, बौद्धिक, ललित रुचि सम्बन्धी और आचरण सम्बन्धी चारों ही दिशाओं में मानव व्यक्तित्व की पूर्ण और समान उन्नति करना है।

"पूर्ण दशा में पूर्ण मनुष्य; पूर्ण उन्नति, स्वतंत्र कार्य और आनन्द"; "सत्य, भलाई, सौन्दर्य और स्वास्थ्य', यह उसके बहुमूल्य मूलपद हैं।

नैतिक उन्नति के उपाय

आप देखेंगे कि आपके आस पास के उद्योगी पुरुष नैतिक शिक्षा की अनेक विधियों के अनुसार कार्य करते हैं ।

शुभाचरण किसी धर्म विशेष में ही नहीं होते

यदि आप गुणी बनना चाहते हैं तो कुछ व्यवहारिक अध्यापक आपको किसी निश्चित सिद्धान्त और किसी अप्रतिम व्यक्तित्व पर ही आपके मार्ग प्रदर्शन के लिये

आश्रित होने की सम्मति देंगे । इसी प्रकार प्रायः ईसाइयों का विश्वास है कि उच्चतम नैतिक जीवन के लिये एकेश्वरवाद और 'ईसामसीह का अनुकरण' आवश्यक और पर्याप्त है। मुसलमान लोग भी उसी प्रकार ईश्वरवाद पर बल देते हैं, किन्तु वह आदर्श के लिये मुहम्मद का अनुकरण करते हैं। बौद्ध लोग भी इस नाली में पड़ ही गये। वह गौतम बुद्ध के आचरण को 'पूर्णता का दर्पण' स्वीकार करके उसमें 'अनात्त' (अनात्म) और 'कम्म' (कर्म) सिद्धान्त को मिलाते हैं । प्राचीन यूनान और रोम में डायोजीन्स (Diogenes) और सुकरात (Socrates) के चरित्र की अत्यन्त प्रशन्सा की जाती थी । उसी प्रकार अन्य सम्प्रदायों और धर्मों ने व्यवहारिक आचरण का आधार किसी विशेष सिद्धान्त और किसी भूतकालीन धर्मप्रवर्तक अथवा दार्शनिक की जीवन चर्या को रखा हुआ है। यह सर्वसामान्य विधि अच्छी होती हुई भी अत्यन्त दोषपूर्ण है। इसका परिणाम पहिले अवश्य ही सन्तोष जनक हुआ है, किन्तु भविष्य में इसके अनुसार आचरण नहीं करना चाहियें। यह कल्पना ठीक नहीं है कि व्यवहारिक नीतिशास्त्र एक सिद्धान्त पर निर्भर है, और उसके बिना वह किसी प्रकार नहीं चल सकता । अनेक धार्मिक ईसाइयों, मुसलमानों और वहाबियों का विश्वास है कि 'ईश्वर' में विश्वास किये बिना गुण प्राप्त नहीं किये जा सकते । बोसुएट (**Bossuet**) ने लिखा है, "जो मनुष्य परमात्मा से प्रेम नहीं करता अपने

पड़ौसी से भी प्रेम नहीं कर सकता।" एक नवयुवक मित्र ने मुझ से कहा था कि मैं "ईश्वर में विश्वास न करनेवाले का विश्वास नहीं करता।" कैन्ट (**Kant**) ने घोषणा की थी कि ईश्वरवाद व्यवहारिक नैतिकता का माना हुआ सिद्धांत है। वाल्टेयर (Voltaire) का विचार भी यही था कि ईश्वर में विश्वास न रखने वाला सेवक अपने स्वामी का गला काट सकता है। हिंदू और बौद्ध लोग ईश्वरवाद को अधिक महत्त्व नहीं देते, किन्तु वह आचारशास्त्र का पुनर्जन्म और कर्म सिद्धान्त से अभिन्न सम्बन्ध मानते हैं। मांटेलेम्बर्ट (Montalembert) का दावा है कि सेंट बेनीडिक्ट और उसके शिष्यों का आत्म बलिदान कैथोलिक सम्प्रदाय के उस सिद्धान्त का प्रदर्शन है, जिससे वह गुणी बने। गुण को विश्व की उत्पत्ति और भावी जीवन विषयक किसी काल्पनिक सिद्धान्त का विनम्र सेवक बतलाना भयंकर भूल है। इस प्रकार गुण को एक ऐसा वृद्ध लंगड़ा पुरुष बतलाया जाता है, जो ईश्वरवाद अध्यात्मवाद अथवा विज्ञान की लाठी को टेक कर चलता है। किन्तु यह बात नितान्त भ्रमपूर्ण है। बड़े २ स्त्री पुरुष बहुदेवतावादी, एकेश्वरवादी, वेदान्ती और नास्तिक सभी प्रकार के हुए हैं और मनुष्य की मृत्यु के पश्चात् दूसरे लोक के विषय में उनकी सम्मतियां भी परस्पर विरोधी रही हैं। किंतु उन सभी के आचरण उसी प्रकार सामान्य रूप में उच्च कोटि के थे, जिस

प्रकार भिन्न २ प्रकार के फूलों में सुगन्धि सामान्य रूप से अवश्य होती है। गुण का ठेका किसी एक सम्प्रदाय अथवा धर्मके ही नाम नहीं होता। मुझे एक दिन बोस्टन(Boston)में अपनी गृहस्वामिनी से यह सुनकर बड़ी हँसी आई कि "आपके स्वभाव और आपकी कार्यशैली से मैं आपको ईसाई समझती थी, किन्तु आप कहते हो कि आप ईसाई नहीं हो।" इस बेचारी को यही विश्वास कराया गया था कि 'मूर्ति पूजक' लोग कभी भी दयालु और शान्त सभ्य पुरुष नहीं होते। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जिनके हृदय प्राकृतिक विज्ञान को न जानने के कारण अन्धविश्वास के गहनतम कोहरे के अंधकार से ढके हुये थे, वह भी बड़े उच्च कोटि के आचरण वाले हुए हैं। हृदय और मस्तिष्क सदा उन्नति की एक ही धरातल पर नहीं रहते। सुकरात का एस्कूलैपियस (AEsculapius) पर एक कौवे की बलि चढ़ाने में विश्वास था; सेंट पाल बहुदेवतावाद की निन्दा करता और एक 'ईश्वर' का पुजारी था; बुद्ध ने अनेक देवताओं के अस्तित्व से निषेध नहीं किया; सेंट फ्रांसिस पदार्थपरिवर्तन के सिद्धांत को स्वीकार करता था, जबकि कैल्विन उसका अत्यन्त प्रबलता से खण्डन किया करता था; राबर्ट ओवेन (Robert Owen), कोम्टे (Comte) और हर्बर्ट स्पेंसर भी नास्तिक थे। किन्तु इन सभी नेताओं के चरित्र आदर्श थे। यदि आप बम्बई, कुस्तुन्तुनिया अथवा लंदन की भिन्न २ मेल वाली जनसंख्या में एक वर्ष भी रह लोगे तो आप

को बहुत शीघ्र पता लग जावेगा कि सिद्धांतों में परस्पर भिन्न सभी धर्मों, सम्प्रदायों और जातियों में ईमानदार, बेईमान और बदमाश सभी प्रकार के मनुष्य हैं। यह बात अनुभव सिद्ध है कि शुभाचरण किसी धर्म अथवा दार्शनिक सम्प्रदाय में ही नहीं होता। शुभाचरण को किसी विशेष सम्प्रदाय का दास समझना उतना ही मूर्खतापूर्ण है, जितना यह कल्पना करना है कि गंगा जी का लाभदायक जल हिमालय की पथरीली चट्टानों से निकलता है और उसकी गाद उसकी निर्मलता को गदला कर देती है। नीतिशास्त्र के ऊपर सिद्धांत की यह दासता पुरोहितों और दार्शनिकों की लादी हुई है। इससे उसको लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक हुई है। शुभाचरण समाज में होता है; यह भावों और इच्छाशक्ति से अधिक उत्तम बनता रहता है; बुद्धि में सभी प्रकार के सिद्धान्त उत्पन्न होते हैं, उन्हीं के अनुसार वह विश्व की व्याख्या करने का उद्योग करती है। ठीक सिद्धांत वास्तव में बहुमूल्य होता है। किंतु व्यवहारिक नीतिशास्त्र तर्क द्वारा उससे नहीं निकाला जाता। उन दोनों की तुलना द्विपद प्राणि के दो पैरों से की जा सकती है। उन दोनों का एक ही शरीर से सम्बन्ध होता है और वह दोनों एक ही जीवन के संगी होते हैं। किन्तु उनमें से कोई भी पैर एक दूसरे से निकला हुआ नहीं होता और न उनको एक दूसरे से प्रथक ही किया जा सकता है। शुभाचरण ईश्वरवाद और नास्तिकवाद दोनों से स्वतंत्र है। यह स्वयं अपना ही वाद है।

आचरणशास्त्र किसी सिद्धांत के प्रकाश से प्रकाशित होने वाला ग्रह नहीं है। यह सूर्य के समान स्वयं प्रकाशशील और संसार को प्रकाशित करने वाला है।

साधारण नैतिक पुरुष का दूसरा सिद्धांत भी असन्तोष-पूर्ण है। वह प्रत्येक बात में हमको किसी एक व्यक्ति का अनुकरण करने को कहता है; फिर वह व्यक्ति ईसा मसीह, मुहम्मद, गौतम बुद्ध अथवा कानफ्यूसियस आदि कोई भी क्यों न हो। इग्नैटियस लौयोला (Ignatius Loyola) ईसा मसीह के 'आत्मिक अभ्यासों' (Spiritual Exercises) में उसी प्रकार पग पग पर अनुगमन करता है, जिस प्रकार एक स्वामिभक्त कुत्ता अपने स्वामी का अनुगमन करता है। ईसाई सम्प्रदायों के 'एकान्तजीवन' (Retreats) में भी इसी प्रणाली का अनुसरण किया गया है। मुसलमानों ने मुहम्मद की प्रसिद्ध उक्तियों को 'हदीसों' के नाम से एकत्रित किया है। यह हदीस अत्यंत प्रामाणिक माने जाते हैं। शुभाचरण के इस प्रकार के व्यक्तिगत उदाहरण किसी धर्म में नयी दीक्षा लेने वाले के नैतिक विकास के लिये अवश्य ही अत्यंत उपयोगी सिद्ध होते हैं। यदि ध्यान को भक्ति की वस्तु पर निश्चित रूप से केन्द्रित किया जावे तो मन और आत्मा अन्दर तो विचारों और भावनाओं में तथा बाहिर कार्यों में उसी प्रकार आदर्श उदाहरण को उपस्थित करते हैं, जिस प्रकार एक ही स्त्री का चित्रकार चित्र बनाता है और आलेख्यकार उसकी मूर्ति

बनाता है । अवतारवाद, पैग़म्बरवाद और बुद्धवाद के सिद्धान्त भी धर्मप्रवर्तकों की प्रशंसा रूप ही हैं । वह उनको ऐसा अप्रतिम तथा निर्दोष व्यक्ति बतलाते हैं कि उन्होंने नैतिक उन्नति के उच्चतम आदर्श—सर्वोच्च पूर्णता को प्राप्त कर लिया है। जैनियों का तो यहां तक विश्वास है कि उनके तीर्थंकर महावीर सर्वज्ञ थे। टामस ए कोम्पिस (Thomas a Kempis) का कहना है "हमारा मुख्य कार्य अपने रक्षक ईसा मसीह के जीवन चरित्र का मनन करना है," । डाक्टर माइनर ऐल्बर्ट फार्जेज़ (Dr. Mgr. Albert Farges) लिखते हैं "ईश्वर का अनुकरण करने से अधिक मनुष्य के लिये और क्या उत्तम हो सकता है ?...... हमारे सन्मुख एक ऐसे पुरुष का उदाहरण है जो हमारे जैसा ही मनुष्य होते हुए भी ईश्वर था। उस उदाहरण में परमात्मा ने मनुष्य की अत्यंत पूर्ण ढङ्ग पर रचना की है" ।

धर्म प्रवर्तकों की त्रुटियां

केवल एक धर्मप्रवर्तकक का ही अनुकरण करने की इस प्रथा को एकव्यक्ति पूजा (Henolatry) कहा जा सकता है । यह आत्मोन्नति के कठिन कार्य को सरल और सुगम बना देती है, किन्तु खेद है कि यह भी मनुष्यों को मार्ग से भटका देती है । अनुकरण करने योग्य पूर्ण जीवन तो किसी भी स्त्री अथवा पुरुष का अभी तक नहीं रहा । ग़लती करना मानवी स्वभाव है । अभी तक कोई धर्मप्रवंतक निर्दोष और निष्पाप नहीं रहा ।

ईसामसीह कुछ २ दिखावटी, चिड़चिड़े स्वभाव का, अयोग्य और अनिश्चित था। उसने मन्दिर में से सूदखाने वालों को निकाल दिया था, किन्तु वह उनके हृदय में से लोभ को नहीं निकाल सका। ईसामसीह और बुद्ध दोनों ही अविवाहित रह कर अकेले ही जीवन व्यतीत करने की शिक्षा देते थे। किन्तु अविवाहित रहना अपूर्णता का चिन्ह है, क्योंकि इस प्रकार के बिना उत्तरदायित्व वाले मार्ग-प्रदर्शक साधारण विवाहित दम्पति के लिये अनुकरणीय उदारहण नहीं बन सकते। कुमारपन से यह भी प्रकट होता है कि व्यक्तित्व पूर्णतया एकजैसा विकसित नहीं हुआ, क्योंकि अविवाहित पैगम्बर जन्म से ही नपुन्सक नहीं होते हैं। ईसामसीह, बुद्ध, महावीर और सुकरात ने विज्ञान का आविष्कार नहीं किया और न उन्होंने प्रकृति के अध्ययन पर ही विशेष बल दिया। ईसामसीह और बुद्ध में कानफ्यूसिस (Confucius) और अरस्तू (Aristotle) जैसी राजनीतिक बुद्धि नहीं थी, उनके उपदेश केवल व्यक्तिगत जीवन के लिये ही उपयोगी हैं। उनकी बुद्धि में यह नहीं आता था कि राज-नीतिक स्वेच्छाचारिता में शुभाचरण का विकास नहीं हो सकता। इस प्रकार यह सिद्ध किया जा सकता है कि किसी भी धर्म-प्रवर्तक ने एक पूर्ण मनुष्य योग्य कार्य नहीं किये। सभी धर्म-प्रवर्तकों ने ग़लतियां की हैं, पाप किये हैं, अपने महत्वपूर्ण कर्तव्यों की उपेक्षा की है और इस प्रकार पूर्णता प्राप्त करने में असमर्थ रहे हैं। उनके जीवन भी उस महान् पूर्ण—आदर्श—

के एक भाग ही हैं। प्रत्येक धर्म-प्रवर्तक से शिक्षा लो, किन्तु दास किसी के मत बनो; जैसा कि कारनाइल(Corneille)ने कहा है—"हे मूसा! चुप रह! और हे सत्य! नित्य तथा अपरिवर्तनीय सत्य! तू मुझ से बोल।" आप महान् आत्माओं के जीवन-चरित्र के एक उस आदर्श भाग से भी शिक्षा ले सकते हैं, जिसमें पूर्णता पाई जा सकती है।

एक व्यक्ति पूजा की हानियां

यह एकव्यक्ति पूजा अत्यन्त हानिकारक होती है। यह प्राय: उन्नति के मार्गों को बन्द कर देती है। एक भक्त ईसाई ईसा-मसीह का अनुकरण करने का ही उद्योग नहीं करता, वरन् वह उस प्रत्येक कार्य को करना अनावश्यक और पाप समझता है, जो उसके धर्म-प्रवर्तक स्वामी ने नहीं किया था। यह प्रतिषेधात्मक अनुकरण नीति-शास्त्र के विकास के लिये भयंकर होता है। मद्यनिषेधी तथा शाकाहारियों को प्रायः इस युक्ति का मुकाबला करना पड़ता है कि ईसामसीह शराब पीता था और मांस खाता था. जैसे कि ईसामसीह ने सभी युगों के सभी आचार-नियमों को पालन करके उनको समाप्त कर दिया हो। ईसाई साधु विज्ञान का अध्ययन नहीं करते, क्योंकि ईसा-मसीह ने प्लैटो के समान कभी भी गणित का अध्ययन नहीं किया और न कभी अरस्तू के समान पशुओं को चीर-फाड़ कर देखा। धार्मिक मुसलमान इस लिये चित्र और मूर्ति को मोल नहीं लेता कि पैग़म्बर मुहम्मद ने उनके लिये तेरह सौ वर्ष पूर्व

निषेध कर दिया था। बौद्ध लोग अभी तक प्राचीन देवताओं की इस लिये पूजा किया करते हैं कि बुद्ध ने उनके अस्तित्व को स्वीकार किया है। विवाह-विच्छेद के सुधार का इस लिये विरोध किया जाता है कि ईसामसीह ने इस सम्बन्ध में अत्यन्त प्राचीन काल में कुछ शब्द कहे थे। बहुपत्नीत्व प्रथा को इस लिये वैध समझा जाता है कि मुहम्मद ने उसको वैध बतलाया था; चार स्त्रियों से विवाह करना पाप नहीं, वरन् पांच से विवाह करना पाप है, इत्यादि। किसी भूतकालीन धर्म-प्रवर्तक के चरित्र से न गिरने के सिद्धान्त से अनेक उद्योगी पुरुषों की उन्नति केवल एकांगी ही हुई है; क्योंकि उन्होंने परम्परा प्राप्त उस चहारदीवारी की ओर कभी स्वप्न में भी नहीं देखा, जिसके अन्दर उनका निर्माण हुआ था। इस बात को कहना निन्दा पूर्ण समझा जाता है कि सभी धर्मप्रवर्तक केवल बुद्धिमान् मनुष्य थे और उनमें कुछ मानवी निर्बलताएं भी थीं। उनकी बुद्धि उच्च और सूक्ष्म थी, तथा वह उसी प्रकार सीमित और परिस्थियों के वशवर्ती भी थी, जिस प्रकार ऐल्पस् पर्वत के ऊपर की झील में ऊपर के आकाश और उसके चारों ओर के पर्वतों सभी का दृश्य प्रतिबिम्बित होता है। किसी उपदेशक ने सदा रहने वाली पूर्ण और अपरिवर्तनीय बुद्धि के विषय में नहीं बतलाया; इस प्रकार की कोई बुद्धि नहीं हो सकती। आज की बुद्धिमत्ता कल ही मूर्खता कही जा सकती है। शुभाचरण और बुद्धि की समय की दृष्टि से कोई सीमा नहीं होती। प्रशान्त महासागर (Pacific

Ocean) की तली है और शून्य आकाश की भी ईंस्टीन❀ (Einstein) के सिद्धान्त के अनुसार सीमा हो सकती है, किन्तु व्यक्तित्व के आदर्श में गणित सम्बन्धी असीमिता का भाग भी है, जिसको वृद्धिगत परिमाण में ही प्राप्त किया जा सकता है, पूर्ण परिमाण में नहीं। प्राप्त होने योग्य आदर्श में शब्दों का भी विरोध आता है, क्योंकि जब उसको प्राप्त कर लिया जाता हैं तो वह आदर्श ही नहीं रहता, तब वह यथार्थ रूप में परिणत हो जाता है। आदर्श तो अब भी दूरही रहता है और वह हमको बराबर आगे बढ़ाये जाता है। यह कहना कि किसी स्त्री अथवा पुरुष ने आदर्श को प्राप्त कर लिया मनुष्य जाति की पवित्र आत्मा की निन्दा करना है। आदर्श को इस प्रकार जीवन चरित्र और यथार्थ घटनाओं के वस्त्र में लिपटा हुआ मृतक शव मत बनाओ। आदर्श को इस प्रकार नीतिशास्त्र का मिश्र के मसाले से सुरक्षित किया हुआ शव मत बनाओ। "एक व्यक्ति पूजा" के अतिरंजित और अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णनों की निन्दा करो और उनका त्याग कर दो। अन्यथा नीति शास्त्र का जहाज सदा भूतकालीन आकाशदीपकों और प्रकाशग्रहों को ही देखता रहेगा और

❀ ईंस्टीन गणित का प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् है। वह अन्य वस्तुओं की अपेक्षा दृष्टि से आकाश की काल्पनिक सीमायें मानता है। किन्तु ईंस्टन से बहुत पूर्व भारतीय नैयायिक घटाकाश, पटाकाश आदि शब्दों में उसी प्रकार आकाश की काल्पनिक सीमाओं को मानते थे।

इस प्रकार सामने आने वाली चट्टानों और ढलुवां पहाड़ियों से टकरा कर टूट जावेगा।

भिन्न २ धर्मप्रचारकों में भेद

यह भी स्पष्ट है कि सर्वोत्तम और सब से अधिक बुद्धिमान् शिक्षक भी सभी गुणों के उदाहरण नहीं बन सकते, क्योंकि इस छोटे से जीवन में उनको उन सभी गुणों के प्रदर्शित करने का अवसर नहीं मिल सकता। ईसामसीह, सुकरात, मानी (Mani) और बाब (Bab) हमको अपने प्राणों का बलिदान करने का साहस देते हैं, किंतु बुद्ध इस प्रकार को शिक्षा कैसे दे सकता था ? उसने अपना उपदेश सहनशील जनता में दिया था। वह न तो गिरफ्तार ही किया गया और न उस पर मुकद्दमा ही चलाया गया। इसको ईसामसीह के समान अदालत के सन्मुख अपने ताप और धैर्य को प्रदर्शित करने का अवसर नहीं मिला। ईसामसीह इस बात को सिद्ध नहीं कर सका कि उसका मनुष्य जाति के प्रति प्रेम स्त्री और बच्चों से अधिक था, क्योंकि उसके स्त्री बच्चे थे ही नहीं; किंतु बुद्ध ने इस कठिन परीक्षा को उत्तीर्ण कर लिया था। बुद्ध से आप अपनी स्त्री को छोड़ने के ढंग की शिक्षा ले सकते हैं, किंतु सुकरात आपको उसके, साथ रहने की विधि की शिक्षा देता है। सुकरात ऐथेन्स के प्रजातंत्र में नागरिकता के गुणों का संपादन कर सकता था; किंतु ईसामसीह और बाब को कोई ऐसे नागरिकता के

अधिकार प्राप्त नहीं थे। सेंट फ्रांसिस को हत्यारे और लुटेरे सम्प्रदाय के अधिकार को भी स्वीकार करना पड़ा था । इस प्रकार यदि किसी शिक्षक में अनेक विभिन्न गुणों की गुप्त योग्यता है तौ भी वह उनमें से सभी का अभ्यास करके उनका विकास नहीं कर सकता, क्योंकि प्रायः परिस्थितियां उनके वश से बाहिर होती हैं। अतएव किसी भी जीवित अथवा मृत, स्त्री अथवा पुरुष में नितान्त पूर्णता बतलाना बिल्कुल ग़लत है। यहां तक कि सूर्य में भी धब्बे होते हैं।

चरित्र निर्माण की उपयुक्त प्रणाली

दैनिक एक जीवनचरित्र और एक सिद्धान्त का अध्ययन करने की औषधि रूप नैतिक आचरण के निर्माण की परम्परागत प्रणाली भी ठीक नहीं है। यह ठीक है कि नैतिक निर्माण के लिये जीवनचरित्रों का अध्ययन अनिवार्य रूप से आवश्यक है, किंतु इस सम्बन्ध में सभी सिद्धान्त, फिर चाहे वह ईश्वरवादी अथवा बुद्धिवादी कैसे भी क्यों न हों, अयोग्य हैं। चरित्र निर्माण के लिये निम्न लिखित प्रणाली उत्तम होगी —

(१) आचरण का विकास सामाजिक क्षेत्र में किया जाता है। यदि आप शुभाचरण की शिक्षा लेना चाहते हों तो आप अवश्य ही अन्य स्त्री पुरुषों के साथ निवास कर रहे होंगे। आपका सम्बन्ध अवश्य हो किसी ऐसे समाज अथवा संप्रदाय से होगा, जिसका उद्देश्य आपके आदर्श को प्राप्त करना हो।

वह समाज ही आपका 'धर्म' होगा। केवल एकाकी रह कर युद्ध करते हुये आप अधिक उन्नति नहीं कर सकते। जिस प्रकार अरब लोग मरुभूमि में यात्री दल बना बना कर घूमा करते हैं आप भी एक समूह या दल बना लो। आधुनिक काल में आगस्टे कोम्टे, एफ० ऐडलर और कार्ल मार्क्स ने समान बुद्धिवाले उद्योगी स्त्री पुरुषों के इस प्रकार के वर्गों की स्थापना करने का उद्योग किया है।

(२) आचरण पर मृतक पैगम्बरों के ऐतिहासिक लेखों की अपेक्षा जीवित शिक्षकों के उदाहरण का अधिक प्रभाव पड़ता है। नैतिक तथा प्राणिविज्ञान सम्बन्धी संसार, दोनों में ही जीवन से जीवन बनता है। गुण एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य में ले जाये जा सकते हैं, नैतिक उन्नति शिक्षा लेने और योग्य बनाने से होती है, न कि वादविवाद से। यदि आप को एक उत्तम मार्गप्रदर्शक मिल जावे तो आप उसी प्रकार भाग्यशाली हो जिस प्रकार प्लैटो और ऐंटिस्थीन्स (Antisthenes) ने सुकरात और पाइरे लैफिटे (Pierre Laffite) ने आगस्टे कोम्टे को पा लिया था। ईरानी रहस्यवादी 'पीर' का अनुगमन करते और हिंदुओं को 'गुरु' की आज्ञा मानने की शिक्षा दी जाती है। कैथोलिक लोग सभी नये और पुराने साधुओं का अनुगमन करते हैं। आपको अपने नगर में प्रचार करने वाले विभिन्न धार्मिक नेताओं से जान पहचान कर लेनी चाहिये। उनमें से जिसका दैनिक जीवन अधिक धार्मिक हो उससे

घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित कर लो। वह सरलता, नम्रता, संयम, संतोष और व्यवहारिक विनय के गुणों के लिये प्रसिद्ध होना चाहिये। इस विषय में एक साधारण परीक्षा भी पर्याप्त होगी। इस बात को ध्यान पूर्वक देखो कि उनमें कोई ऐसा भी है जो अन्य उपदेशकों को छोटा न बतला कर उनका भी मान करता हो। यदि आप की भेंट ऐसे नम्र और उदार आत्मा से हो जावे तो उससे घनिष्ट सम्बन्ध बनाये रहो। अब आप में सब गुणों का विकास हो जावेगा। इस स्वयं-निर्वाचित शिक्षक के प्रति आपका व्यवहार मतभेद तथा स्वतन्त्रता से मिश्रित होना चाहिये। अपना निर्णय करने से पूर्व पहिले तो कुछ दिनों तक अपने शिक्षक का सभी बातों में उसी प्रकार अनुगमन करो, जिस प्रकार एक हवाई जहाज ऊपर उठने से पूर्व पृथ्वी पर चला करता है। जब उसमें कुछ मानवी आवश्यकताओं को स्वीकार करने की प्रवृत्ति देख ली जावे तो उस मूक आज्ञाकारिता के आचरण को बन्द कर देना चाहिये। किन्तु उस प्रकार पूर्णतया दास मनोवृत्ति वाले और समालोचना शून्य मत बनो, जैसा कुछ सम्प्रदायों के शिष्यों को बनाया जाता है। फारसी कवि हाफ़िज़ ने यह लिख कर इस प्रकार की दासता की ही शिक्षा दी है कि "यदि वृद्ध पुरुष तुझको आज्ञा दे तो अपनी नमाज़ की चटाई को भी शराब से तर करदे।" आप शिक्षा लेने को उद्यत रहो, न कि आज्ञा पालन करने के लिये। अरस्तू प्लैटो का विनयी शिष्य अवश्य था, किंतु उसका विचारशून्य

ग्रामोफ़ोन नहीं था। आप में और आपके वृद्ध मार्ग-प्रदर्शक में ऐसा सम्बन्ध होना चाहिये कि वह आपको नैतिक आत्म-निर्माण की आरम्भिक कक्षा में उज्वल भावों से उस प्रकार भर दे, जैसे पक्षि माता-पिता अपने बच्चों में भावों को भर देते हैं। अस्थायी शिष्यता उच्चकोटि की नैतिक सफलता का अरम्भ है। नैतिक संसार में कुछ गिने चुने ही स्वयंभू शिक्षक होते हैं। किंतु अति के मतभेद से भी सावधान रहो, क्यों कि यह उस गरीब शिक्षक के सन्मान के लिये घातक सिद्ध हो सकता है। अरस्तू की इस प्रसिद्ध उक्ति को स्मरण रखो "हमको प्लैटो और सत्य दोनों ही प्यारे हैं, किंतु सत्य को अधिक मानना हमारा पवित्र कर्तव्य है।"

(३) जीवित मार्ग प्रदर्शक भूतकालीन महान् धर्मप्रवर्तकों से आपका सम्बन्ध करने वाले गुणी स्त्री पुरुषों की शृंखला में अन्तिम कड़ी होते हैं। उन्होंने अपने २ उन शिक्षकों से गुण की शिक्षा ली, जो निश्चय से ही अपने गुरु के चरणों में बैठकर शिक्षा ले चुके थे; इस प्रकार यह सन्तति बराबर चलती रही है। इस प्रकार आपका परिचय उन बड़े २ स्त्री पुरुषों से हो जावेगा, जिन के नाम इतिहास के अन्धकार पूर्ण आकाश में लुब्धक तथा अगस्त्य नामक तारे के समान चमकते हैं। उनके गुणों को ग्रहण करने का सबसे उत्तम ढङ्ग यह है कि उनकी जीवन घटनाओं और कार्यों को उस सामाजिक और राजनीतिक आन्दोलन के साथ मिलाकर अध्ययन किया जावे, जिसका वह

प्रतिनिधित्व करते थे। यह पदार्थ-परिवर्तन का मौलिक नैतिक सिद्धान्त है। हमको संसार के सभी नैतिक वीर स्त्री पुरुषों के अमर व्यक्तित्व को अपने हृदयपटल पर अंकित कर लेना चाहिये। उनके कार्यों और शब्दों की प्रथक् किये हुये पवित्र व्यक्तियों के समान व्याख्या करना अशुद्ध और धोखे में डालना है। आचार शास्त्र का अध्ययन ऐतिहासिक और सामाजिक रूप में करना चाहिये, क्योंकि उसकी विशेषता अनिवार्य रूप से सामाजिक तथा ऐतिहासिक है। आपका उद्देश्य आपके अपने लिये गुणों का एक ऐसा स्थायी और शुद्ध वायु मण्डल बना लेना है, जिसमें उद्योग और अभिलाषा का सत्व हो। आपको किसी धर्म प्रवर्तक अथवा दार्शनिक के जिस किसी कार्य की केवल नकल ही नहीं करनी चाहिये; यह नैतिक निर्बलता के लिये ठग वैद्य की औषधि का काम देगी। अपने लिये एक ऐसी आन्तरिक नैतिक परिस्थिति बनाने का उद्योग करो, जिसमें आप उसी प्रकार निश्चय पूर्वक नैतिक स्वास्थ्य और शक्ति प्राप्त करोगे, जिस प्रकार ज़रमट औरल दाख की शुद्ध वायु में वहां के बलवान पहाड़ी लोग प्राप्त करते हैं। मृतक महात्माओं के उदाहरणों का उपयोग अपने स्वतंत्र व्यक्ति के विकास में किया जा सकता है, न कि भूतकाल में किये हुये किसी कार्य को फिर उपस्थित करने के लिये। "ग्रहण करना, न कि नकल करना" यह आपका मार्गप्रदर्शक सिद्धान्त होना चाहिये।

इतिहास का कोई भी एक आन्दोलन आपकी सारी

आवश्यकताओं को पूर्ण नहीं कर सकता । जिस प्रकार आप अपने शरीर को अनेक प्रकार के भोजन से पुष्ट करते और भिन्न २ देशों से लाये हुये वस्त्रों से सजाते हो, उसी प्रकार आपकी आत्मा को अपना आहार और आवरण विभिन्न साधनों की सामग्री से प्राप्त करना चाहिये । आपको निम्नलिखित आठ धर्मों का विशेष रूप से अध्ययन करना चाहिये ।

संसार के आठ महान् धर्म

कनफ्यूसियन धर्म अथवा कनफ्यूसियनिज्म---कनफ्यूसियस से चू-हसी (बाहरवीं शताब्दी तक । इसको चू-फू-त्ज़ू भी कहते हैं) तक इस आन्दोलन में आपको कनफ्यूसियस, (ईस्वी पूर्व तीसरी शताब्दी), मेनसियस (ईस्वी पूर्व दूसरी शताब्दी), हान वेन-कुंग (ईस्वी पूर्व दूसरी शताब्दी), प्रथम फू चेन, तू-आंग तथा अन्य बड़े २ विद्वानों से शिक्षा मिलेगी। यह विद्वान् विश्वास और आचरण दोनों में व्यवहारिक बुद्धिवादी थे । प्रोफेसर एच० ए०गाइल्स ने चू-फू--त्ज़ू के विषय में कहा है. "चू-फू-त्ज़ू के हाथ में आकर व्यक्तिगत ईश्वर तथा विश्व के सबसे बड़े शासक का विचार सदा के लिये नष्ट हो गया। चीनी दार्शनिकों से आपको शिक्षा मिलेगी कि मनुष्य स्वभाव से ही अच्छा होता है, गुण का क्षेत्र तथा उद्देश्य सामाजिक है, नैतिक उन्नति के लिये आर्थिक और राजनीतिक सुधार आवश्यक है और उच्च कोटि के जीवन के लिये शिक्षा और संगीत अनिवार्य हैं ।

बौद्धधर्म बुद्ध से लेकर अशोक (ईस्वी पूर्व दूसरी शताब्दी) तक—प्राचीन बौद्ध और जैन आन्दोलन आपको पुरोहितों के छल और यज्ञयागों के विरुद्ध युद्ध करने की आवश्यकता; एक या अनेक देवताओं के लिये किये हुये पूजन या प्रार्थना की व्यर्थता; घृणा, इन्द्रियलोलुपता और अज्ञान को जीतने के महत्व; दान, सर्वभूतानुकम्पा, प्रिय वचन, धार्मिक सहिष्णुता और सामाजिक समानता को स्थापित करने और मद्यसेवन तथा मांस भक्षण से बचने की शिक्षा देंगे। ध्यान भी आपके सन्मुख अपने चमत्कारों और रहस्यों को प्रगट करेगा। आप गौतमबुद्ध, महावीर और अशोक जैसे शक्तिशाली व्यक्तियों के नैतिक प्रभाव का अनुभव करेंगे। मेरे एक यूरोपीय मित्र ने 'बुद्ध चरित्र' पढ़ने के पश्चात् मुझ से कहा, "अब मैं पहिले की अपेक्षा अधिक दान करने लगा हूं।"

यूनानी दर्शनशास्त्र, थेलस् से लगाकर प्लाटिनस तक—नीतिशास्त्र के इतिहास में यह आन्दोलन कुछ बातों में सब से अधिक प्रतापी और सफल आन्दोलन रहा है। इससे आप बुद्धिवादी विचार और बादविवाद के मूल्य और उसकी आवश्यकता, सब विषयों में व्यक्तिगत उन्नति, नागरिक स्वतंत्रता, योग्य आचार सिद्धांत, अर्थशास्त्र सम्बन्धी सुधार, शारीरिक तथा ललितरुचि सम्बन्धी संस्कृति, वैज्ञानिक आविष्कार, मद्यपान निषेध आत्मसंयम और आशावाद की शिक्षा लेंगे। यूनानी दर्शनशास्त्र श्रेष्ठ गुण और बुद्धि के विभिन्न

प्रकार के प्रतिनिधियों की बड़ी भारी और मोहक चित्रशाला को उपस्थित करता है। डायोजीन्स लेर्टियस (Diogenes Laertius) ने दस सम्प्रदायों से भी अधिक के अस्सी नेताओं के जीवन वृत्तान्त लिखे हैं। इस आन्दोलन ने हमको अरस्तू का 'नीतिशास्त्र' (Nicomachean Ethics), प्लैटो का 'प्रजातंत्र' (Republic), मार्कस औरेलियस का 'विचार' (Thoughts), ल्यूक्रेशियस की कविता, सिसेरो का 'डे आफीसीज़ (de Officiis), बोथियस (Boethius) का 'दर्शनशास्त्र का प्रबोध' (Consolation of Philosophy) जैसे उच्च कोटि के ग्रन्थ दिये हैं। अन्य किसी आन्दोलन ने ऐसे २ आश्चर्यजनक मनुष्यों और उच्च कोटि के ग्रन्थों का निर्माण नहीं किया। वास्तव में यूनानी दर्शनशास्त्र ही आधुनिक बुद्धिवाद की पूर्व सूचना है। उसको रात्रि और दिन भर तब तक पढते रहो, जब तक तुम उसको पूर्णतया हृदयंगम न करलो। आप पेरीपैटेटिक (Peripatetic) तथा स्टाएक (Stoic) सम्प्रदायों को विशेष ध्यान पूर्वक पढ सकते हो, क्योंकि यह अन्य सम्प्रदायों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण हैं। अरस्तू के सिद्धांतों को वर्तमान् बुद्धिवाद की 'प्राचीन पुस्तक' (Old Testament) समझा जाता है।

आरम्भिक ईसाईवाद (सन् १६३५ तक)

आरम्भिक ईसाईवाद आंशिक रूप से एक उन्नतिशील आन्दोलन था। उसकी स्थापना विश्वबन्धुत्व, दया, स्वच्छता,

सरलता, सैनिकवाद तथा साम्राज्यवाद के विरोध के आधार पर की गई थी। ईसाईवाद के राजनैतिक उद्देश्यों का वर्णन 'आकाशवाणी' की पुस्तक (the Book of Revelation) में स्पष्ट रूप से किया हुआ है। इस पुस्तक में उस युग के रोमनों के असह्य अत्याचारों के विरुद्ध बड़े भारी प्रचार-कार्य का वर्णन किया गया है। इन तीन शताब्दियों में आपकी भेंट ईसामसीह, सेंट पाल, सेन्ट-जेम्स, सेन्ट जान, पालीकॅर्प (Polycarp), इग्नेशियस(Ignatius), आयरेनियस (Irenaeus), जस्टिन (Justin), मोनटैनस (Montanus), मार्किअन (Marcion), ओरीजेन (Origen) क्लेमेंट (Clement) तथा अन्य बड़े भारी महात्माओं से होगी। वह भी आप को अनेक ऐसे सफल विचार देंगे, जो आपके वर्तमान कार्य में काम आ सकते हैं।

सेंट बेनीडिक्ट का सम्प्रदाय

ईसाईयत के इतिहास में इनके अतिरिक्त अन्य शिक्षाप्रद और उन्नतिशील समय मध्यकालीन युग है। इसी समय बेनीडिक्ट के सम्प्रदाय ने ट्यूटोन जातियों को ईसाई धर्म में दीक्षित किया था। इस प्रकार सबसे प्रथम इन लोगों ने ही यूनानी और रोमन दोनों संस्कृतियों को स्वीकार किया। सेंट बेनीडिक्ट, आगस्टाइन (Augustine), बोनीफेस (Boniface), अन्स्कर (Anskar) तथा अन्य वीर पुरुष

अशांति और अज्ञान के श्यामपट पर खड़े हुये स्पष्ट प्रकाशित होते हैं।

ईस्वी तेरहवीं शताब्दी के पश्चात् ईसाईवाद प्रतिक्रियात्मक शक्ति बनने लगी थी।

अरब दार्शनिक और सूफी सन्त लोग

इस्लाम और यूनानी दर्शन-शात्र की एकता से इस्लाम में अल-किन्दी ने बड़े भारी पुनर्जाग्रति आन्दोलन को आरम्भ किया। अल-फरेबी, इब्ने-सिना, इब्ने-तुफैल, और इब्ने-रशीद जैसे दार्शनिक तथा रबिया और शम्श-ए-तबरेज़ जैसे सन्त लोग मुसलमान और यूनानी दोनों ही प्रकार के थे। वह जन-परम्परा इस्लामी देशों में अब भी जीवित है और इससे अनेक उच्च तथा सुन्दर आचरण वाले व्यक्ति उत्पन्न हुए।

भारत में सिक्ख आन्दोलन (सोलहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी)

मुग़ल स्वेच्छाचारिता के नष्ठ हो जाने पर इस धार्मिक आन्दोलन का उद्देश्य जाति का पूर्ण सामाजिक और राजनीतिक पुनः संगठन था, इसने ऐसे-ऐसे नेता उत्पन्न किये, जो आचार-शास्त्र और राजनीति दोनों में ही अत्यन्त प्रसिद्ध थे। इस जाति में बलिदान और युद्धस्थल में मरने का उत्साह भी कूट-कूट कर भरा हुआ था। इसमें नानक, अर्जुनदेव, तेराबहादुर, गोविन्द-सिंह, बन्दा तथा अन्य लोगों से आपको अच्छी शिक्षा मिलेगी।

वर्तमान जनतन्त्र, समाजवाद और बुद्धिवाद

आपको इटली की पुनर्जाग्रति के वीर—पेट्रार्च (Petrarch),

ग्वारिनो (Guarino), विटोरिनो (Vittorino), निकोली (Niccoli), औरिस्पा (Aurispa), फिलेल्फो (Filelfo) और फिसिनो (Ficino), तथा उत्तर के एरस्मस, मोर तथा अन्य विद्वानों के जीवन-चरित्र और उनकी कार्यावलियों का अध्ययन करना चाहिये। वानिनी (Vanini), एटीन डालेट (Etienne Dolet), और जिआरडैनो ब्रूनो (Giordano Bruno) जैसे स्वधर्मार्थ प्राण त्याग करने वालों के कार्यों का अत्यन्त विनय पूर्वक अध्ययन करना चाहिये। प्रोटेस्टैण्ट, युवावस्था में फिर बपतिस्मा कराने वाले (Anabaptits) और अमरीका के स्वेच्छा-साम्यवादी लोग आपके आत्मा को बल देंगे। वर्तमान दर्शनशास्त्र और विज्ञान ने हमको स्पाइनोज़ा (Spinoza) स्पेन्सर. कोम्टे, कैवेंडिश (Cavendish) तथा अन्य सच्चे महात्मा दिये हैं। वर्तमान सभ्यता ने प्राचीन यूनानी दर्शनशास्त्र के समान हमारे मार्गप्रदर्शन के लिये कोई महत्त्वपूर्ण विश्लेषणात्मक नैतिक प्रणाली नहीं निकाली है। इस कठिन कार्य में हाथ डालने वाला केवल एक दार्शनिक कोम्टे ही है। अन्य विद्वानों ने केवल पुस्तकें ही लिखी हैं। उन्होंने बुद्धिवाद के व्यवहारिक दर्शनशास्त्र के लिये नये सम्प्रदायों की स्थापना नहीं की। इस प्रकार वर्तमान आचारशास्त्र के तत्त्व भिन्न-भिन्न असम्बद्ध और अस्वतन्त्र आन्दोलनों में पाये जाते हैं। आपको उन्हें सब कहीं से खोज कर एकत्र कर लेना चाहिये। फ्रांस की राज्यक्रान्ति, जनतन्त्र शास्त्र और समाजवाद के वीरों

ने एक नये शास्त्र की रचना की है, जिसको आपको सदा ही आश्चर्यजनक प्रशंसा पूर्वक अध्ययन करना चाहिये। मैरट (Marat) बुओनैरोटी (Buonarroti) मैजिनी, फ़ौरियर (Fourier) ओवेन (Owen) जोन्स (Jones) कानसिडेरैंट (Considerant) ब्लैंकी (Blanqui), लुई माइकेल (Louise Mickel), कार्ल मार्क्स, बकुनिन (Bakunin) क्रोपोटकिन (Kropotkin), तथा अन्य विद्वान् आपकी कायरता, स्वार्थपरता और सांसारिकता को दूर भगा देंगे। कार्ल मार्क्स, पीटर क्रोपोटकिन और लुई माइकेल के जीवन-चरित्रों को तो आपको अवश्य पढ़ना चाहिये। यह लोग व्यक्तिगत महत्त्व को असाधारण परिमाण में राजनीतिक बुद्धि में मिश्रित कर देते हैं।

यदि आप इन आठ आन्दोलनों के नेताओं के भाव और प्रकृति को समझ जावेंगे तो आप अपनी उन्नति और प्रसन्नता के लिये ठीक २ नैतिक वायुमण्डल का निर्माण कर सकेंगे। बड़े २ स्त्री पुरुषों के चित्रों को मोल ले ले कर उनको अपने कमरे की दीवारों पर टांग दिया करो। उन चित्रों के नीचे उनकी किसी महत्व उक्ति को अंकित कर दिया करो। इस प्रकार आप सदा ही उच्चतम आचारशास्त्र की स्वादिष्ट भीनी सुगन्धि में ही रहा करोगे।

(४) मित्रता—गुण समाज से उत्पन्न होते हैं। आपको समान सम्मति वाले व्यक्तियों की सभा में सम्मिलित हो जाना

चाहिये। किन्तु उस सभा में भी आपके मित्रों का दल प्रथक् होना चाहिए; और उस दल में भी आपके दो या तीन सब से अधिक प्रिय मित्र होने चाहियें। मित्रता सामाजिक आदान प्रदान, वार्तालाप, कष्ठ पड़ने पर पारस्परिक सहायता, टहलने और भोज आदि जैसे सामान्य उद्देश्यों में बड़ी लाभप्रद सिद्ध होती है। किन्तु मित्रता का सब से बड़ा उपयोग व्यक्तित्व की उन्नति के लिये पारस्परिक साहस बढ़ाने और भावुक बनाने में है। सच्चा मित्र आपको सदा ही आपके जीवन का उत्तमोत्तम उपयोग करने की सम्मति और सहायता देता रहता है। वह आपके गुण और निर्बलताओं, आपकी शक्ति और योग्यता, आपके स्वभाव और अवसरों को जानता है। वह आपकी सफलता पर प्रसन्न होता और आपको अधिक उद्योग करने को कहता रहता है। वह आपकी ग़लतियों के लिये आपको प्रेमपूर्वक समझाता रहता है। प्राचीन काल की पुरोहितों के सन्मुख पाप को स्वीकार करने की प्रणाली के स्थान में अब अपने प्रिय मित्रों के सन्मुख स्वयं ही अपनी त्रुटियों को रखने की प्रणाली को स्थान देना चाहिये। आपको अपनी सहायता के लिये थोड़े थोड़े समय के लिये दो मित्र रखने चाहियें, जिनमें एक स्त्री और दूसरा पुरुष हो। उनको माह में किसी भी एक दिन आपके आचरण की समालोचना करनी चाहिये। उनको आपको यह सब भी बतला देना चाहिये, जो वह दूसरों से सुनते रहें। वर्तमान समय में किसी के समाज विरोधी कार्यों और शब्दों के

लिये उसकी शिकायत करना सुरक्षापूर्ण विधि नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति दूसरे को दोष देता है और अत्यन्त कमीनी बातें कहता है। किंतु इस विषय में भलाई कोई भी नहीं है। यदि आप इस बात की घोषणा करदें कि आपने एक वर्ष के लिये अमुक २ व्यक्तियों को अपना मानीटर नियुक्त किया है, और आपके विरुद्ध सब शिकायतें उनके पास जानी चाहियें, तो वह नम्र व्यक्ति, जो आपकी ग़लतियों के लिये आपसे बातचीत करने का कभी ध्यान भी नहीं कर सकते, आनन्दपूर्वक अपनी समालोचना आपके दोनों मानीटरों के द्वारा आपके पास पहुंचा देंगे। यह आवश्यक नहीं है कि उनके नाम सदा ही आप को बतला दिये जाया करें। उचित समालोचना आपको सहायता देगी, और अयोग्य समालोचना बंद कर दी जावेगी, क्योंकि आपको सदा ही इस बात की सूचना मिलती रहेगी कि लोग आपके विषय में क्या कहते हैं। आप एकान्त में अपनी स्थिति को स्पष्ट कर सकते, अपना बचाव दे सकते अथवा परिस्थिति के अनुसार क्षमा प्रार्थना कर सकते हैं। इस समय हम में से प्रत्येक पुरुष कुछ न कुछ ग़लती अथवा अयोग्य कार्य करता रहता है किंतु हमको न तो कोई धमकाता न चेतावनी ही देता है, आपकी त्रुटियों को आपसे छिपाने का सदा ही नम्रता का षड़यन्त्र होता रहता है, किन्तु आपके पीछे उनके विषय में प्रत्येक पुरुष बातचीत करता है। सामाजिक मानीटरों के द्वारा जिनको प्रत्येक व्यक्ति को चुन लेना चाहिये, आपकी व्यक्तिगत

उन्नति के लिये सामाजिक समालोचना ठीक २ होती रहती है। आपको अपनी बहुतसी ग़लतियां उसी प्रकार दिखलाई नहीं देतीं, जिस प्रकार किसी को भी बिना दर्पण के अपने माथे पर का मस्सा दिखलाई नहीं देता। आपके मित्र मानीटर आपको नैतिक दर्पण का काम देंगे। पुरुष एक प्रकार की तथा स्त्री दूसरी प्रकार की त्रुटियों को देखेंगी। पुरुष आप की शिकायतें आपके पुरुष मानीटर और स्त्रियां स्त्री मानीटर से करेंगी। किंतु इस विषय में कोई नियम बनाने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार आप स्वयं भी अपने को उसी रूप में देख सकोगे, जिसमें आपको दूसरे देखते हैं। इस प्रणाली से आपकी ग़लतियां आरम्भ में ही ठीक हो जावेंगी, नासमझियें दूर हो जावेंगी, अपयश और कलङ्क न लगने पावेंगे और स्वयं सामाजिक समता स्थापित हो जावेगी। ओनीडा (Oneida) पूर्णतावादियों, बुचमैनाइट लोगों (Buchmanites), और बौद्धों के अपराध को सार्वजनिक रूप से स्वीकार करने की प्रणाली दोषपूर्ण और दिखावटी है, इस मानीटर प्रणाली से कार्य अत्यन्त सुगमता, शांति, स्वाभाविकता और प्रभावपूर्ण ढंग पर हो जावेगा। इस प्रकार मित्रता आचारशास्त्र की दासी हो सकती है।

(५) ध्यान — जिस प्रकार शरीर योग्यता के लिये ठण्डे जल से दैनिक स्नान करना आवश्यक है उसी प्रकार नैतिक स्वास्थ्य के लिये दैनिक ध्यान करना भी आवश्यक है।

एकेश्वरवादी दैनिक प्रार्थना किया करते हैं। उनके विषय में एडविन आर्नोल्ड ने ठीक ही कहा है, "चापलूसी और भय की प्रार्थनायें प्रतिदिन व्यर्थ के धुयें के समान चढ़ती रहती हैं।" हम प्रार्थना नहीं करते, हम ध्यान करते हैं। ध्यान प्रतिदिन प्रातः और सायंकाल सोने के समय करना चाहिये। सायंकाल की अपेक्षा प्रातःकाल उसमें अधिक समय देना चाहिये। प्रातः काल के समय आपको निराहार मुख ही ध्यान आरम्भ कर देना चाहिये, पेट से पूर्व अपनी आत्मा से बात करो। पेट में भोजन न रहने पर मस्तिष्क अधिक उत्तम २ विचारों और प्रस्तावों को ग्रहण कर लेता है। भोजन के पश्चात् शरीर की शक्ति पाचन क्रिया में लग जाती है। भरा हुआ पेट मस्तिष्क को खाली कर देता है।

निम्नलिखित विषयों का ध्यान करो।

(क) आत्म निर्माण का चतुर्मुख आदर्श—मानसिक, शारीरिक, ललित रुचि सम्बंधी और नैतिक। इस बात का विचार करो कि आप उनमें अधिकाधिक उन्नति किस प्रकार कर सकते हैं।

(ख) राजनीतिक और अर्थशास्त्रीय संगठन के ४ उद्देश्य—जनतंत्रशासन, स्वतन्त्रता, समानता और भाईचारा। इस बात का विचार करो कि आप उनकी विजय के लिये अधिकाधिक कार्य किस प्रकार कर सकते हो।

(ग) ऊपर वर्णन किये हुये आठ महान आन्दोलन और उनसे सम्बंध रखने वाले महान् स्त्री पुरुषों के गुण।

(घ) वह सब जो इस समय निर्धनता, रोग, इष्टवियोग, बेरोज़गारी, जेलख़ाना, देशनिर्वासन और दमन के दुख को भोग रहे हैं। उनके पास अपने प्रेम और सहानुभूति के विचारों को पहुंचाओ और सच्चे दिल से उनकी कष्ट से मुक्ति पाने की इच्छा करो।

(ङ) वह अब जो इस समय आनन्द का उपभोग कर रहे हैं—माताएं बन जाने वाली पत्नियां मंगनी हुए हुए, विवाहित दम्पति, जीवन यात्रा आरम्भ करने वाले नवयुवक, फ़सिल काटने वाले किसान, भोज में एकत्रित मित्र उन सब को अपने प्रेम पूर्ण विचारों का संदेश दो और उनके आनन्द में प्रसन्नता मनाओ।

(च) मनुष्य जाति की एकता। आपके कमरे में पृथ्वी का एक गोल और भिन्न जातियों और राष्ट्रों से सम्बन्ध रखने वाले आपके मित्रों की मूर्तियां होनी चाहियें। पृथ्वी के गोल के ऊपर दैनिक ध्यान करने से आपको विश्वबन्धुत्व के आदर्श को स्थापित करने में अधिकाधिक सहायता मिलेगी।

(छ) सभी धर्मों के धर्मशास्त्रों और सभी देशों के कवियों की कुछ उत्तम सूक्तियां। इन सूक्तियों को एक कार्ड के ऊपर या तो छपवा अथवा लिख लेना चाहिये, इन सूक्तियों की धीरे २ बार २ आवृति किया करो। सूक्तियों का निर्वाचन आप स्वयं कर सकते हो, कुछ उत्तम विचारों को निम्नलिखित सूक्तियों में प्रगट किया जाता है:—

उत्तम सूक्तियां

सुकरात—"अपरीक्षित जीवन व्यतीत करने योग्य नहीं होता।"

अरस्तू—"केवल जीना ही नहीं, वरन् अच्छी तरह जीना।"

बुद्ध—"घृणा प्रेम से दूर हो जाती है।"

ईसामसीह—"आपके एक दूसरे से प्रेम करने से ही लोग जान जावेंगे कि तुम मेरे शिष्य हो।"

सेण्ट पाल—"प्रेम कभी असफल नहीं होता।"

गोएथे—"अर्ध-जीवन व्यतीत करने की प्रकृति को छोड़दो पूर्ण गुणी और सुन्दर जीवन व्यतीत करो।"

गोयथे—"स्वतंत्रता और जीवन के योग्य वही है, जो उन पर प्रतिदिन विजय प्राप्त करता रहे।"

शेक्सपीयर—"अपने लिये सदा ही सच्चे बने रहो।"

रूसो—मनुष्य स्वतंत्र उत्पन्न होता है किन्तु अब सब कहीं पराधीन है।"

मार्कस—"संसार के श्रमिकों! एक हो जाओ।"

"पूंजीपत्तियों के धन की शोक सूचक घण्टी बज रही है। धन छीनने वालों से ही छिन रहा है।"

मैज़िनी—"बलिदान कभी व्यर्थ नही जाता।"

मुहम्मद—"सन्तोष धारणकर शान्त हो जाओ"

कनफ्यूसियस—"पन्द्रह वर्ष की अवस्था में मेरा मन पढ़ने में लगता था, तीस पर मैं स्थिर हो गया; और चालीस में मेरे सब सन्देह दूर हो गये।

गुण और दोष

मुख्य गुण दो हैं। लगन और निःस्वार्थता (अथवा सामाजिकता)। जिस प्रकार गाड़ी के पहिये के सभी आरे उसके दोनों पहियों में होते हैं उसी प्रकार शेष सब गुण भी इन्हीं गुणों में होते हैं।

प्रथम—लगन

जीवन के प्रधान उद्देश्य के रूप में क्षणिक आनन्द के स्थान में उन्नति को पसन्द करना लगन (Earnestness) में ही आ जाता है। यही दोनों प्रकाश विभिन्न दिशाओं में चलने वाले नवयुवक स्त्री पुरुषों को संकेत किया करते हैं। आनन्द उनको सुन्दर, किन्तु मिथ्या प्रकाश से मोहित करता है, यह प्रकाश सभी वस्तुओं के ऊपर मोहनी डाल देता है। किन्तु इस मार्ग के अन्त में मनुष्य में परिल्कान्तता, रोग अज्ञान. और ओछापन हो जाता है और उसकी उन्नति रुक जाती है।

क्षणिक आनन्द

आनन्द को पसन्द करने वाले अपने अत्याधिक समय और शक्ति को गप्पों, घरेलू, खेलों, ताश, ब्रिज, उपन्यास पढ़ने, हल्की क़िस्म के सीनेमाओं, धूम्रपान, चोचलों, कामोत्तक कार्यों, खाने, पीने, आलस्य, विषय कार्यों, छैलापन और व्यभिचार में व्यतीत करते हैं। वह आजीविका के आवश्वक कार्य के अतिरिक्त और किसी कार्य को करना नहीं चाहते, वह शारीरिक और मानसिक दोनों ही प्रकार के कठिन कार्य से घृणा करते हैं। वह जीवन

की सतह पर केवल झाग पकड़ने के लिये ही एक क्षण के लिये उद्योग करते हैं, क्योंकि वह उसमें मोतियों और रत्नों की खोज में गहरा गोता लगाने के लिये अत्यन्त सुस्त और तटस्थ हैं। वह यथासम्भव अधिक से अधिक आनन्दानुभव करना चाहते हैं। वह अपने लिये प्रत्येक वस्तु और कार्य को सुलभ बना लेते हैं। 'कष्ट सहन करना' और 'अधिक परिश्रम करना' उनके सिद्धान्त में मूर्खता है। वह या तो इन्द्रिय सुखों में ही डूबे अथवा खाली बैठे रहना चाहते हैं। लंका की एक कहावत के अनुसार वह खड़े होने की अपेक्षा बैठना और टहलने की अपेक्षा खड़े होना, और दौड़ने की अपेक्षा टहलना पसन्द करते हैं। एक नवयुवक टहलते समय कहा करता था, "हमको केवल कोमल बातचीत करनी चाहिये।" उसका अभिप्राय यह था कि वह विज्ञान, राजनीति अथवा धर्म के विषय में उपयोगी वार्तालय की अपेक्षा हल्की गप्पों और हंसी दिल्लगी को पसंद करता था। एक और मित्रने मेरी पुस्तकों को देख कर कहा था, "आपके पास उपन्यास बहुत थोड़े हैं?" मैंने उत्तर दिया, 'नहीं' मेरे पास अन्य विषयों की पुस्तकें बहुत हैं।" वह केवल उपन्यास पसंद करता था। क्योंकि वह केवल आनन्द लेना और मानसिक परिश्रम से बचना चाहता था। केवल आनन्द के ही अन्वेषी स्त्री पुरुषों के लिये उद्योग, परिश्रम और एक स्थान में मन को लगाना बिल्कुल व्यर्थ है। उद्योग उनके लिये आकाश को अन्धकाराच्छन्न करता और जीवन की प्रसन्नता और चुहल को

नष्ट करता है। समय उनके लिये निर्दयता पूर्वक नष्ट करने की ही वस्तु है। उनका विश्वास है कि वह खूब 'आनन्द ले रहे हैं।' किन्तु वास्तव में वह स्वयं ही मूर्ख बन रहे हैं। उनकी तुलना सुन्दर २ खिलौनों और रङ्गीन कांच के टुकड़ों से खेलने वाले बच्चों से दी जा सकती है। किन्तु यदि कोई बड़ा मनुष्य इस प्रकार के खेल खेलेगा तो उस पर केवल दया ही आवेगी। यदि आप आनन्दोपभोग को ही पसंद करते हो तो आप अधिक हंसोड़े और चंचल बन सकते हो, किन्तु आपके मस्तिष्क और आत्मा का विकास नहीं होगा, वह बौने ही रह जावेंगे। फिर बौने से अधिक कौन अभागा है ?

उन्नति

सच्चे स्त्री और पुरुष का उद्देश्य व्यक्तित्व को उन्नति होता है, न कि क्षणिक आनन्द। उन्नति प्रकृति का सार्बजनिक नियम है। शाहबलूत का फल अपने भाग्य को अपने वृक्ष में पूर्ण करता है, छोटा सा अण्डा स्वर्ग के सुन्दर पक्षि अथवा प्रतापी उक़ाब में विकसित होता है, नवजात बालक पूर्ण स्त्री और पुरुष के पास ही बढ़ता है, जैसा कि अरस्तू का कहना है प्रत्येक प्राणी को उस जाति की अधिक से अधिक उन्नति से जांचना चाहिये। इसी कारण हमको बौने आदमी पर दया आती है, यद्यपि पूरा बढ़ने पर उसके भोजन और वस्त्र का व्यय भीं बढ़ जाता है; किन्तु वह पूर्ण पुरुष नहीं होता। हम अपने बच्चों के बढ़ने को ध्यान पूर्वक देखा करते हैं, उनकी उन्नति से हम को अत्यन्त

आनन्द होता है और हमारा हृदय आत्मगौरव से भर जाता है। किन्तु हम उस बात को भूल जाते हैं कि वयस्क आयु प्राप्त कर लेने पर भी हमको उन्नति करने के कार्य को बन्द नहीं करना चाहिये। श्वास लेने और भोजन करने के समान उन्नति भी जीवन भर करनी चाहिये। निरुत्साहियों के लिये दण्ड ही यह है कि उनकी उन्नति रुक जावे। वह जीवन के सब अंगों का आनन्द नहीं ले सकते, वह उनमें से कुछ से ही सन्तुष्ट हो जाते हैं। उनको अपनी हानि का उसी प्रकार पता नहीं लगता जिस प्रकार जन्मान्ध को नैन के न होने का दुःख नहीं होता। यदि वह शरीर के विकास की उपेक्षा करते हैं, तो वह उत्तम स्वास्थ्य, उत्तम पाचनक्रिया, वाह्य खेलों और निःस्वप्न निद्रा के आनन्द को नहीं ले सकते। वह प्रति दिन प्रातःकाल के समय प्रसन्न मुख होकर अभिवादन नहीं कर सकते। यदि उनमें मानसिक और ललित रुचि की त्रुटि है तो वह विज्ञान, साहित्य और कला से भीं वञ्चित रहते हैं। वह प्राणिविज्ञान के मूल और जाति के आरम्भिक स्थान से अधिक दूर नहीं जा सकते, क्योंकि उच्च मानसिक और ललित रुचि सम्वन्धी संस्कृति उस मनुष्य की विशेषता है जो पशुओं से कहीं अधिक विशेषता पूर्वक विकसित हो। उनको मनुष्य का आकार प्राप्त हो गया है, किन्तु वास्तविक मनुष्य वही है जिसमें तर्क और भाव की शक्ति का उत्तम विकास हुआ हो। विज्ञान और कला ही अपने विभिन्न रूपों और विशेषताओं से मनुष्य को सब प्राणियों से ऊपर

उठाते हैं। यदि आपमें उत्साह नहीं है तो आप में और लंगूर में थोड़ा ही भेद है, यदि आप नैतिक विकास को इन्द्रिय जन्य आनन्द के लिये उपेक्षा करोगे तो आप प्रेम, परोपकार, आत्म-संयम और त्याग के आनन्द का कभी उपभोग न कर सकोगे। जिस प्रकार बौने अथवा बहिरे को मनुष्य जन्म की सब सुविधाएं नहीं मिलतीं, उसी प्रकार उन्नति का न होना स्वयं भी एक दण्ड है, संसार में उत्पन्न होने वाले प्रत्येक बालक का कर्तव्य ऐसी उन्नति करना है जो निर्विघ्न और अविरल प्रवाह वाली हो, जो सभी विभागों में एक सी हो, जो जीवन भर सदा होती रहे, और जो केवल मृत्यु होने से ही रुके, ऐसी उन्नति को ही स्थिर साधारण उन्नति कहते हैं।

विषय सुख

उन्नति का मूल उत्साह में अवश्य हैं, किन्तु उसका मिष्ट फल आनन्द है। प्रायः आनन्द का स्थान विषयसुख को उसी प्रकार दे दिया जाता है, जिस प्रकार सुन्दर और स्वादिष्ट भोजनों के स्थान में विष मिश्रित भोजन खा लिया जावे। विषय सुख इन्द्रियों और नाड़ीचक्र पर मिर्भर करता है, अतएव वह आत्मघातक और अपने को मुर्ख बनानेवाला है। वह खण्डित संतुष्टि में जी के ऊब जाने पर समाप्त हो जाता है। वह केवल नाड़ियों और इंद्रियों को मृतक बनाता अथवा उत्तेजित करता है, जिससे अन्त में बड़ी भारी थकावट होती है, उसी उसी आनन्द को बार २ भोगने से आप संतुष्ट नहीं हो

सकते, क्योंकि उतना ही विषय सुख उत्पन्न करने के लिये उससे भी अधिक कपकपी उत्पन्न करने वाले विषय कार्य की आवश्यकता होती है। इस प्रकार विषय सुख उस सूदखोर महाजन के समान है जो मिश्र ब्याज लेकर भी ऋणी को अपना दास बना लेता है। यदि आप आनन्द के लिये विषय सेवन करते हो तो आप चलनी में पानी भरना चाहते और पृथ्वी से सम्बंधित वस्तु में बिजली भरना चाहते हो, इसमें आप को कभी सफलता नहीं मिलेगी। आप अपनी आग बुझाने के लिये नमकीन पानी पीते हो। उन विषयसुख अर्थशास्त्र प्रसिद्ध आहर्द प्रकाशित करने वाले बदले के नियम (Law of Diminishing Returns) के बाद किये जाते हैं। ज्यों २ समय बीतता जाता है उनके लिये हविस भी बढ़ती जाती है, अन्त में बड़े से बड़ा विषय सुख भी लेशमात्र कपकपी उत्पन्न नहीं करता और उससे इंद्रियां भी उत्तेजित होती हैं। विषय सुख के अन्त में माया दूर होकर स्वभाव अत्यंत चिड़चिड़ा हो जाता है। सुलेमान (Solomon) बड़े राजसी विषयों का उपयोग करता था, कहा जाता है कि उसके सातसो स्त्रियां थीं। अन्त में उसने भी यह कहा. "यह सबसे बड़ा अभिमान है। यह सब अभिमान है।" विषयसुख के दास को शांति और नींद नसीब नहीं होती, वह अपने मनोविकारों और वासनाओं से लगातार दांते के वर्णन किये अभागे भूतों के समान इधर उधर घूमते रहते हैं।

"वह बुरी आत्मायें कठोर झोकों को इस प्रकार सहन करती है, जिस प्रकार शरद् ऋतु के आने पर

टिड्डियां बड़ी भारी संख्या में उत्पन्न हो जाती हैं, और उनके दल के दल ऊपर से चक्कर काटा करते हैं।

वह झौंके उनको कभी इधर कभी उधर कभी नीचे कभी ऊपर धक्का दिया करते हैं। उनको विश्राम की आशा की कोई दिलासा नहीं दी जा सकती।"

विषय सुख उत्तम भावों को नष्ट करता और बुद्धि को मलीन करता है। यह अपने उपासकों को स्वार्थी इंद्रियलोलुप बना देता है। उनको मानवी स्वभाव में कोई श्रद्धा नहीं रहती और न उनमें उत्तम आदर्शों के लिये कोई उत्साह रहता है। उनकी बलिदान, सामाजिक सेवा और वीरतापूर्ण कार्यों की सारी योग्यता नष्ट हो जाती है। वह सभी उन्नतिशील आंदोलनों से अपनी तटस्थता की शेखी मारते हैं, जब कि वह भोगविलासों की कीचड़ में डूबे रहते हैं। वह कमल खाने वालों का पुराना प्रश्न किया करते हैं, "पाप के साथ युद्ध करने से हमें क्या आनन्द आयेगा ?" राइनैल्डो (Rinaldo) इसी प्रकार का विलासी था, (Ubaldo) ने उसको टासो (Tasso) के मुख में निम्नलिखित शब्द सुन कर इस प्रकार फटकार बतलाई है —

"बेटी मनुष्यता को कैसी नींद, कैसे आलस्य और कैसे नीच आनन्द ने पिघला दिया है ? तेरी प्यास अभी बुझी या नहीं ? अब तो उठ ! उठ !"

यथार्थ आनन्द

इन्द्रियों और नाड़ियों को अच्छे लगने वाले विषयसुख इतने अस्थायी और धोखेबाज होते हैं। किन्तु तर्क और भाव के ऊपर निर्भर रहने वाला आनन्द स्थायी होता है। वह जीवन के लिये अमूल्य उपहार है। वास्तव में आनन्द ही जीवन और जीवन आनन्द है। यह धीरे २ किन्तु स्थायी रूप से बढ़ता और फैलता है। यह उस अकथनीय आनन्द से आपके व्यक्तित्व को लपेट और छा देता है, जो स्वयं ही अपने अस्तित्व की युक्ति है। उसी के वास्ते अन्य सब वस्तुओं का अन्वेषण किया जाता है, उससे आगे या ऊपर और कुछ नहीं है। यह उस वृक्ष के समान है जिसकी जड़ें पृथ्वी में बराबर गहरी होती चली जाती हैं, जब कि वह खजूर के समान बराबर अधिकाधिक ऊंचा होता जाता है, जिसके ऊपर सबसे मीठे खजूर के गुच्छे लगे हुये हैं और जो अरब की मरूभूमि में श्रमपरिक्लान्त पथिकों को शान्ति और विश्राम को निमंत्रण देता है। उसकी जड़ें मन और हृदय में गहराई तक जमी हुई हैं। यहीं उसको सामायिक और वार्षिक फ़सिल को बराबर बढ़ाते रहने के लिये उसको उत्तम और उपजाऊ भूमि मिलती है। इस आनन्द से न तो जी ऊबता है और न थकावट आती है। उसकी सुन्दरता और शक्ति कभी कम नहीं होती। उसके किनारे कभी सुस्त नहीं होते और न उसकी चमक ही मन्दी पड़ती है। परिमाण विहीन (Minus-magnitude) तारे तक किसी दिन प्रकाश और ज्योतिहीन

हो जावेंगे, किन्तु वह पवित्र आनन्द, जो नैतिकता की कसौटी है—कितना ही समय वीत जाने पर भी नवयौवन सम्पन्न, सुन्दर और प्रतापी बना रहेगा यह व्यक्तित्व की अविनाशी निधि है। आपको इसे प्राप्त करके प्रतिदिन एकत्रित करना चाहिये। जिस प्रकार मिडास के छूने से प्रत्येक वस्तु सोना हो जाती थी, उसी प्रकार आपके प्रत्येक कार्य से वास्तविक आनन्द के कोष में कुछ न कुछ वृद्धि अवश्य होनी चाहिये। व्यक्तित्व को धनी बनाने वाली नैतिकता की इस उच्च कसौटी के लिये आपको उतना ही अभिलाषी और लोभी बनना चाहिये। जितना एक अमरीकन करोड़पति अपने बैंक के हिसाब और पूंजी के लिये होता है। नैतिकता की इस कसौटी के क्रोसस (Croesus) और कुवेर तथा व्यक्तित्व के समाप्त न होने वाले तथा अविनाशी धन के कोटि २ करोड़पति बनने का यत्न करो। इस धनको न तो चोर ही चुरा सकते हैं, और न साम्यवादी ही ज़ब्त कर सकते हैं। यह सभी सम्भव, आपत्तियों दुर्घटनाओं, युद्धों, क्रान्तियों मूल्य के उतार तथा चढ़ाव में सुरक्षित रहता है। यह आप में ही आपके अन्दर उसी प्रकार है जैसे यह आपके शरीर का ही एक भाग हो। जिस प्रकार आप में से कोई आपको नहीं छीन सकता उसी प्रकार यह आप से नहीं छीना जा सकता। यह एक सुन्दरी के सौन्दर्य, वैज्ञानिक के ज्ञान, गायक के स्वर, विद्वान की विद्या, साधु के गुण और महात्मा की बुद्धि के समान सदा आपके व्यक्तित्व में ही रहता है। यह उस बाह्य विघ्न करने वाले वोझ के समान

नहीं है, जिसको यात्रा में ले जाना पड़ता है, न यह आपके पहिनने के वस्त्रों के ही समान है। यह तो स्वयं आप, आपका शरीर मन, और आत्मा, तथा आपका मौलिक व्यक्तित्व है। यह आपका ऐसा वास्तविक धन आपकी अपनी सम्पत्ति है जो आपके सब धन सम्पत्ति और वस्त्राषभूणों के छिन जाने पर भी आपके पास बच रहता है। यह धन आपके मस्तिष्क में हैं, बैंक में नहीं; यह आपके हृदय में है, कोष में नहीं। यह उत्साह और उन्नति का परितोषिक है। अपनी पूर्ण शक्ति से इसके लिये उद्योग करो।

इस सुख का मूल्य लगातार और निर्बाध उद्योग है। नैतिक-शास्त्र में 'सुकरात के उद्योग' (Socratic vigour) का ध्यान करो। साइना (Siena) के गिरजे में गुण की ढलवां पहाड़ी पर चढ़ते हुये सुकरात के चित्र का ध्यान करो। शीलर (Schiller) की नरसिंघे की निम्नलिखित पुकार को सुनो —

"तुझको बिना आराम किये हुए बराबर उद्योग करते रहना चाहिये, थमने अथवा दुर्बलता को कभी मत जानना।"

लगन (Earnestness) मनुष्य का प्रथम नैतिक गुण है। इसका प्रदर्शन दो मुख्य गुणों में किया जाता है — सरलता और शुद्ध अन्तःकरणता।

(१) सरलता—सरलता सभी प्रकार के बड़प्पन का साधन है। आप किसी प्रसिद्ध नेता के विषय में बहुत कुछ सुनते और पढ़ते हो, किन्तु जब आप उससे भेंट करते हो, तो

आप तुरन्त यही कहते हो, "वह कैसा सरल व्यक्ति है ।" वह अन्य अनेक कम प्रसिद्ध लोगों की अपेक्षा सरलता का अधिक प्रेमी होता है। शरीर के लिये पहलवानी के समान ही आत्मा के लिये सरलता है। सरलता अनेक प्रकार से प्रगट होती है । लगन वाला मनुष्य अपने भोजन पान में सरल होता है । वह व्ययसाध्य और उत्तेजक तश्तरियों को पसन्द नहीं करता वह घंटों में बनने वाले मिश्रित कोफ्तों को पसंद नहीं करता । वह भोजन पान करने में बहुत कम समय लगाता है, उसको उससे भी अधिक महत्वपूर्ण कार्यों को करने की चिंता रहती है। वह दिन में कई बार नहीं खाता, न वह एक भोजन में अनेक प्रकार की वस्तुएं ही खाता है । वह भोजनशाला के विषय में धूप में पकाये हुये भोजन को सबसे अधिक पसंद करता है। वह यदि सस्ती हों तो अपने यहां की उत्पन्न हुई वस्तुओं को ही खाता है। वह जीने के लिये खाता है, खाने के लिये नहीं जीता। चटनियों में सब से उत्तम उसको 'भूख' मालूम देती है, इस चटनी में प्रकृति भी स्वाद डाल देती है । वह यथासम्भव सभी अचार मुरब्बों और उत्तेजक पदार्थों से बचता है अथवा उनका कम से कम सेवन करता है । वह सुकरात, ग्ज़ेनोक्रेटीज़ (Xenocrates), ज़ेनो (Zeno), स्पाइनोज़ा (Spinoza) तथा अन्य साधु महात्माओं से संयम की शिक्षा लेता है। भोजन और पेय पदार्थों का दास कभी भी गुण और बुद्धि को प्राप्त नहीं कर सकता । उसका आत्मा

उसके तालू और पेट में होता है; उसकी इच्छाशक्ति निर्बल और मस्तिष्क तमाच्छन्न होता है। वह केवल एक ऐसा शारीरिक यंत्र होता है, जो बड़े २ विचारों और उत्तम भावों को नहीं समझ सकता।

लगन वाले मनुष्य के वस्त्र साधारण होते हैं। वस्त्रों में वह बहुत कम व्यय करता है। उसके वस्त्र सस्ते और संख्या में भी कम होते हैं। किंतु वह मैले और गंदे नहीं होते। उसके पास आधे दर्जन सूट और एक दर्जन बूट नहीं होते, जैसे वह कोई इन्हीं वस्तुओं का व्यापारी हो। उसको प्रतिदिन नई पोशाक बदलने में आनंद नहीं आता। मैं एक व्यक्ति को जानता हूं जो बड़े अभिमान से कहा करता था, "मेरे पास आठ सूट हैं, और मैं एक ही सूट को सप्ताह में कभी भी दो बार नहीं पहिनता।" मैंने उत्तर दिया, "आप ३६५ सूट क्यों नहीं बनवा लेते, जिससे आप वर्ष में प्रतिदिन एक सूट बदल लिया करें।" वस्त्र के विषय में अपनी रुचि को अत्यंत सरल बनालो। अपने को बहुमूल्य वस्त्रों से सजाने वाले उन व्यर्थ के छैलाओं और रंगीलों के समान मत बनो, जो अपने धन का प्रदर्शन करना अथवा चालाकी से अपने मुख पर झूठा सौंदर्य लाना चाहते हैं। वास्तविक सौंदर्य को सजाने के लिये वस्त्रों की आवश्यकता नहीं होती। केवल कुरूप स्त्री पुरुषों का ही यह विश्वास होता है कि उत्तम वस्त्रों में उनकी कुरूपता छिप जावेगी। बादशाह कोफेटुआ (Cophetua) की भिखारिन चिथड़े पहिने

थी, किंतु वह 'धूप के समान सुन्दर' थी । यदि आप धनी हो और अपने धन को वस्त्रों में नष्ट करते हो, तो आप अपने अपराधीपन के चिन्हों को अपने शरीर पर धारण करते हो, आपके रेशम और साटन के वस्त्र कैदी के वस्त्र हैं । यदि आप निर्धन भी हो तो आप सरलता को नापसंद कर सकते हो। निर्धनता सदा ही सरल ढंग और स्वभाव की शिक्षा नहीं देती। उस दशा में आप सस्ते नकली मोती, भड़कीली मालायेँ दिखावटी रंगीन वस्त्र, मुख तथा ओठों पर लगाने के लाल रंग, और पाउडर आदि को मोल ले सकते और सरलता के शासन के विरुद्ध पाप कर सकते हैं। इस बात को स्मरण रखो कि बज़ाज़ और दर्ज़ी आपके आकार में लेशमात्र भी परिवर्तन नहीं कर सकता। आप कितने भी बढ़िया वस्त्र पहिन लो, जो कुछ हो वही रहोगे। सौंदर्य के विषय में यह है कि उत्तम स्वास्थ्य और शुद्ध आचरण पैरिस के अच्छे से अच्छे क्रीम और पाउडर से भी अधिक सौंदर्य बढ़ाते हैं । गाजर के के खाने से आपका रूप अन्य सभी शृङ्गार सामग्री की अपेक्षा अधिक सुन्दर हो जावेगा। नम्र स्वभाव से आपका रूप इतना सुन्दर हो जावेगा कि उत्तम से उत्तम वस्त्राभूषण तथा सुगंधि आदि से शृङ्गार करने वाली नवयुवतियों का भी इतना नहीं हो सकता। अतएव वस्त्रों में सरलता को ही पसंद करो । बहुव्यय, कृत्रिमता, और अत्यंत बनाव शृङ्गार को छोड़ दो, इससे बहुत शीघ्र घृणा और उपहास सहन करना पड़ता है ।

जैसा कि ए० वी० प्लैटेन (A. V. Platen) ने ठीक ही कहा है —

"यह सत्य है कि चमकीले वस्त्र जादू करते हैं, किंतु वह हमको थका देते हैं, सरल वस्त्रों से नेत्र और आत्मा दोनों की ही सदा थकान उतरती है।"

लगन वाले मनुष्य का रहन-सहन भी सरल होता है। वह इस प्रकार के साधारण तथा पर्याप्त स्थान को पसन्द करता है जो उसकी शीत और वर्षा से रक्षा करे उसके कार्य में आवश्यक आराम दे। वह अनेक कमरों वाले विशाल प्रासाद की इच्छा नहीं करता, क्योंकि उसका उपभोग वह अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं से नहीं कर सकता, वह शोकग्रस्त भूत के समान एक सजे सजाये ख़ाली कमरे से दूसरे में टहलते रहने की पर्वाह नहीं करता, वह जानता है कि उसको सामाजिक सम्मान और साख के लिये भारी मकान में व्यर्थ धन व्यय करने का कोई अधिकार नहीं है, एक औसत स्त्री अथवा पुरुष को मानवी व्यक्तित्व के औसत वाले ही छोटे से कमरे अथवा मकान में रहना चाहिये। किसी बड़े भारी कमरे, मकान अथवा महल में तो कोई भारी दैत्य ही रह सकता है। राजाओं, पादरियों, सम्भ्रान्त मनुष्यों और करोड़पतियों की अट्टालिकायें वास्तव में व्यक्तित्व के सुन्दर जेलख़ाने होते हैं। किन्तु उनके अन्दर रहने वाले अपनी जंज़ीरों को छाती से लगाते और जेलख़ाने में प्रसन्न होते हैं।

लगन वाले मनुष्य का मकान उसी प्रकार उसकी आवश्यकताओं के अनुसार होता है, जिस प्रकार एक घोंघे का घर उसके शरीर के परिमाण के अनुसार होता है। वह अपने घर को अत्याधिक फ़र्नीचर से नहीं सजाता, वह साधारण और सस्ते फ़र्नीचर को ही पसन्द करता है। वह बहुव्ययसाध्य फ़र्श, कुर्सियों और मेज़ों को पसंद नहीं करता; उन पर वह अधिक व्यय नहीं करता, एक बार मुझे एक ऐसी महिला से मिलने का अवसर मिला जिसका कमरा फ़र्नीचर से इतना अधिक भरा हुआ था कि मुझको उस महिला के बैठने के सोफ़े तक पहुँचने का मार्ग खोजने में बड़ी कठिनाई पड़ी। मैंने अपने मन में कहा—"यह किसी मकान का कमरा है, अथवा फ़र्नीचर वाले की दूकान ?" अधिक फ़र्नीचर मोल लेने और उस पर व्यय करने की गलती मत करो। लागत और परिमाण से कमरा सुन्दर नहीं होता। सरलता और कलापूर्ण सजाबट से कमरे को अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं के अनुसार सजाना चाहिये।

लगन वाले मनुष्य के ढङ्ग भी सादा होते हैं। उसको अधिक हवा नहीं लगी होती, न वह कृत्रिमता और अनुकरण से प्रसन्न होता है। उसके व्यवहार में अभिमान नहीं होता, वह सब से ही सरलता और मित्रतापूर्ण प्रसन्नता से मिलता है। वह वार्तालाप और पत्र-व्यवहार में दिखावटी उपाधियों और प्रशंसात्मक वाक्यों से घृणा करता है। वह किसी को प्रणाम नहीं करता

और न किसी से प्रणाम की इच्छा ही करता है। उसके मित्र और परिचित लोग उससे बिना पहले समय निश्चित किये सुगमता पूर्वक मिल सकते हैं। सरलता चापलूसी और अहङ्कार को दूर करती है। यह उस सामाजिक आदान-प्रदान का स्वाभाविक ढङ्ग बना देती है, जो इस समय कृत्रिम सम्मेलनों, कठोर नियमों और प्रभावपूर्ण प्रथाओं से विषाक्त हो गया है। लगन वाला पुरुष साधारण बुद्धि और आचरण की सहायता से इस कांटों की बाड़ के अन्दर से निकल जाते हैं।

लगन वाला पुरुष अपनी भाषण और शब्द रचना में भी सरल होता है। वह दिखावटी और आडम्बरपूर्ण शब्दों को पसंद नहीं करता। होमर, डेमॉस्थीन्स (Demosthines) और वाल्टेयर का स्थान साहित्य के इतिहास में अवश्य ही सब से ऊंचा है, किन्तु उनकी रचना शैली वास्तव में ही सरल है। यदि आपको कोई बात कहनी है तो सरलता उसमें शक्ति और जीवन भर देगी। सरलता का अभाव ओछी बुद्धि, छोटी वकालत और सावधानी से बोलने का चिन्ह है, बफ़न (Buffon) की बुद्धिमत्ता पूर्ण उक्ति को स्मरण रखो, "रचना शैली स्वयं उस मनुष्य का रूप होती है।"

लगन वाला मनुष्य कामवासना को रोकता तथा अपने वश में करता है। वह उसका स्वाभिमान पूर्ण स्वामी होता है, न कि निःसहाय दास। कामवासना बेकाबू होकर अग्नि के समान आपके व्यक्तित्व को जला कर उसकी राख कर सकती है।

युवावस्था में पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करने से मस्तिष्क और शरीर की उन्नति होती है। लगन आपको योग्य समय पर वास्तविक प्रेम के असीम आनन्द को भोगने योग्य बना देती है। सिनेमा, उपन्यासों, नाटकों और नृत्य-शालाओं से उत्तेजित असमय कम उम्र की काम प्रवृत्ति आत्मा को नष्ट करती और शरीर को निर्बल बनाती है। यथासम्भव विवाह के समय को टालने और कामवासना का अनुभव न करने से आत्मशासन के अतिरिक्त हानि कुछ नहीं होती। इसके विरुद्ध इससे आपको दीर्घ-जीवन और उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति होगी। साथ ही यह आपको कला, विज्ञान, दर्शनशास्त्र और राजनीति के लिये वास्तविक प्रेम देकर आपके व्यक्तित्व का विकास करेगा। युवावस्था में अत्यधिक कामसेवन निर्बल आचरण और खाली मस्तिष्क का चिन्ह है। यदि आप नियमित और नित्य अध्ययन, सामाजिक सेवा, बाह्य खेलों और भोजन में संयम का अभ्यास डाल लोगे तो आप कामवासना के राक्षस को निश्चय से ही अपने आधीन कर लोगे। इसके अतिरिक्त मांस, मछली और अण्डों जैसे उत्तेजक भोजन को अत्यधिक मत खाओ; न नित्य मद्यपान ही करो। कामवासना भोजन और पेय पदार्थों से उत्पन्न होती है। इसको अधिक भोजन तथा स्नायुउत्तेजक पदार्थों से शक्ति मिलती है। जब आप विवाह करने का निश्चय करें तो भी आपको कामवासना का स्वामी बने रहना चाहिये, न कि उसका दास। स्त्री और पुरुष दोनों को ही इस बात का पूर्ण ध्यान रखना

चाहिये। जो स्त्री-पुरुष अपने मन के अनुसार अपनी कामवासना को नहीं जीत सकते वह दया के पात्र हैं। इस प्रकार के व्यक्ति उस मोटर चलाने वाले के समान हैं, जिसकी मोटर गाड़ी बिगड़े हुए ब्रेक से पहाड़ी से नीचे को आती है। ऐसे स्त्री पुरुष कभी भी शान्ति और आनन्द का लाभ नहीं उठा सकते। शासन में न आने वाली कामवासना उस भयङ्कर ज्वर के समान होती है, जो रोगी को बराबर बेचैन किये रहता है। अपने मन में यह भावना करते रहो—"मैं अपनी इच्छा होने पर ही काम-सेवन करूंगा, न कि बाधित होकर।" अवश होकर काम-सेवन करने से अनेक सामान्य तथा संक्रामक रोग लग जाते हैं। इससे असमय मृत्यु का ग्रास भी होना पड़ता है, क्योंकि यह शरीर की जीवनशक्ति को कम करता है। मैं एक नवयुवक को जानता हूं जिस पर फेफड़ों की सूजन का भयङ्कर आक्रमण हुआ था। उसके चिकित्सक ने कहा था—"इस अवस्था में कोई अन्य नवयुवक तो कभी का मर गया होता। मैं समझता हूं कि वह अत्यन्त संयमी है और उसका रक्त मदाक्त नहीं हुआ है।" उस दशा में बुद्धिमान चिकित्सक का अनुमान बिलकुल ठीक था। कामवासना के ऊपर संख्या में ही नहीं वरन् मन में भी शासन रखना चाहिये। आपके हृदय और मस्तिष्क किसी को देखते ही उस पर मोहित न हो जावें। कामवासना को यदि निश्चित स्थान में रुकने और सभ्य समाज के नियमों का अनु-सरण करने का अभ्यास न डाला गया तो यह अत्यन्त भ्रमण-

शील और भिक्षुक गृहविहीन यात्री है। कामवासना को पिंजरे में बन्द रख कर रक्षा करनी चाहिये, अन्यथा यह पशु स्थान से भाग जाने वाले सिंह के समान इधर उधर घूमती रहेगी। आपका उद्देश्य इसको सूक्ष्मातिसूक्ष्म करने घटाने और एक स्थान पर निश्चित् करना होना चाहिये। इसकी चञ्चलता से विवाहविच्छेद और गुप्त व्यभिचार होता है, जो समाजिक जीवन को विषाक्त तथा दूषित कर देते हैं।

कामवासना को प्रेम के मधुर भाव से कम और निश्चल किया जा सकता है। वासना में पड़नेवाले स्त्री पुरूषों के मन और हृदयों को आन्दोलित करनेवाली भयंकर वासना से 'प्रेम' बिल्कुल ही भिन्न होता है। 'वासना में पड़ने से' सावधान रहो। सदा सच्चा प्रेम करो। कामवासना के प्रवाह में मत बह जाओ। कामवासना एक रोग है। यह तर्क और निर्णयात्मक बुद्धि को पंगु बना देती है, कभी २ तो यह उन्मत्त स्त्री पुरूषों से बड़े २ भयंकर कार्य करा देती है। इस प्रकार के 'प्रेमी' भयंकर उत्तेजना से पीड़ित होते हैं, उनको अस्पताल भेज देना चाहिये। वह अपने सामाजिक कर्तव्यों की उपेक्षा कर सकते अपने परिवार को छोड़ सकते, अपने धन को नष्ठ कर सकते, अपने प्रतिद्वन्दियों अथवा प्रेमी प्रेमिकाओं की हत्या कर सकते अथवा आत्मघात तक कर सकते हैं। इस वासना का नाटक इतना कष्ट पूर्ण होता है कि वह अपने ही अन्तरात्मा के विरुद्ध विद्रोह करता है और किसी की पर्वाह नहीं करता। प्रेम व्यथित ऐनटोनी (Antony)

और रोमियो (Romeo) से लेकर आधुनिक व्यभिचारियों, हत्यारों, आत्मघातियों अथवा फ्रांसिसी शब्दों में 'भावुक अपराधियों' तक आपको मानसिक रोग के रोगियों की बड़ी लम्बी शृङ्खला मिलेगी। इस प्रकार की विनाशात्मक कामवासना के विषय में ही शेक्सपीयर ने कहा है:—

"प्रेम राक्षस है। प्रेम से अधिक बुरा देवदूत अन्य कोई नहीं है।"

अतएव इस बात का ध्यान रक्खो कि इस प्रकार की कामवासना को, जो उस कामदेव रूपी पागल कुत्ते के काटने से उत्पन्न हुई उन्मत्तता के समान है, अपने अन्दर उत्पन्न मत होने दो। यदि आपके मस्तिष्क में इसके कुछ चिन्ह हों तो उनकी शीघ्र ही चिकित्सा करो। उस स्थान से हट जाओ, उस भयंकर व्यक्ति के सहवास को त्याग दो जिस पर आपकी तबियत हो। अपना हृदय किसी अच्छे मित्र के सामने खोल कर रख दो, जो आपको अपनी सम्मति और सहयोग से कुछ सहायता दे सके। अपने धूएं को अंदर २ मत घोटो, इससे मामला और बिगड़ जावेगा। अपने मन की बात को बुद्धिमान् और सहानुभूतिपूर्ण मित्र से कह कर जी हल्का करलो। तब भाग जाओ। कैथोलिक नीतिज्ञ कहते हैं कि वासना होने पर वहां ठहर कर उसका मुक़ाबला करने की अपेक्षा वहां से भाग जाना कहीं बेहतर है। ऐसा दशाओं में, आत्मसंयम रखना ही सच्ची वीरता है। वासना बड़ा भारी शक्तिशाली और बलवान् कीटाणु है। इसको सूख जाने पर भी फिर सुखाना चाहिये। क्योंकि यह बड़ी

सुगमता से फिर जीउठता है। अतएव इससे इतनी दूर भागजाओ कि आप अपने को पूर्णतया सुरक्षित समझने लगो, नवीन स्वस्थ वायुमण्डल में आप फिर औसत व्यक्तित्व को प्राप्त कर लेंगे।

प्रेम

कामवासना से भागो, किंतु सच्चे प्रेम का उत्साह तथा प्रसन्नता पूर्वक स्वागत करो। कामवासना अपने मूल रूप में शारीरिक तथा वासनामय होती है, उसका अन्त प्रायः घृणा और तटस्था में होता है। किंतु प्रेम मनोवैज्ञानिक अनुभव है। यह प्रथम आत्मा में उत्पन्न होता है, और फिर शरीर में फैलता है। प्रेम एक नम्र भाव है, जो सदा ही तर्क और अन्तःकरण के वश में रहता है। यह जीवन को साधन सम्पन्न, सुन्दर और विकसित करता है। प्रेम इस बात को जानता है कि वह कहां जा रहा है और क्या कर रहा है। यह वासना के समान अन्धा और बहिरा नहीं होता। आपको यह कहने योग्य होना चाहिये "मैं अपनी इच्छापूर्वक प्रेम करता हूँ न कि विवश होकर।" प्रेम विरुद्ध जिननेन्द्रिय वाले दो व्यक्तियों की मित्रता होता है। यह वह मित्रता होती है जो स्त्री पुरुष में होने के कारण अधिक मीठी हो जाती है। किसी स्त्री और पुरुष की मित्रता से पूर्व उनमें सच्चा 'प्रेम होना चाहिये। किसी स्त्री अथवा पुरुष के 'प्रेम में पड़ने' से पूर्व आपको उसको अच्छी तरह जानना और उसके विषय में श्रद्धा होनी चाहिये। आपके विचार आदर्श रुची और कार्य एकसे होने चाहियें। धर्म और राजनीति में

आपकी सम्मति अत्यंत बिरोधी न हो। सच्चे प्रेम के उत्पन्न होने से पूर्व आपको उसकी मित्र के रूप में मान तथा प्रशंसा करनी चाहिये। इस प्रकार का प्रेम कभी यकायक नहीं होता। आप मुख के सौंदर्य को एक दृष्टि में ही देख सकते हैं, किन्तु आप किसी के मन और हृदय का इतनी शीघ्र अध्ययन नहीं कर सकते। अतएव, किसी के सुन्दर रूप, मोदक नेत्र, सुडौल नासिका, अथवा सुन्दर केश देखकर उत्पन्न हुआ प्रेम फूंस में लगी हुई आग के समान होता है; वह अत्यंत शीघ्र बढ़ता और तुरंत ही शांत हो जाता है। सच्चे प्रेम की उपमा उस कोयले से दी जाती है, जो बड़ी धीरे २ आंच पकड़ता है, किन्तु जब वह जलने लगता है तो उसमें आंच बहुत देर तक रहती है। स्त्री पुरुष के मित्रतापूर्ण सम्बन्ध में किसी दर्जें पर पहुँच कर अधिक गहन व्यक्तिगत रुचि प्रगट हो जाती है, उस समय नाड़ियों में काम-वासना की कपकपी अनुभव होने लगती है, तब सैली (Shelley) के शब्दों में दोनों पूछते हैं—

> "संसार में कोई वस्तु अकेली नहीं है;
> इस स्वर्गीय नियम में सभी वस्तुएं
> एक दूसरे के सम्बन्ध में बन्धी हुई है,
> फिर हम और तुम दोनों भी क्यों न मिल जावें ?"

इस प्रकार सच्चा प्रेम उत्पन्न होता है, और वह दम्पति हो जाते हैं। इस प्रकार के प्रसन्न और गुणी प्रेमियों के लिये फ्रीलीगैथ (Freiligath) कहता है:—

सुगमता से फिर जीउठता है। अतएव इससे इतनी दूर भागजाओ कि आप अपने को पूर्णतया सुरक्षित समझने लगो, नवीन स्वस्थ वायुमण्डल में आप फिर औसत व्यक्तित्व को प्राप्त कर लेंगे।

प्रेम

कामवासना से भागो, किंतु सच्चे प्रेम का उत्साह तथा प्रसन्नता पूर्वक स्वागत करो। कामवासना अपने मूल रूप में शारीरिक तथा वासनामय होती है, उसका अन्त प्रायः घृणा और तटस्था में होता है। किंतु प्रेम मनोवैज्ञानिक अनुभव है। यह प्रथम आत्मा में उत्पन्न होता है, और फिर शरीर में फैलता है। प्रेम एक नम्र भाव है, जो सदा ही तर्क और अन्तःकरण के वश में रहता है। यह जीवन को साधन सम्पन्न, सुन्दर और विकसित करता है। प्रेम इस बात को जानता है कि वह कहां जा रहा है और क्या कर रहा है। यह वासना के समान अन्धा और बहिरा नहीं होता। आपको यह कहने योग्य होना चाहिये "मैं अपनी इच्छापूर्वक प्रेम करता हूँ न कि विवश होकर।" प्रेम विरुद्ध जिननेन्द्रिय वाले दो व्यक्तियों की मित्रता होता है। यह वह मित्रता होती है जो स्त्री पुरुष में होने के कारण अधिक मीठी हो जाती है। किसी स्त्री और पुरुष की मित्रता से पूर्व उनमें सच्चा 'प्रेम होना चाहिये। किसी स्त्री अथवा पुरुष के 'प्रेम में पड़ने' से पूर्व आपको उसको अच्छी तरह जानना और उसके विषय में श्रद्धा होनी चाहिये। आपके विचार आदर्श रुची और कार्य एकसे होने चाहियें। धर्म और राजनीति में

आपकी सम्मति अत्यंत बिरोधी न हो। सच्चे प्रेम के उत्पन्न होने से पूर्व आपको उसकी मित्र के रूप में मान तथा प्रशंसा करनी चाहिये। इस प्रकार का प्रेम कभी यकायक नहीं होता। आप मुख के सौंदर्य को एक दृष्टि में ही देख सकते हैं, किन्तु आप किसी के मन और हृदय का इतनी शीघ्र अध्ययन नहीं कर सकते। अतएव, किसी के सुन्दर रूप, मोदक नेत्र, सुडौल नासिका, अथवा सुन्दर केश देखकर उत्पन्न हुआ प्रेम फूंस में लगी हुई आग के समान होता है; वह अत्यंत शीघ्र बढ़ता और तुरंत ही शांत हो जाता है। सच्चे प्रेम की उपमा उस कोयले से दी जाती है, जो बड़ी धीरे २ आंच पकड़ता है, किन्तु जब वह जलने लगता है तो उसमें आंच बहुत देर तक रहती है। स्त्री पुरुष के मित्रतापूर्ण सम्बन्ध में किसी दर्जे पर पहुँच कर अधिक गहन व्यक्तिगत रुचि प्रगट हो जाती है, उस समय नाड़ियों में काम-वासना की कपकपी अनुभव होने लगती है, तब सैली (Shelley) के शब्दों में दोनों पूछते हैं—

"संसार में कोई वस्तु अकेली नहीं है;
इस स्वर्गीय नियम में सभी वस्तुएं
एक दूसरे के सम्बन्ध में बन्धी हुई है,
फिर हम और तुम दोनों भी क्यों न मिल जावें ?"

इस प्रकार सच्चा प्रेम उत्पन्न होता है, और वह दम्पति हो जाते हैं। इस प्रकार के प्रसन्न और गुणी प्रेमियों के लिये फ्रीलीगैथ (Freiligath) कहता है:—

"है प्रेम तुम जब तक रह सको

हे प्रेम ! तुम तब तक ही रह सकते हो।"

इस प्रकार का प्रेम समय के साथ २ उत्तरोत्तर अधिक गहन, उत्तम, सुन्दर और अधिक होता रहता है। यह उस थोथे प्रेम के समान शीघ्र न तो बदलता है न नष्ट होता है, जिसके विषय में एल्फ्रेड डी मसेट (Alfred de musset) ने कहा है, "एक दिन उसी स्थान में मैंने प्रेम किया था, और मुझ से प्रेम किया गया था।" वास्तविक प्रेम की जड़ मन और हृदय में जम जाती है न कि वासना में। युवावस्था में उसका वासना के साथ अविभाज्य सम्बन्ध होता है, किंतु प्रौढ़ावस्था में इतना नहीं रहता। उस समय यह उस स्वर्ण के समान होता है, जिसको फिडियस (Pheidias), एथीना पारथेनास (Athena Parthenos) की मूर्ति पर चढ़ाया करता था। इस स्वर्ण को मूर्ति को बिना हानि पहुंचाये लिया जा सकता था। इस प्रकार के प्रेम की गणना सब से उच्चकोटि के आचरण शास्त्र में की जाती है, बल्कि यह कहना चाहिये कि यह उसका एक आवश्यक भाग है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार का प्रेम झूठा, कृत्रिम, व्यर्थ और आडम्बरपूर्ण होता है। वासना और कामुकता को भी प्राय: 'प्रेम' नाम दिया जाता है, किंतु इस ग़लती को आप सुगमता से पकड़ सकते हैं। सच्चा प्रेम जीवन भर चलता है। जैसा कि मैडम डी सेविग्ने (Madam de Sevigne) ने कहा है, "हृदय में कभी झुर्रियां नहीं पड़ा

करती।" इस प्रकार के प्रेम को विद्वान महात्माओं ने अमूल्य उपहार कहा है। उसको खोजो; अन्वेषण करो, सम्भाल कर रखो और उससे जन्म भर सम्बन्ध बनाये रहो।

शुद्ध अन्त:करण

लगन वाला मनुष्य सरल और संयमी होता है, साथ ही उसका अन्तःकरण भी शुद्ध होता है। उसमें कर्तव्यबुद्धि प्रबल होती है। वह अपने कार्यों को मनुष्यजाति के मंदिर के लिये दी जाने वाली अनेक ईंटों के समान समझता है। सभी ईंटें अच्छी और ठोस होनी चाहियें। वह अपने व्यापार और व्यवसाय को अपनी सामाजिक सेवा का क्षेत्र समझता है न कि केवल आय का साधन। वह सच्चाई से काम करने के लिये जीता है; वह जीने के लिये काम नहीं करता। कर्तव्य आत्म-प्रकाशन और परोपकार के कार्य का साधन तथा द्वार है, आपके व्यक्तिगत जीवन में उसका प्रथम और सब से बड़ा कार्य यही है। यह आपको जीवन के लिये आवश्यक वस्तुओं को मोल लेने योग्य धन देता है, यह उसका द्वितीय तथा सहायक कार्य है। जिसको टी० वेबलेन (T. Veblen) ने "कारीगरी का भाव" कहा है वह मानवी व्यक्तित्व में गहराई तक घर किये हुये है। हम सभी पूर्णतया और प्रशंसा पाने योग्य काम करना चाहते हैं। कर्तव्य का दूसरा रूप रचनात्मक भाव है; इसको लगनवाले स्त्री पुरुष आनन्द और अभिमान से स्वीकार करते, मानते और पूर्ण करते हैं। वर्ड-

स्वर्थ ने कर्तव्यता को 'परमात्मा की वाणी की कठोर पुत्री' कहा है, किंतु आपको उसे 'अपनी वाणी की प्यारी पुत्री' समझना चाहिये। उसमें कठोरता की कोई बात नहीं है, और न 'परमात्मा' का उससे कुछ सम्बन्ध ही है। कर्तव्य को ही अपना मार्ग प्रदर्शक और ध्रुवतारा बना लो। यही नीतिशास्त्र का सार, गुण का सत्त्व, और व्यक्तित्व की कार्यरूप में परिणत एक रूप और समीभूत गति है। जिस प्रकार श्वेतरंग में सब रंग लीन हो जाते हैं, उसी प्रकार कर्तव्य के एक मात्र और साधारण रूप में सभी भाव, संस्था, वासना, अभिलाषा, और विचार पिघल कर एक रूप हो जाते हैं। जिस प्रकार जब कोई वस्तु आगे को फेंकी जाती है तो उसको नीचे ऊपर और इधर उधर को एक साथ घुमाया जाता है, इन सभी अदृश्य शक्तियों से वस्तु एक ठीक अंडाकार मार्ग बनाती है, उसी प्रकार अनेक प्रकार के भावों, मिश्रणों, उद्देश्यों, मानवी व्यक्तित्व की विशेषताओं की विभिन्नता और सम्पर्क से एक निश्चित अबाध कार्य होता है, जिसको 'कर्तव्य' कहते हैं। यह 'कर्तव्य' अन्तःकरण का ही दूसरा नाम है। जीवन के बन में अन्तःकरण ही सच्चे मनुष्य की सुरक्षित हरीकेन-लालटैन है; यह किसी भी आंधी से नहीं बुझ सकती, और सदा ही चलने योग्य मार्ग को दिखलाती रहती है। अन्तःकरण समाज के लिये सम्बन्धित और चंचल है; किंतु प्रत्येक व्यक्ति के लिये अपने ढंग का अनोखा और पूर्ण है। अन्तःकरण किसी २

विशेष युग में एक समाज के अनुभवों और उसकी रीतियों का आज्ञावाचक रूप में अनुवाद कर देता है, यह एक स्वनात्मक और स्वतंत्र शक्ति नहीं है। यह प्रत्येक युग और स्थान में बदलता तथा भिन्न २ रूप धारण करता रहता है। यह आज के गुण को कल दोष में परिणत कर देता है। समय और स्थान के अनुसार यह हत्या, चोरी, असत्य भाषण, बलप्रयोग, बहुपत्नीत्व और वेश्यागमन की आज्ञा देता अथवा निंदा करता है। सामाजिक अन्तःकरण गिरगट के समान रंग बदलता रहता है। जिस प्रकार प्रत्येक देश अपना २ सिक्का ढालता है उसी प्रकार प्रत्येक समाज अपने २ अन्तःकरण का निर्माण करता है। किंतु किसी विशेष दिन और विशेष स्थान पर उत्पन्न हुये हुये व्यक्ति के लिये अन्तःकरण पूर्ण और नैतिक रूप से रोकने वाला है। जिस प्रकार वह मुद्रा के विषय में हस्तक्षेप नहीं कर सकता, उसी प्रकार सामाजिक अन्तःकरण की आज्ञा का भी उलंघन नहीं कर सकता। यदि वह ऐसा करेगा तो कानून तथा अपने मन में जालिया सिद्ध होगा। यह हो सकता है कि किसी विशेष समय और स्थान पर अंतःकरण पूर्णतया प्रकाशित न हो; किंतु अपनी इस दशा में उसको आचरण का सबसे बड़ा मार्गप्रदर्शक होना चाहिये। उसके अतिरिक्त अनुगमन करने योग्य अन्य कोई नहीं है। मोटर का चलाने वाला अपने लैम्पों के कितने ही खराब होने पर भी रात्रि के समय उन्हीं की सहायता से अपनी मोटर को चलाता

है; उनके बिना उसको पूर्णतया अन्धकार में चलाना पड़े। अपने अंतःकरण के अनुसार कार्य करने वाला अपने कर्तव्य का पालन करता है, इससे अधिक कोई मनुष्य नहीं कर सकता। अन्तःकरण की महानता का यह महान् नियम है, यही अन्तःकरण व्यवहारिक नीतिशास्त्र का मुख्य आधार है। यह हो सकता है कि अंतःकरण आपको सिद्धान्त रूप से ठीक मार्ग से पूर्णतया भटका दे, किन्तु आपको उसकी आज्ञा का पालन करना ही चाहिये। डाइट आफ वर्मस में लूथर के समान तुम 'अन्य कुछ नहीं कर सकते'। जिस प्रकार आप अपने नेत्र के सांवेदनिक पटल (Retina) पर पड़ने वाले प्रतिबिम्ब के अतिरिक्त अन्य पदार्थ को नहीं देख सकते, उसी प्रकार आप अपने अन्तः करण के द्वारा निर्दिष्ट मार्ग के अतिरिक्त उचित और अनुचित को नहीं जान सकते। आप जो कुछ देखते हो वही आपका संसार है, भले ही उसको दूसरे लोग अन्य प्रकार से देखते हों। जर्मन कवि पीटरहेबेल (Peter Hebel) की निम्नलिखित उक्ति को सार्वजनिक रूप देते हुए, यह कहा जा सकता है:—

"तेरे जीवन का मार्ग चौमुहानियों पर ले जाता है।
वहां से किधर को जाना होगा ? क्या तू निश्चय नहीं कर सकता ?
अपने अन्तःकरण से पूछ, वह तेरे पास ही है,
वह प्रत्येक बात को जानता है, उसी को अपना मार्गप्रदर्शक बना।"

रुकेर्त ने (Ruckert) ने अन्तःकरण के सन्देश को निम्न लिखित कविता में कितने उत्तम ढङ्ग से उपस्थित किया है।

मेरे साथ प्रतिदिन निम्न लिखित शब्द वादविवाद किया करते हैं—

"मेरा कर्तव्य है, मुझको निश्चय से करना चाहिये, मैं कर सकता हूं, मैं निश्चयसे करूंगा, मैं करने का साहस कर सकता हूं, मुझे करने की अनुमति है।"

जिस प्रकार दूसरों के दांतों से नहीं खाते अथवा दूसरों के कानों से नहीं सुनते उसी प्रकार दूसरों के अन्तःकरण पर निर्भय मत रहो। साधु और महात्मा, पुरोहित और राजनीतिज्ञ, माता-पिता और सम्बन्धी, तथा मित्र और साथी भी यदि आपके अन्तःकरण के निर्णय की निन्दा करें तो आपको अपने अन्तःकरण का ही अनुगमन करना चाहिये, न कि दूसरों के अन्तःकरण का। दूसरों के अन्तःकरण आपके व्यक्तित्व में नहीं है। वह आपसे बाहिर और इसी लिये आपके लिये विदेशी हैं। किन्तु आपका मन्त्री आपके अन्दर है, और वह आपके हृदय के समान सदा आपके साथ ही रहेगा। अतएव यदि आपके पुरोहित और राजनीतिज्ञ, माता पिता और सम्बन्धी आपसे अपने प्रसन्न करने और अपनी आज्ञा पालन करने के लिये आपके अन्तःकरण के प्रति आपको झूठा करना चाहें, तो आपको उन्हें सदा यह उत्तर दे देना चाहिये, "मैं आप नहीं हूँ, आप मैं नहीं हो। जिस प्रकार आपका अन्तःकरण आपका है, उसी प्रकार मेरा अन्तःकरण निर्बाध रूप से बिना किसी शर्त

के मेरा है। जिस प्रकार मैं आपके वस्त्र नहीं पहिन सकता, अथवा आपके सिर दर्द को स्वयं नहीं ले सकता, उसी प्रकार मैं आपके उस अन्त:करण का अनुगमन नहीं कर सकता, जिसके विषय में मैं कुछ भी नहीं जानता। मैं आपके आदेश पर अपने व्यक्तित्व के एक भाग को क्यों तोड़ फोड़ कर नष्ट करूं। यदि मैं अपने अन्त:करण का इस समय उल्लंघन करूंगा तो यह मुझे शान्ति से नहीं सोने देगा। क्या उस समय आप सब के अन्त:करण मिल कर मुझे बचा लेंगे? नहीं, वह यहां निश्चय से नहीं होंगे; क्योंकि वह तुम्हारे हैं, मेरे नहीं। इस प्रकार मैं उन आपत्तियों और लज्जा में पड़ जाऊंगा, जो मेरा अन्त:करण मेरे आज्ञापालन न करने के कारण अपमानित हो कर मुझे देगा। अन्त:करण के समान मनुष्य को अधिक दु:खी और कोई नहीं बना सकता। दाढ़ का दर्द भी उसकी तुलना में कुछ नहीं है। बेचैन अन्त:करण मनुष्य की अंतड़ियों में अत्यन्त निर्दय, और प्रतिहिंसाशील कीड़ा होता है। उसका कुतरना खरोंचना और हलका कष्ट उन सब बड़ी २ भारी यातनाओं की अपेक्षा भी असह्य होता है, जो नूरेमबर्ग के अस्त्रागार में रखे हुए शस्त्रों से दी जाती हैं। यदि मैं अन्त:करण को मारता हूं तो निश्चय से वह स्वयं मरते हुए भी मुझको उसी प्रकार मारेगा, जिस प्रकार हैमलेट ने अपने प्रतिद्वन्दी चाचा को मार डाला था। आपको एक क्षण के लिये प्रसन्न करने के लिये मैं अपने अन्त:करण का नि:सहाय अपराधी क्यों बनूं? अपने अन्त:करण को कभी न

सोने देने वाला आजीवन शत्रु बनाने की अपेक्षा अपना मित्र बनाने में ही मेरा हित है, और यही मेरी इच्छा है।" अतएव आपका, मेरा और हम सब सबका यह कर्तव्य है कि हम संसार भर के महान् पुरुषों और सम्राटों से भी अधिक अपने २ अन्त:करण का आज्ञापालन करें, और उसकी पुकार को अपनी प्रेमिका की प्रेम भरी पुकार, अथवा मातापिता और मित्रों की मधुर शिक्षा से भी अधिक शीघ्रता और सत्यता से सुनकर उसके अनुसार आचरण करें। अंत:करण से अधिक प्रिय मित्र आपको कौन मिलेगा? अन्त:करण से अधिक आपकी चिन्ता और कौन प्रेमी अथवा प्रेमिका कर सकेगी? अंत:करण आपका माता और पिता, स्त्री और पुत्र, मित्र तथा पड़ौसी है; यह स्वयं आप, आपका अहमत्त्व और सब कुछ है। उसके हाथ में सदा रहने वाले आनन्द का तावीज है। यह अजेय है, और दु:ख, कष्ट, रोग और मृत्यु तक को जीत लेता है। मृत्यु से सभी प्राणी डरते हैं; किन्तु अन्त:करण प्राणिविज्ञान पर चढ़ कर धर्म के लिये प्राण देने वालों के समान चमत्कारपूर्ण कार्य करता है। जब वह मृत्यु तक को पराजित कर देता है, तो उसके मार्ग में कौन बाधा पहुँचा सकता है? हे शक्तिशाली और रहस्यपूर्ण अन्त:करण! तुझको प्रणाम है। तू जीवन और मृत्यु का अधीश्वर सम्राट् है। चाहे जो कुछ भी हो मैं तेरी आज्ञा को ही मानूंगा। मैं चाहे जो कुछ करूं अथवा भोगूं तेरे साथ मैं सदा सुखी ही रहूंगा। तू शुद्ध और पूर्ण आनन्द का

राजदूत और संदेशहारक है, तू सब से उच्चकोटि की उत्तम कला है—

"उस चक्कर काटने वाले अन्धकार में,
कृपा करके मुझे प्रकाश दिखला,
मुझे आगे का मार्ग दिखला।"

आधुनिक विचारों के इतिहास में अंतःकरण को रोकने का आन्दोलन एक कौतुकपूर्ण घटना है। कुछ विद्वानों ने गुण प्राप्त करने का एक छोटा मार्ग निकाला है। अतएव उन्होंने अन्तःकरण और कर्तव्य को छोड़ने की युक्ति दी है। उनमें से कुछ ने उसके वदले में चार या पांच काम निकालने का यत्न किया—यह परस्पर विरुद्ध भावों का एक खेदपूर्ण संग्रह है। चार्ल्स फोरियर (Charles Fourier) मनुष्य की उस "स्वाभाविक" भूख और भावों को चौकी पर निकाल कर रख देता है, जिनको नीतिशास्त्र रक्षा करता और उनको अन्तःकरण के लिये सुरक्षित रखता है। फौरियर के विचार में अपनी 'स्वाभाविक' अभिलाषाओं और वासनाओं का स्वतन्त्रतापूर्वक उपयोग करने और समानता पूर्वक कार्य करने से नैतिक पूर्णता के उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकता है। उसका विश्वास है कि पेटूपन. ईर्ष्या, लोभ. अभिमान, कामवासना तथा अन्य दोषों को रोकने और उनके साथ युद्ध करने की आवश्यफता नहीं है, उनको केवल नई दिशा में मार्ग प्रदर्शन करके चलाना चाहिये। इस प्रणाली से नैतिक उन्नति के साथ २ आनन्द भी आता है। इस मार्ग में

कम से कम बाधा है। इसमें इच्छाशक्ति पर कम से कम दबाव देना पड़ता है। स्वच्छन्दता गुण को इतना सुगम और रिझाने वाला बना देती है जितना ताश का खेल अथवा ग्रीष्म ऋतु का भोज होता है।

मैं इस बात को स्वीकार करता हूं कि फौरियर का आत्म-संयम तथा उपदेश की प्रचलित प्रणाली के विरुद्ध विद्रोह वास्तव में एक अग्रिम पग है। बुद्धिवाद (Rationalism) को यह घोषणा कर देनी चाहिये कि गुण रूखा और भद्दा नहीं होता, वरन् पूर्ण-मासी के चन्द्रमा के समान सुन्दर और चमकीला होता है। हम को प्रकृति के साथ मिलकर कार्य करना चाहिये, उसके विरुद्ध नहीं। नैतिक शिक्षा में, हम को नये विचारों को प्राचीन अभ्यासों से मिश्रित कर देना चाहिये। हमको औसत बुद्धि तथा इच्छा शक्ति वाले छोटों और बड़ों के लिये नैतिक उन्नति का सुगम बना देना चाहिये। हमको सभी अभिलाषाओं और वासनाओं को गुण के रूप में परिवर्तित कर देना चाहिये। नैतिकता की विजय - प्राप्ति के लिये मानवी स्वभाव के विरुद्ध युद्ध करना ठीक नहीं है। इस प्रकार की नैतिकता पूर्ण रक्त वाले, हरे भरे गुण का केवल एक हास्य चित्र ही होगी। बुद्धिवाद का आदर्श वह हास्यचित्र नहीं है। हमको इस सिद्धांत पर कार्य करना चाहिये कि आत्मदमन और निषेध की अपेक्षा नियमन और प्रकटीकरण का अधिक फल होता है। फौरियर ने एक ऐसे भेद का पता पा लिया है, जिसका अनुसरण करना चाहिये।

फौरियर की प्रणाली के ऊपर पूर्ण न्याय पूर्वक विचार करने के पश्चात् उसकी सीमाओं पर विचार करना चाहिये। व्यक्ति को कर्तव्य और अन्तःकरण की ऊंची नीची चोटियों पर ले जाने के लिये नीतिशास्त्र वासना, भोग, विलास और आत्म-चिन्ता के विचारों की रंगारेलियों में विलम्ब कर सकता है। किन्तु हम ऐसी सुन्दर संगति में अन्तिम उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर सकते। न हम उनका विश्वासपात्र साथियों के रूप में विश्वास ही कर सकते हैं। हम बच्चे को मांस की अपेक्षा दूध दे सकते हैं; किन्तु इच्छा शक्ति से काम लिये तथा अन्तःकरण को शिक्षा दिये बिना गुण को प्राप्त नहीं किया जा सकता। नैतिक उन्नति के आरम्भिक दर्जों को इच्छा शक्ति पर बिना अयोग्य दबाव डाले प्राप्त किया जा सकता है, किन्तु एक निश्चित ऊंचाई से ऊपर प्रत्येक पग पर पहिले प्राप्त की हुई ऊंचाई की अपेक्षा अधिक प्रबल नैतिक पेशियों और फुफ्फसों की आवश्यकता है। लगन वाले मनुष्य को इस धोखे में आकर निश्चिन्तता से नहीं सोना चाहिये कि केवल आत्म-विनयानु-शासन और आत्म-संयम ही स्वाभाविक आनन्द और वासनाओं की तृप्ति के लिये पर्यायवाची दार्शनिक शब्द है। इसके विरुद्ध हमारी 'स्वाभाविक' गति और प्रकृति को तर्क और अन्तःकरण की सदा ही चौकसी करते रहना चाहिये। मानवी प्रकृति सजाति नहीं होती। अन्तःकरण हमारे आनन्द-दायक भावों, वासनाओं और अभिलाषाओं की निर्बाध क्रिया से उत्पन्न नहीं होता। इन

शक्तियों की वाष्प जहाज के एंजिन से तुलना की जा सकती है, किन्तु उसके चालक तर्क और अन्तःकरण हों। इच्छाशक्ति को प्रत्येक समय जाग्रत तथा तयार रखना चाहिये, कर्तव्य या तो मनोहर हो अथवा न हो। गुण और समान भावों के लगातार संयोग को प्राप्त करने वाला कोई नमूना नहीं होता। जीवन के यह दोनों वृत्त एक दूसरे को काटते हैं, किन्तु यह हमारे समान किसी अपूर्णतया विकसित व्यक्तियों में सदा एक से नहीं रहते। वह एक पूर्ण मनुष्य, पूर्ण राज्य के नागरिक में हो ठीक २ एक से होंगे।

आनन्दवाद के अन्तिम दर्जे के परिणाम निकाल कर इच्छाशक्ति के बोझे को कम करने का प्रयत्न करने वाले सभी सिद्धांत भयंकर होते हैं। गुण को प्रेम पूर्वक जीतना चाहिये; वह प्रायः लजीला होता है, जिससे उसके पास पहुंचना कठिन होता है।

यदि हम तर्क और अन्तःकरण को भी भूख और वासना के समान ही मानवी व्यक्तित्व का 'स्वाभाविक' तत्त्व समझने लगें तो बहुत बड़ी गड़बड़ी से बचा जा सकता है। विकास की वर्तमान श्रेणी में वह निर्बल और अर्ध-विकसित हैं, क्योंकि वह रंगमंच पर बहुत बाद में प्रगट हुए थे, सोच विचार और सामाजिक सहानुभूति की अपेक्षा सन्तानोत्पत्ति और सन्तानपालन प्राणीजीवन के इतिहास में बड़े भारी समय तक महत्त्वपूर्ण कार्य करते रहे हैं। बरतानिया के निर्माण से भी लाखों वर्ष पूर्व और जननेन्द्रियां अपने कार्य को अत्यन्त उत्साहपूर्वक कर रही थीं।

यह विवाद करना ठीक नहीं है कि भोग विलासों को भोगने वाला और अपनी ही वासनाओं और अभिलाषाओं का शान्त करने वाला अहमत्व कर्तव्य को पसन्द करने वाले और तर्क तथा अन्तःकरण से मार्ग पूछने वाले परोपकार की अपेक्षा अधिक 'स्वाभाविक' हैं। प्रकृति ने दोनों ही शक्तियों को उत्पन्न किया है। अन्तर दोनों में केवल यह है कि अहमत्व का शासन पहिले था और परोपकार का विकास अब हो रहा है। अहमत्व निश्चय से घटता है जब कि परोपकार विकास के प्रत्येक पग में अधिकाधिक ही बढ़ता जावेगा। मैक्स स्टर्नर (Max Stirner) और निट्ज़े (Nitzsche) ने भी अन्तःकरण को बंद कर देने की मांग उपस्थित की है। स्टर्नर की सम्मति है कि कर्तव्य का विचार व्यक्तिगत स्वतंत्रता का निषेध करता है। वह युक्ति देता है कि नीतिशास्त्र मानवी व्यक्तित्व को दास बना लेता है। वह कहता है कि कर्तव्य का विचार हमको पूर्ण मूल्य वाले अज्ञात संसार में पहुंचा देते हैं। वह नीति शास्त्री की तुलना ईश्वरवादी और अध्यात्मवादी से करता है। वह विकास के रहस्य का अध्ययन करके पता लगाता है कि प्रकृति का उद्देश्य सभी रूपों में उन्नति करना है, वह उसको शुभाचरण के किसी नियम में नहीं बांधती। किन्तु निट्ज़े इस बात को भूल जाता है कि प्रकृति में मानवी स्वभाव का भी अन्तर्भाव है और मानवी प्रकृति गुण और बुद्धि से पूर्ण होती है। हम प्रकृति के प्रतिनिधि सुकरात, बुद्ध, रूसो और मार्क्स को मानते हैं न कि सिंहों, व्हेलों और गिद्धों को। हमको

विकास के अग्रभाग की ध्यानपूर्वक परीक्षा करनी चाहिए। यह काल्पनिक सिद्धान्त हमको अपने मनोविज्ञान पर अविश्वास न तो कराते हैं और न करा ही सकते हैं। हम जानते हैं कि कर्तव्य का विचार एक वास्तविक घटना है. यह घटना सूर्योदय और सूर्यास्त के समान स्वयं प्रगट हैं। अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में हम विचार करते और निर्णय करते हैं। हम अपने ही कार्यों को कभी पसन्द और कभी नापसंद करते हैं। आत्म-निर्णय की यह विचित्र घटना सिद्ध करती हैं कि अन्तःकरण केवल काल्पनिक नहीं, बल्कि वह जीवन का एक अनुभव करने योग्य कार्य है। यह बुद्धिमान विचारक घटनाओं के विरुद्ध युद्ध क्यों करते हैं यह आत्मघात करने वाली मूर्खता का सब से बुरा उदाहरण है। जीवन की सब से बड़ी निर्णायक, विश्व की अहमत्त्व, वासनाओं और अभिलाषाओं की शानो शौक़त और युक्तियों के लिए 'हां' और 'नां' कहने वाली प्रबल और निर्बाध 'शक्ति हमारे गहन तम प्रदेश में हमारी मानवी प्रकृति की भुलभुलैयां वाले सब से अन्दर के स्थान में सुरक्षित वासनाओं और अविकसित बुद्धि के चिड़ाने वाले कार्यों के विनाशात्मक आक्रमण से बची हुई बैठी हैं। स्टर्नर और निट्ज़्शे और निर्बल विषयभावना तथा अनस्थायी सभ्याभास की अन्य फेरी करने वाले अपने कच्चेपन और मूर्खता को मनुष्य जाति के ऊपर अभी नहीं लाद सकते। मनुष्य जाति जीवित रहती, प्रेम करती, प्रशंसा करती और सब कुछ प्राप्त करती हैं जब कि यह चिड़चिड़े और आत्मकेन्द्रित

गुफावासी अपने अन्धकारपूर्ण एकांन्तवास से मूर्खतापूर्ण बातें करते रहते हैं उनका निर्णय उनके अपने ही नियम कर देते हैं। केवल सब से अधिक योग्य विचार ही जीवित रहते हैं। उनका निर्णय जीवन और समय स्वयं कर लेंगे, और जीवन क्या कहता है ? जीवन कहता है "हे मार्ग भुलाने वालों तथा श्रीक़मचियो तुम मेरे पीछे हो जाओ। तुम मुझको निर्बल करते हो। तुम मुझको अटकाते तथा रोकते हो। तुम मेरे सौंदर्य को बिगाड़ते और शक्ति को कम करते हो। इस ऊपर की यात्रा में अन्तःकरण ही मेरा मार्ग प्रदर्शक है। बाल्यावस्था में इस अन्तःकरण के बिना ही मैंने अन्धे के समान बड़ी २ टक्करें और ठोकरें खाई हैं, उस समय मैं नहीं जानता था कि मैं क्या कर रहा हूं। किन्तु स्त्री पुरुषों के शरीर और मस्तिष्क में मेरा विकास होने पर मैं प्रत्येक अंग और नाड़ी में अन्तःकरण के कठोर शासन में रहकर उन्नति कर गया हूं। मेरे जादूटोने के आरम्भिक रूप से स्यूटोन लोगों के रूप तक सभी प्रकार के सुख दुख में अन्तःकरण मेरा मार्ग प्रदर्शक रहा है। यदि अन्तःकरण मुझे छोड़ दे तो मेरी मृत्यु हो जावे, यदि अन्तःकरण सो जावे अथवा काम न दे तो सौंदर्य, होश, ज्ञान, और प्रेम मेरी कोई भी रक्षा नहीं कर सकते। देखो ! मैं अपने रहस्य को किसी से नहीं छिपाता, आप सब उसका एक दृष्टि में ही अध्ययन कर सकते हो, आप सुकरात के विषय में सुन चुके हैं, उसके शब्द और कार्य पृथ्वी भर में फैल गये हैं। किन्तु ऐरिस्टीपस (Aristippus) और थ्रैसीमैचस

(Thrasymachus) की बात को किस प्रकार सुना जावे ? आप बुद्ध के विषय में सुन चुके हैं। उसके प्रभावशाली रूप को करोड़ों अंगुलियां ढाल और तराश चुकी हैं। उसके शब्दों को सुरक्षित रखने वाले पत्रों को तिब्बत के जंगली पहाड़ियों ने लालों और पन्नों से जड़ दिया है। किन्तु वृहस्पति और जावाली के विषय में बहुत कम ने सुना है। उसका क्या कारण है ? इसका कारण यह है कि सुकरात और बुद्ध प्रकृति की वास्तविक शक्ति, जीवन के महान् निर्माता और जीवन का विकास करने वाले थे, उन्होंने अन्तःकरण के शासन की घोषणा की थी। किन्तु अन्य विद्वान्-जाबाली, ऐरिस्टपिस और थ्रैसीमैचस ने अन्तःकरण के विरुद्ध निन्दात्मक प्रचार किया था, अतएव उनके नाम मेरी इच्छा से भूले जा चुके हैं, और यह आजकल के आनन्दवादी दार्शनिक, यह कच्चे सिद्धान्तों और व्यर्थ के नियमों के पीछे फिरने वाले, यह भी बीतने वाले समय के प्राणी हैं। यह मेरे नित्य स्वर्ग के कीड़े मकौड़े हैं। कल का संसार उनको बिलकुल ही नहीं जानेगा।

द्वितीय—सामाजिकता

सामाजिकता अपने आपको अनेक गुणों में प्रगट करती है:—

(१) सहकारिता

सामाजिक बन्धन आपको उसी प्रकार सबके लिये उत्तरदायी बना देताहै , जिस प्रकार सब आपके लिये उत्तर दायी हैं।

आप जिनको भी जानते हो उनकी सहायता करने का यत्न करो। यह कहा गया है कि, 'एक दूसरे से प्रेम करो' किन्तु इस उक्ति का यह रूप अधिक अच्छा होता कि 'एक दूसरे की सहायता करो।' जिस समय आप के पैसे और समय की दूसरों को आवश्यकता हो तो उसका व्यय करने में कन्जूसी मत करो। अपने मित्रों और साथियों को बिना हिचर पिचर के अपना रुपया, छाता, कितावें, बाईसिकिल और मोटरकार दे दिया करो, इस प्रकार की सेवा के लिये प्रत्येक अवसर पर प्रसन्नता मनाया करो, यदि आपको पता लगे कि कोई आवश्यकता में है तो उसके मंगाने से पूर्व उसके पास जाकर उसकी सहयता करो।

व्यक्तिगत सेवा से कार्य आरंभ करो; इस कर्त्तव्य का वर्णन अगले अध्याय में किया जावेगा। यदि आप शिक्षित हैं और किसी विश्वविद्यालय के उपाधिधारी हैं तो आपको अपने ज्ञान का भाव अशिक्षितों को भी देना चाहिये। आपने उस जनता के व्यय पर शिक्षा प्राप्त की है जो आपको शिक्षा देने वाले कालेज का व्यय देती है। अतएव आपका यह कर्त्तव्य है कि जिन किसानो और मजदूरों के श्रम ने आपको विद्या दी है उनमें विज्ञान, इतिहास, साहित्य, अर्थशास्त्र, राजनीति, तथा अन्य विषयों की शिक्षा देकर इनका प्रचार करो। ज्ञान की यह विशेषता है कि दूसरों को दिया जाने से यह कभी नहीं घटता, दूसरों को पढ़ाते रहने से तो विद्या सदा नयी होती रहती है। आज कल अशिक्षा मनुष्यजाति के लिये अभिशाप है। जिस प्रकार

गहन समुद्र में उच्च कोटि के प्राणी नहीं पाये जाते उसी प्रकार अशिक्षितों में कोई उन्नतिशील आन्दोलन नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार रोग किटाणु-पृथ्वी के नीचे के अन्धकार पूर्ण स्थानों में ही होते हैं उसी प्रकार अन्धविश्वास और पुरोहितों की चालाकियां अशिक्षितों में ही चल सकती हैं। बिना शिक्षा की प्रजातंत्र शासन प्रणाली मूर्खों के ऊपर ठगों का राज्य ही होती है। विनाशात्मक युद्धों का एक कारण त्रुटिपूर्ण शिक्षा भी होती है। सामाजिक जीवन में ओछेपन और नीचतापूर्ण आमोदप्रमोद का मुक़ाबला केवल उत्तम शिक्षा से ही किया जा सकता है। शिक्षा ही जनता को अपने फुर्सत के समय का उत्तम उपयोग करने का ढंग सिखला सकती है। इस प्रकार धर्म, राजनीति कला और नीतिशास्त्र का भविष्य पूर्णतया गांव के किसानों और श्रमिकों की शिक्षा पर निर्भर है। यदि आपने कुछ ज्ञान प्राप्त कर लिया हो तो उसको शीघ्रतापूर्वक अपने अशिक्षित नगरवासियों अथवा साथियों को दे दो। आप किसी सामाजिक स्कूल अथवा कक्षा में अध्यापक के रूप में कार्य कर सकते हो, अथवा छोटे २ लेख पुस्तिकायें और पर्चे लिख सकते हो, अथवा सार्वजनिक व्याख्यान दे सकते हो, अथवा अध्ययन केन्द्रों का संगठन कर सकते हो। एक विश्वविद्यालय का शिक्षा प्राप्त उपाधिकारी — यदि साधारण जनता को शिक्षा देने के अपने कर्तव्य का पालन नहीं करता तो वह एक ऐसा स्वार्थी कीड़ा है, जो दूसरों के ऊपर बसर करता है। वह उस उपाधि

के योग्य कभी नहीं होता। उसको सार्वजनिक शिक्षा के आंदोलन में तुरन्त ही सम्मिलित हो कर उसकी किसी न किसी रूप में सेवा करनी चाहिये।

संतोष

जिस प्रकार माता अपने बच्चे से सन्तुष्ट रहती है, उसी प्रकार सब से सन्तुष्ट रहा करो। साधारण लोगों की मूर्खता, अज्ञानता, अभिमान अथवा स्वार्थपरता से आप में उत्तेजना नहीं आनी चाहिये। सदा मिष्ट और शान्त बने रहो। आपके अन्दर भी कुछ दोष हैं, जिनके लिये अन्य लोग आपके प्रति संतुष्ट रहते हैं। आप जानते हैं कि लोगों को जो कुछ वह हैं वही बनना पड़ता है। वह वंशपरम्परा और अशिक्षा के शिकार होते हैं। उनकी गलतियों और अपराधों के लिये उनका उत्तर-दायित्व इसी कारण कम हो जाता है। यदि आप किसी से नाराज़ हो जाते हो तो आप अपना क्रोध उसको वर्तमान रूप देने वाले उसके माता, पिता, अध्यापक, बाबा, दादी, चाचा, मामा, पड़ौसियों तथा अन्य व्यक्तियों पर उतारते हो। क्रोध इस प्रकार आपको बिना मार्ग वाले जंगल में भटकाता रहता रहता है। यह आपको हानि भी पहुँचाता है, यह आपको निर्बल करता और मस्तिष्क को अशान्त करता है। अतएव आपको दो २ बार मूर्ख बन कर फिर क्यों अपराध करना चाहिये? क्रोध का तो वास्तव में परिणाम भी कुछ नहीं निकलता। यह टूटे हुये शीशे को जोड़ नहीं सकता और फैले

हुए दूध को फिर बर्तन में डाल नहीं सकता। यह पहिले किये हुये अपराध में और भी कट्टरता ला देता है, क्रोध से अपराधी बुरे से भी बुरा और सब से बुरा बन जाता है। यह उस डण्डे के समान है, जो आपके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को चंचल करता और अपने दबने के स्थान से तली में के समस्त कीचड़ गारे, को ऊपर उछाल देता है। क्रोधी पुरुष समझता है कि वह दूसरे को धमका तथा डरा रहा है, किंतु वास्तव में वह गुण को खोकर स्वयं अपने विरुद्ध पाप करता रहता है। नशा पिये हुये के समान कभी २ तो वह ऐसे शब्द कह देता है, कि उसको पीछे पछताना होता है, किंतु एक कठोर शब्द को, जो एक तेज़ तीर से भी अधिक काम करता है, सहस्रों बार क्षमा-प्रार्थना करने पर भी वापिस नहीं लिया जा सकता। यह एक ऐसा कार्य है जिसको मेटा नहीं जा सकता। यह एक समाज-विरोधी, मनुष्यता से गिरा हुआ कार्य है। यह एक ऐसी नित्य अखण्डनीय और स्थायी घटना है, जो अपने जैसी अनेक घटनाओं को भी उत्पन्न करती है। आकाश (ईथर) की लहरों और सदा जीने वाले अमीबा (Amoeba) के समान प्रत्येक कार्य और घटना विश्व में अपना प्रचार करती है। वह स्वयं अपने आप में समाप्त नहीं हो सकती। अतएव क्रोध पूर्ण और उत्तेजक वाणी को कभी मत बोलो। यह आप में से निकल कर आपको उसके पीछे कितना ही भागने पर भी वापिस नहीं आ सकती। स्टोइक महात्मा क्लीनथीस (Cleanthes) के

विषय में विचार करो, जिसके विषय में डायोजिनीज़ लेर्शिश्रस (Diogenes Laertius) लिखता है, "वह परिश्रमी था, परन्तु उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति भौतिक विज्ञान में नहीं थी वह असाधारण रूप से सुस्त था। उसके सहपाठी उसका उपहास किया करते थे, किंतु वह गधा कहे जाने की लेश मात्र भी चिंता नहीं करता था। वह उनसे कहा करता था कि केवल वह ही अपने अध्यापक ज़ेनो (Zeno) का बोझ उठाने योग्य पर्याप्त बलवान था । ...... जिस समय सोसीथिश्रस (Sositheus) नामक कवि ने अपनी निम्नलिखित कविता पढ़ी थी तो वह नाट्यशाला में ही था। "क्लीनथीस की मूर्खता से भेड़ों के गूंगे समूह के समान हंकाया हुआ ।" किंतु वह उसी दशा में बिल्कुल शांत और मौन बैठा रहा । श्रोता इस बात से इतने प्रभावित हुये कि उन्होंने क्लीनथीस की प्रशंसा की और सोसीथियस को रंगशाला से निकाल दिया । इस के पश्चात् जब कवि ने इस अपमान के लिये उससे क्षमा-प्रार्थना की तो उसने उसको क्षमा कर दिया।" अरस्तू के विषय में भी कहा गया है कि, "यह सुन कर कि किसी ने उसकी उसके पीछे निंदा की। उसने कहा, "वह मेरे कोड़े भी मार सकता है, किंतु मेरे पीछे ही ।" जर्मन कवि ज़ेडलिज़ (Zedlitz) ने इस मुसलमानी कहानी का वर्णन किया है। पैग़म्बर मुहम्मद का चाचा अमीरहसन भोजन पर बैठा हुआ था । तश्तरियों के लाने वाले दास ने उनको उस फर्श पर गिरा दिया, जो

बहुमूल्य चटाइयों से ढका हुआ था। दास ने नतमस्तक होकर एक दम कहा, "हमारे पैग़म्बर ने शिक्षा दी है कि अपने क्रोध पर शासन करने वाला ही बुद्धिमान होता है।" अमीर ने उत्तर दिया, "मैं नाराज़ नहीं हूं जाओ।" दास ने फिर कहा, "हमारे पैग़म्बर नें यह भी कहा है कि अपराधी को क्षमा करनें वाला उससे भी अधिक बुद्धिमान है।" अमीर ने कहा "मैं तुझको क्षमा करता हूं, जा।" दास ने फिर कहा, "हमारे पैग़म्बर ने यह भी कहा है कि जो बुराई के बदले भलाई करता है वह सब से अधिक बुद्धिमान है।" इस पर अमीर ने मुस्करा कर कहा, "मैं तुझको स्वतंत्र करता हूं और साथ ही यह धन देता हूं। अब जा और प्रसन्न रह।"

क्रोध साधारण सामाजिक जीवन को तो कलुषित तथा कड़वा बना ही देता है, वरन् यह उन्नतिशील आन्दोलनों के लिये भी आतङ्क स्वरूप होता है। इसने अनेक सभाओं और उपसमितियों को नष्ट कर डाला। प्रत्येक सभा समिति में सभी प्रकार के स्त्री पुरुष होते हैं; उनके निर्वाचित पदाधिकारियों से यह आशा की जाती है कि वह सरलता से ठीक २ मिल कर कार्य करेंगे। किन्तु असन्तोष और क्रोध सदा ही सहयोग को असम्भव कर देता है, सभी सभाओं में कुछ मूर्ख, कुछ मन्दमति कुछ बक्की कुछ मनमौजी और कुछ अन्य त्रुटियों वाले व्यक्ति हुआ करते हैं। इस प्रकार की सभाएं तभी सफल हो सकती हैं, जब उनके सदस्यों को विशेष गुण के रूप में सन्तोष करने की

शिक्षा दी गई हो। कुछ सभा में क्रोधपूर्ण विचारों के कारण सभा में गालीगलौज़ होने लगती है, जिससे बाद में मारपीट तक की नौबत आ पहुँचती है। सन्तोष वास्तव में ही उन्नति का साथी है, बिना सन्तोष के एक सभा लगातार लड़ने झगड़ने केलिये एक मित्र मण्डली में परिणत हो जाती है, दान्ते ने क्रोधी और बुरे स्वभाव वाले व्यक्तियों को दल दल में खड़े हुए नंगे मनुष्यों के समान इस प्रकार चित्रित किया—

"मैं अत्यन्त ध्यानपूर्वक खड़ा हुआ देख रहा था,
कीचड़ में दोषी व्यक्तियों का एक गन्दा दल डूबा हुआ था,
वह सब नंगे थे, और उनकी आकृतियों से
क्रोध टपक रहा था। वह केवल अपने हाथों से ही
नहीं मार रहे थे, वरन् वह सिर, छाती, पैरों
और दांतों से भी एक दूसरे के टुकड़े २ किये देते थे।"

(३) परगुण प्रशंसा

मध्यकालीन नीतिकारों ने सात पापों में से ईर्ष्या से भी सावधान रहने की शिक्षा दी है। किन्तु पाश्चात्य नीतिकारोंने ईर्ष्या के विरोधी गुण का नामकरण नहीं किया। वह हमको केवल ईर्ष्या न करने की शिक्षा देते हैं। किन्तु मेरी सम्मति में केवल ईर्ष्या न करना ही पर्याप्त नहीं है। आपको अन्य व्यक्तियों के कार्यों की की प्रशंसा करना और उनकी सफलता और उत्तम भाग्य पर प्रसन्न होना चाहिये। ईर्ष्या तो वास्तव में सामाजिक जीवन की विरोधी है, मोलियरने तो यहां तक दुःखपूर्ण भविष्यवाणी की है—

ईर्ष्यालु पुरुष मर जावेंगे, पर ईर्ष्या कभी न मरेगी।"

आपको प्रार्थना करनी चाहिये कि मोलियर की भविष्यवाणी सच न उतरे। ईर्ष्या का मूल अधिक अहंकार में होता है। उसको अपनी शक्ति भर सभी साधनों से नष्ट करने का यत्न करो। यदि अन्य किसी को अपने से अधिक सुन्दर देखो तो उससे अपने को कम समझने का ध्यान छोड़ कर उसकी सुन्दरता से प्रसन्न होने और अपने नेत्रों को आनन्द देना आरम्भ कर दो। अपने मन में कहो, "यह भी मेरा ही सौन्दर्य है, यह केवल दूसरे मुख पर है, अपने चेहरे पर होने की अपेक्षा अब मैं इसका आनन्द सुगमता से ले सकता हूं। क्योंकि सुन्दर व्यक्ति अपनी सुन्दरता को केवल दर्पण में ही देख सकता है।" यदि आप उस सौन्दर्य की प्रशंसा नहीं कर सकते, वरन् उससे ईर्ष्या करते हैं तो आप उस मनुष्य के समान मूर्ख हैं, जिसको एक स्वादिष्ट सेब और चाकू दे दिया गया था, किन्तु जिसने सेब को बिना तराशे अथवा खाये हुए चाकू से अपना गला स्वयं ही काट लिया। उसी प्रकार यदि आपकी किसी ऐसे व्यक्ति से भेंट हो, जो आपसे अधिक बुद्धिमान हो तो आपको कहना चाहिये, "यह बुद्धिमत्ता स्वयं मेरी ही है; विशेषता यह है कि यह दूसरे के मस्तिष्क में है।" इस बुद्धिमत्ता का आपको समाज की लाभदायक शक्ति के रूप में प्रशंसा करनी चाहिये। उसके अपनी न होने के कारण खेद अथवा शोक मत करो। मनुष्य जाति की मौलिक एकता के द्वारा यह आपकी ही है। प्रकृति सब

प्रकार के उपहार एक व्यक्ति को नहीं देती, किन्तु वह उनमें से कुछ उपहार प्रत्येक व्यक्ति को देती है जिससे वह सब बराबर हो जाते हैं। आप सुन्दर और बुद्धिमान और प्रसिद्ध और सब कुछ नहीं हो सकते। 'मैं' और 'मुझको' के विषय में अधिक सोचना बन्द कर दो, वरन् 'हम' और 'हमको' के विषय में अधिक सोचा करो। इस प्रकार करने से ईर्ष्या अपने आप दूर हो जावेगी, और आपमें सहानुभूति पूर्ण कद्र करने की प्रवृत्ति उत्पन्न होकर विकसित होगी। यदि कोई व्यक्ति आपसे अधिक प्रसिद्ध है तो यह विचार करो, यह ख्याति मेरी ही है, केवल यह दूसरे के नाम के साथ है।" आपके भाई दूसरे मनुष्य में जो कुछ गुण हैं, वह मानवी एकता के नियम से आपके ही हैं। आपको यह भी सोचना चाहिये कि प्रत्येक पुरुष किन्हीं बातों में दूसरों से अधिक और किन्ही बातों में कम होता है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति की क्षतिपूर्ति हो जाती है। ईर्ष्या, अभिमान और असमानता से उत्पन्न होती है, यह एक पूर्णतया प्रतिषेधात्मक और अलाभदायक भाव है, क्योंकि आप केवल दूसरों से ईर्ष्या करके सौन्दर्य, बुद्धि अथवा ख्याति को प्राप्त नहीं कर सकते। ईर्ष्या करने से आप उस कुत्ते के समान हो जाते हो, जो हाथी अथवा मोटरकार पर भौंकता है। जैसा कि बैलजक ने उसके विषय में कहा है, "यह ऐसा दोष है, जिससे कोई लाभ नहीं।" ईर्ष्या करने से आपको कुछ नहीं मिलता। इसके विरुद्ध अपने ही ओछेपन और स्वार्थ-

परता से अपके मन की शान्ति और आपका आनन्द दूर हो जाता है। ईर्ष्या स्वयं अपना ही दण्ड है। आप दूसरों को नीचा दिखाने अथवा उनकी त्रुटियों को प्रकाशित करने का उद्योग करके उनकी अवमानना से प्रसन्न हो सकते हो, ईर्ष्या इस प्रकार की नीचता और अनुदारता को उत्पन्न करती है। किन्तु ईर्ष्यालु पुरुष उस मूर्ख के समान होता है, जो ऊपर को देखकर चन्द्रमा पर थूकता है, किन्तु उससे वास्तव में उसका ही मुख खराब हाता हैं। वह इस बात को नहीं समझता कि वह किसी प्रसिद्ध पुरुष की निन्दा अथवा बदनामी करके उसको हानि नहीं पहुँचा सकता। वह जिनसे इस प्रकार की बातचीत करता है, वह भी उसकी निन्दा करते हैं। वास्तव में तो अपने इस कार्य से वह निन्दा किये जाने वाले पुरुष के विषय में सहानुभूति की प्रतिक्रिया ही करता है। जब वह दूसरों पर कीचड़ उछालता है तो वह उसी पर आकर पड़ती है। किन्तु उसकी पीठ पर पड़ने के कारण वह उसको दिखाई नहीं देती। ईर्ष्या करने से बड़े आदमी भी छोटे हो जाते हैं। डायोजिनीज़ (Diogenes) जिस समय प्लैटो के विरुद्ध नैतिक घृणा प्रगट करने का बहाना कर रहा था, तो वह वास्तव में ईर्ष्या के वश में ही था। इतिहासज्ञों ने इसका इस प्रकार वर्णन किया है, "एक समय प्लैटो ने कुछ मित्रों को भोज का निमन्त्रण दिया उस समय डायोजिनीज़ ने उसके फर्श को कुचलते हुये कहा था, 'मैं प्लैटो के अभिमान को इस प्रकार कुचला करता

हूं।" इस पर प्लैटो ने कहा, "ठीक है, डायोजिनीज़ तुम यह करने में स्वयं भी तो दूसरे प्रकार के अभिमान से नहीं बचते।" सन्त कबीर ने ठीक ही कहा है, "धन और स्त्री के प्रेम का बलिदान करना सुगम है किन्तु ईर्ष्या और जलन को छोड़ना अत्यन्त कठिन है" गोयथे (Goetbe) और शिलर (Schiller) ने निश्चय से ही इस कठिन कार्य को पूर्ण कर दिया था, उनकी मित्रता में उन दोनों के ही कवि होने पर भी ईर्ष्या का लेश नहीं था।

ईर्ष्या उन्नतिशील आन्दोलनों को नष्ट और विसंगठित करती है। निम्न कोटि के व्याख्याता और लेखक सफल नेताओं पर ईर्ष्या करते, और उनके स्थान में अपनी ख्याति करना चाहते हैं। वह असन्तोष और झगड़ों को उत्पन्न करते हैं। किसी २ समय तो अपने स्वार्थी उद्देश्य के लिए वह सभा को ही तोड़ डालते हैं। वह अपने उन्नतिशील साथियों के ठीक या काल्पनिक अपराधों के विषय में सब किसी से कहते फिरते हैं और इस प्रकार सदस्यों में अनैतिकता उत्पन्न करते हैं। योग्य साथियों में झगड़े और घृणा उत्पन्न करने के कारण ईर्ष्या सभी दलों, धर्मों, और राज्यों को नष्ट कर सकती है। स्पेंसर ने ईर्ष्या को एक 'भूखे भेड़िये' पर चढ़ी हुई और विषैले मेंढक को चबाती हुई से चित्रित किया है—

"जब उसने किसी भलाई को देखा तो उसे मौत सी आगई।

वह बिना कारण ही रोने लगा,

और जब उसने उसकी किसी हानि के विषय में सुना तो वह बहुत प्रसन्न हुआ।"

(४) तथ्य भाषण

सामाजिक व्यक्ति भाषण के सभी दोषों से बचता है। वह अपनी वाणी को अभ्यास डालता और वश में रखता है। वह कवि की इस चेतावनी को सदा स्मरण रखता है—

"लड़के पतंग ऊड़ाते समय अपने सफेद पंख वाले पक्षियों को खींचते हैं।
आप भी शब्दों को उड़ाते हुये इसी प्रकार कर सकते हो।
हम जानते हैं कि 'अग्नि से सावधान रहना' अच्छी शिक्षा है
किन्तु "शब्दों में सावधान रहना उस से दसगुनी लाभप्रद शिक्षा है।"

वाणी आपको आपस में मिलाने वाले सामाजिक बन्धन की प्रेमपूर्ण गाँठ को काटने की कैंची का काम दे सकती है। शान्ति और सहयोग संयत वाणी का उपहार होते हैं। असत्य-भाषण एक पाप है, यह सामाजिक जीवन को असम्भव बना देता है। सहयोग और पारस्परिक विश्वास के लिये सत्य बोलना अत्यन्त अनिवार्य है। असत्य भाषण स्वयं एक रोग होने की अपेक्षा नैतिक रोग का लक्षण है। लोग किसी उद्देश्य और प्रयोजन के लिए असत्य भाषण करते हैं। वह धन, प्रेम, ख्याति, सम्मान और अन्य आशाओं के लिये असत्य भाषण करते हैं। यदि आप लोभ अहंकार तथा अन्य भयानक पापों को जीत लोगे तो आप को असत्य भाषण करने का प्रलोभन कभी न होगा। आपको विशेषकार्यों (रोग क्रान्तिकारी कार्य अथवा परोपकार के

कार्य) में भी असत्यभाषण को छूट नहीं देनी चाहिए। यह संभव नहीं है कि इस प्रकार की समस्या का सामना आपको अपने जीवन में करना पड़ेगा। किन्तु इस बात को स्मरण रखो कि नम्र और असत्यभाषी होने की अपेक्षा स्पष्ट और सत्यवादी होना कहीं अच्छा है। अत्यधिक नम्रता जिसके परिणाम स्वरूप कृत्रिम वार्तालाप और निम्नकोटि का असत्य भाषण करना पड़े, सामाजिक रोग है, यूरोप और अमरीका की अपेक्षा यह एशियाई देशों में अधिक फैला हुआ है। किसी व्यक्ति को अधिक समय तक धोखे में रख कर ठगने की अपेक्षा एक क्षण के लिये उसके भावों को ठेस पहुंचाना कहीं अधिक कृपापूर्ण कार्य है आपको सत्यभाषण की सीमा के अन्दर २ नम्र बनना चाहिये।

कुछ बुरा चाहने वालों की वाणी से निन्दा का विष निकला करता है। यदि किसी व्यक्ति ने ग़लती की भी हो तो आपको उसकी तब तक बुराई नहीं करनी चाहिये, जब तक ऐसा करना सामाजिक कर्तव्य को के नाते अनिवार्य न हो जावे। किसी व्यक्ति के कार्यों की व्यर्थ में नुक्ताचीनी एक समाज विरोधी प्रकृति है। जिस समय आप किसी अनुपस्थित व्यक्ति की सत्य अथवा असत्य निन्दा के विषय में सुनें तो आपको उसको मिटाने के उद्देश्य से उसके गुणों का वर्णन आरम्भ कर देना चाहिये। यदि निन्दा झूठी है तो वह ईर्ष्या और जलन का घृणित और भयंकर कार्य है। इस प्रकार की निन्दा को दूर कर देना चाहिये। और ऐसे निन्दक की क़लई खोलकर उसको चेतावनी दे देनी

चाहिये। इस प्रकार की निन्दा करने वालों की तुलना विषैले सर्पों से की जा सकती है। हमको अपने सामाजिक वार्तालाप में दूसरों की यथा संभव अधिक से अधिक प्रशंसा करने का यत्न करना चाहिये। अच्छा नियम तो यह है कि यदि आपके पड़ौसी में कोई दोष है तो उसकी उसको प्रत्यक्ष या परोक्षरूप से सूचना दे दो। किन्तु यदि उसमें कोई गुण है तो उसके विषय में दूसरों से कहो।

उद्दण्ता एक ऐसा दोष है, जिसके लिये कोई योग्य बहाना नहीं किया जा सकता। अपने से अवस्था और योग्यता में बड़ों से अत्यन्त परिचित के समान वार्तालाप मत करो। बोलचाल में पर्याप्त विनय किया करो। कुछ नीच पुरुष अपने से अवस्था वृद्धों, और प्रसिद्ध पुरुषों से बराबर वाले के ढङ्ग पर वार्तालाप करके समानता का दावा करते हैं। मैं एक नवयुवक विद्यार्थी को जानता हूं जिसने मुझ से अपने प्रोफेसर के विषय में 'आर्थर' कह कर उल्लेख किया था। यह उद्दण्डता उसके अभिमान के कारण थी। एक दूसरे नवयुवक को अपने से वृद्ध और योग्य व्यक्तियों को उनकी साधारण उपाधि 'महाशय' आदि को बिना लगाये ही बोलने की आदत थी, जैसे वह उनका समानता प्राप्त धनिष्ट मित्र हो। यह व्यवहार सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाने पर एक प्रकार की उद्दण्डता है। प्रत्येक व्यक्ति का वार्तालाप में योग्य सम्मान करो और अभिमानी होने की अपेक्षा नम्र बनो। योग्य सम्मान और विनय से आपकी ओर से कभी किसी के

साथ दुर्व्यवहार न होगा, जबकि उद्दण्डतापूर्ण वाणी आपके अनेक कृपालु और उत्तम-स्वभाव वाले मित्रों को आपका विरोधी बना देगी। निर्धनों और अपने से किसी प्रकार भी कम व्यक्तियों से उद्दण्डता से कभी मत बोलो। इस प्रकार के व्यक्तियों के साथ सदा ही नम्रता से वार्तालाप करो। आपकी ओर की हुई उद्दण्डता उनको उनके छोटे पन का स्मरण करावेगी, जिसके लिये वह अपने जीवन भर विरोध करते रहेंगे। आपके बड़े भले ही आपके वार्तालाप की उद्दण्डता को क्षमा करदें, किन्तु आपसे छोटे आपको कभी क्षमा नहीं करेंगे। कठोर शब्द सदा ही दूसरों का भारी अपमान करते हैं। आप उसी बात को मीठे और नम्र शब्दों में भी कह सकते हैं, उस समय उन शब्दों का अधिक प्रभाव पड़ेगा। सेंट स्टेफोन का उपदेश प्रायः कठोर शब्दों से पूर्ण हुआ करता था, जिसके कारण उसके प्रति क्रोध और घृणा के भाव फैल गये। यदि आप किसी फेरीवाले से फिर न बोलने के लिये कहना चाहते हैं, तो आप यह कठोरता और कोमलता दोनों ही प्रकार से कह सकते हैं। शब्द अवश्य भिन्न होंगे, किन्तु संदेश एक ही होगा। इस प्रकार आप समाज में घृणा के स्थान में सदा ही प्रेम का प्रसार कर सकते हैं। नीति-शास्त्र में "भाषण के प्रचार" के नियम को स्मरण रक्खो। यदि आप किसी ऐसे छोटे मनुष्य से कठोरता से वार्तालाप करोगे, जो आपको उत्तर नहीं दे सकता तो वह किसी और से कठोर व्यवहार करेगा, और वह किसी अन्य से करेगा। इस प्रकार

यह शृंखला बराबर बढ़ती जावेगी। इसके विरुद्ध यदि आप किसी से मीठे शब्दों में प्रेम पूर्वक वार्तालाप करोगे तो वह भी दूसरों से यही व्यवहार करेगा। और यह व्यवहार की श्रृङ्खला भी बराबर वढ़ती जावेगी। इस प्रकार प्रेम अथवा घृणा के प्रकम्प हमारे चारों ओर बराबर फैलते जाते हैं। यह प्रकम्प भी बेतार की लहरों के समान ही होते हैं। यदि आपका आत्मा ठीक २ ग्रहण करने वाला रेडियो सेट है तो आप अपने कठोर अथवा मीठे शब्दों की पुनरावृत्ति को संसार भर में बराबर सुन सकते हो। अतएव उद्दण्ड और कठोर बचनों का प्रयोग किसी समय भी मत किया करो।

अपने वार्तालाप में, सदा ही गम्भीर और महत्वपूर्ण विषयों पर ही वार्तालाप करने का उद्योग किया करो। व्यर्थ के रगड़ों झगड़ों, समय नष्ट करने वाली बातों और मूर्खता की हंसी दिल्लगी से बचा करो। हमारे सामाजिक जीवन में कुछ लोग बर्तन भांडों, क्रिकेट, फुटवाल, व्यापार और व्यवसाय के विषय में व्यर्थ के वार्तालाप, मूर्खतापूर्ण कहानियों, और व्यर्थ की हंसी दिल्लगी को पसन्द करते हैं। इस प्रकार अमूल्य समय का ऐसा अपव्यय किया जाता है कि उससे किसी को लाभ नहीं पहुंचता। सदा ही इस बात का उद्योग करो कि वार्तालाप से कुछ न कुछ लाभ हो। सामाजिक वार्तालाप का मान ही किसी दल की संस्कृति की अच्छी पहिचान हुआ करती है। राजनीति, अर्थशास्त्र, कला, साहित्य, धर्म, दर्शनशास्त्र, इतिहास, समाजविज्ञान, कविता तथा

अन्य रुचिपूर्ण विषयों पर प्राय: बातचीत किया करो। कुछ अधिक बुद्धिमान् बातचीत करने वालों के समान सारे वार्तालाप को अपने में ही केन्द्रित मत करो। प्रत्येक व्यक्ति को कुछ न कुछ कहने का अवसर दो, सामाजिक भोज में अधिक वार्तालाप करना स्वार्थी प्रकृति का सबसे बुरा चिन्ह है। इसके विरुद्ध पूरे समय भर चुप भी मत बैठे रहो भोज में आप गूंगे नहीं हो। यदि आप देखो कि कोई व्यक्ति अपनी ही अपनी कह रहा है। तो आपको अन्य उपस्थित सज्जनों से की अपनी सम्मति प्रकाशित करने को कहना चाहिये। इस परोक्ष रीति से आप उपस्थित व्यक्तियों को एक व्यक्ति का अभिमान पूर्ण स्वेच्छा-चारिता से बचा सकोगे।

(५) नम्रता

मध्यकालीन नीतिकारों ने अभिमान की निन्दा की है, किन्तु वह तुच्छता की गणना सातपापों में करना भूल गये हैं। हमारे बुद्धिवादी नीतिशास्त्र के मुख्य रूप से विध्यात्मक, न कि केवल प्रतिषेधात्मक होने के कारण आपको नम्रता के गुण को प्राप्त करने का यत्न करना चाहिये। व्यक्तिगत प्रसन्नता और पूर्ण सामाजिक जीवन के लिये नम्रता अनिवार्य है। किसी प्रकार भी अपने को अधिक मत समझो। अपने को वास्तविकता से अधिक सुन्दर, बुद्धिमान्, विद्वान अथवा तीक्ष्णबुद्धि वाला मत समझो। अपने व्यक्तित्व को अपने दोनों नेत्रों से देखो, न कि बड़ा दिखलाने वाले शीशे में। तुच्छता छोटे आत्मा का प्रतिबिम्ब

होती है। यदि आप अपने आप को अच्छी तरह जानते हो तो आप अपने को व्यर्थ में बड़ा बतला कर अपनी तुच्छता कभी प्रदर्शित न करोगे। आप अपनी योग्यता से अधिक श्रेय अथवा सम्मान अथवा ख्याति क्यों लेना चाहते हो? स्वार्थपरता और कपट में तुच्छता गहराई तक घर किये रहती है। जितना वाजिब हो उसका ही दावा करो, अधिक नहीं। अज्ञान मूर्खों की सम्मति की उपेक्षा करना भी सीखो। तुच्छ स्त्री अथवा पुरुष दूसरों का दास होता है और यह दासता पूर्णतया उसी के द्वारा स्वेच्छापूर्वक स्वीकार की जाती है। प्रायः तुच्छ पुरुष मूर्ख और थोथे होते हैं। जैसा कि सोफोकिल्स (Sophocles) का कहना है, "यदि कोई पुरुष समझता है कि केवल वही बुद्धिमान है तो इस प्रकार का पुरुष बोलने या विचार करने का भेद खुलने पर निरा खाली सिद्ध होता है।" अभिमान और तुच्छता का अत्यन्त निकट सम्बन्ध होता है, यद्यपि इन दोनों ही अवगुणों का प्रदर्शन विभिन्न प्रकार से किया जाता है। अभिमान का मूल अपने व्यक्तितत्व के असत्य अनुमान में है, यह अहंकार और अज्ञान से उत्पन्न होता है। यदि आप व्यक्तित्व को नापने वाले किसी वैज्ञानिक के पास कभी २ हो आया करो, और उससे शारीरिक, बौद्धिक, ललित रुचि सम्बन्धी और नैतिक गुणों और सफलताओं का ठीक २ विवरण प्राप्त कर लिया करो तो इससे आपको बहुत लाभ होगा। तब जाकर आपको पता लगेगा कि आप कितने कैरट के सोने हो; किन्तु एक अभिमानी

पुरुष का तो यही विश्वास होता है कि वह वास्तव में २४ कैरट का ही सोना है। अभिमान एक प्रकार मनोवैज्ञानिक अन्धापन होता है। इससे व्ययहार में उद्दण्डता और रूक्षता आ जाती तथा वाणी में विनय का अभाव हो जाता है। यह वास्तव में ही बड़ी भारी समाज बिरोधी शक्ति है। यह एक आत्म गौरव का ऐसा हास्यास्पद मिश्रण उत्पन्न करती है जो घटनाओं से कभी सिद्ध नहीं होता। यदि आप कुछ बातों में दूसरों से बड़े हैं, तौ भी आपको आत्मा में बिना जाने घुस आने वाले सूक्ष्म अभिमान के पाप से अपनी सदा ही रक्षा करनी चाहिये। अभिमान का यह रूप सब से अधिक भयंकर होता है। यह प्राय बिना जाने आ जाता है। जिस प्रकार पागल आदमी अपने को कभी पागल नहीं समझता उसी प्रकार अभिमानी पुरुष भी अपने को कभी अभिमानी नहीं समझता। वह बड़ी कठिन परि-स्थिति में पड़ जाता है। वह अपने को बिलकुल औसत दर्जे का समझता है, जब कि दूसरे लोग उसकी निर्बलताओं को देख कर उनको नापसन्द करते हैं। एक भारतीय कवि बड़ी अर्न्तदृष्टि से कहता है. "लोभी पुरुष केवल धन को ही देखता है; प्रेमी केवल प्रेमिका को ही देखता है, प्रतिषोध लेने वाला केवल अपने शत्रु को देखता है, किंतु अभिमानी पुरुष किसी को नहीं देखता।" अभिमान और तुच्छता आत्म-प्रशंसा और शेखी के रूप में प्रगट होते हैं, जिससे उनका सामाजिक जीवन सबके लिये असह्य और अनाकर्षक बन जाता

है। जनता आपकी प्रशंसा कर सकती है, किंतु वह उसको आपके मुख से सुनना नहीं चाहती। यदि आप अपनी प्रशंसा न्याय और सत्य के अनुसार भी करते हो, तो भी वह विरोधी हो जाते हैं और आपके दोषों को ही देखने लगते हैं। जब आप आत्म-प्रशंसा के राग को आलापते हो जनता वहां से हट कर उतनी दूर चली जाती है कि उसको वह राग सुनाई न दे सके।

तुच्छता और अभिमान की विरोधी औषधि नम्रता है। अपने को बहुत बड़ा मत समझो। अपनी सफलता को ऐतिहासिक स्त्री पुरुषों के कार्यों से तुलना करके नम्रता सीखो। ऊंट तभी तक अपने को ऊंचा समझता है, जब तक पहाड़ के नीचे नहीं आता। अपने से बड़े प्रसिद्धपुरुषों से मिलते जुलते रहने का उद्योग करो। इस प्रकार की मित्रता आपको अत्यंत प्रभावपूर्ण नम्रता की शिक्षा देगी। इस बात को स्मरण रखो कि अभिमान से आप बहुत कुछ खो देते हो। अभिमानी को बहुत से मनुष्य न प्रशंसा करते न सहायता करते, और न प्रेम करते हैं। अभिमान आपके व्यक्तिगत विकास को भी रोकता है। यदि आप अपने को सबसे बड़ा समझने लगोगे तो आप अधिक बड़ा बनने का यत्न करना छोड़ दोगे। यदि आप ने कोई कार्य ख्याति तथा विज्ञापन योग्य किया है, तो उसके विषय में स्वयं कुछ मत कहो। आपको पता लगेगा कि उसके विषय में दूसरे भी किसी न किसी प्रकार कुछ अवश्य जानते हैं। इस प्रकार

नम्रता से आपकी कुछ हानि नहीं होती। आपके गुण अधिक समय तक छुपे नहीं रहेंगे। आपको स्वयं उनकी घोषणा करने की आवश्यकता नहीं है।

अभिमान और तुच्छता सभी उन्नतिशील आंदोलनों की उन्नति में भी बाधा पहुंचाते हैं। आत्मप्रशंसा के प्रेमी सभी सभा समितियों को हानि पहुंचाते हैं। वह पदों पर चुने जाने, सभाओं का सभापति बनने और वहां व्याख्यान देने का प्रबन्ध करते हैं। किसी प्रबन्ध समिति में वह प्रायः दस एक स्थान के लिये होते हैं। अधिक कल्पना करने वाला अभिमान काम करने वाले सदस्यों को भी कमेटी में अभिमानी और स्वेच्छाचारी बना देता है। इस प्रकार के स्वेच्छाचारी पदाधिकारी उस सभा या आन्दोलन को उसी प्रकार नष्ट कर देते हैं, जिस प्रकार एक अंधा ड्राइवर गाड़ी को तोड़ डालता है। जिस प्रकार दो सिंह एक ही गुफा में नहीं रह सकते, उसी प्रकार दो स्वेच्छाचारी एक ही सभा में नहीं रह सकते। प्रत्येक स्वेच्छाचारी पदाधिकारी अपनी ही बात चलाना चाहता है। समझौता तो वह किसी प्रकार नहीं करना चाहता। यदि पृथ्वी पर एक ही प्राणी होता, अथवा कमेटी में एक ही मनुष्य होता तो समझौते की कोई आवश्यकता नहीं थी। किंतु पारस्परिक सहायता और सहयोग की भावना के बिना अनेक मनुष्य एक साथ काम नहीं कर सकते। अभिमान अनेक योग्य और सच्चे मनुष्यों को एक साथ काम करने के लिये अयोग्य बना देता है। आचरण की इस

एक त्रुटि के कारण उनकी योग्यता और शक्ति का सामाजिक उन्नति में पूर्ण उपयोग नहीं किया जा सकता । अतएव नम्र, निपुण, और मिलनसार बनो, जिससे आप सभी उन्नतिशील आन्दोलनों में अपने मित्रों का सहयोग प्राप्त कर सको ।

न्याय प्रियता

मानवी समाज की स्थापना यदि न्याय के आधार पर न की जावे तो वह केवल जंगली पशुओं का झुण्डमात्र ही बनी रहे । जङ्गल में बलवान् पशु निर्बलों का शिकार करते हैं । और सिंह मृगों को खा जाते हैं । किंतु न्याय मनुष्य और उसकी सभ्यता की शान है । न्याय प्रत्येक को उसका योग्य अधिकार देता है । वह शान्ति और समानाधिकरण का माता पिता है । जिस प्रकार वह सब को योग्य पारितोषिक का वचन देता है, उसी प्रकार सब से कार्य और मूल्य चाहता है । वह संगठित समाज का संरक्षक, उसका सबसे अधिक विश्वासपात्र रक्षक और अनियम तथा विद्रोह को दबाने वाला है । आपको न्याय-प्रियता के गुण को अपने अन्दर अधिक से अधिक मात्रा में उत्पन्न करना चाहिये । आपको प्रत्येक को उसका योग्य भाग देने का यत्न करना चाहिये, साथ ही आपको दूसरों को उनका योग्य भाग दिलाने में सहायता भी करनी चाहिये । खेद है ! कि हम में अन्याय का इतना अधिक प्रचार हो रहा है कि सभी न्याय प्रेमियों को न्याय के लिये प्रतिदिन प्रबल युद्ध करना पड़ता है । हमारी सभ्यता का आधार अन्याय है । हमारी

संस्थायें अन्याय के अरक्षित और फिसलने वाले आधार पर बनाई गई है। हम उन समुद्री यात्रियों के समान हैं, जिन्होंने ह्वेल मछली की पीठ को स्थल समझ कर उस पर खाना पानी बनाना आरम्भ कर दिया था, और जो शीघ्र हिल डुल कर तैरने लगी थी। हमारे सभी राज्य और धर्म अन्याय के ऊपर बने हुये विशाल प्रासाद हैं; उनमें अन्याय का सीमेंट लगा हुआ है; उनमें अन्याय की पुताई, रंगाई और सजावट की हुई है; उनमें अन्याय का ही प्रकाश और अन्याय की ही उष्णता है; उनमें ताप और ठंड भी अन्याय की ही है, वह उस उत्तराधिकारप्राप्त निर्लज्जतापूर्ण अप्रतियोगिता वाले सार्वभौम अन्याय के स्मृति चिन्ह हैं, जो आज समस्त पृथ्वी के ऊपर शासन कर रहा है, अतएव न्याय का प्रेम आपको इस बिगड़े हुए समाज में एक विदेशी जैसा और प्रतिकूल स्वभाव वाला बना देगा; किंतु आपको इससे भयभीत नहीं होना चाहिये।

लोभ

न्यायप्रियता आपके आत्मा में से लोभ को जड़ से निकाल देगी। जिस प्रकार चूने की खानों को पानी सब कहीं से गीला कर देता है, उसी प्रकार लोभ इस समाज में पूर्णतया व्याप्त है। प्राप्त करने की मनोवृत्ति को जो अपनी योग्य सीमा में प्रशंसा योग्य गिनी जाती है, विषम परिमाण ग्रहण करने दी गई है, जिस प्रकार अष्टपद-प्राणी अपने शिकार को मार डालता है उसी प्रकार 'धन' नाम की पौद्गलिक वस्तु मानवी व्यक्तित्व

को कुचल कर मार डालती है। लिप्सा का भूत हमारे आत्मा तक को पकड़े हुये है। उसको हमारे अन्दर से कोई धर्म बाहिर नहीं निकाल सकता। विभिन्न देशों के लोग ईसामसीह, बुद्ध, शिव अथवा अल्लाह को पूजने का बहाना करते हैं, किन्तु सभी देशों में प्राचीन काल के चौसर (Chaucer) के यात्री चिकित्सक के समान—"जो विशेष रूप से सोने से प्रेम करता था—वह सोने की ही पूजा करते हैं। लोभ के कारण वह ऐसी २ बाह्य वस्तुओं को अत्यधिक एकत्रित करते हैं, जो न केवल उनके व्यक्तित्व के लिये व्यर्थ, वरन् उसके लिये हानिकर भी होती हैं। उनको जान डेवे (John Dewey) के शब्दों में 'उपचार' का रोगसा हो जाता है। वह सच्चे स्त्री और पुरुषों के समान गुण और बुद्धि से उन्नति करने का यत्न नहीं करते, वह फर्नीचर कपड़ों, नक़दी और नोटों के भारी २ बोझों को ढोने वाले सुन्दर ज़ीन पोश वाले गधों को रखना ही एक गुण समझते हैं। और उसी में अभिमान का अनुभव करते हैं। दोनों मौलिक गुणों—वास्तविक लगन और सामाजिकता—को कम करने के कारण लोभ का पूर्णतया त्याग करके उसकी निन्दा करना चाहिये। यह आचरण की सरलता और गम्भीरता को नष्ट करता है, क्योंकि धन लोलुप सदा धन की वृद्धि के लिए ही यत्न और षडंयन्त्र करता रहता है। जिस प्रकार प्रेमी सदा अपनी प्रेमिका का ध्यान करता और उसीका स्वप्न देखता है उसी प्रकार लोभी सदा धन का ही ध्यान करता और स्वप्न देखता है,

लोभ सामाजिकता को भी नष्ट करता है। कोई ईमानदार आदमी कभी धनी नहीं बन सकता। अपने ही निःसहाय बल से कोई भी विशाल सम्पत्ति प्राप्त नहीं कर सकता; फिर चाहे वह संसार के सब से अधिक उपजाऊ क्षेत्र, सोने की खान, अथवा मोतियों और सीप की तलहटी में ही काम क्यों न करे, बहुत सा धन उत्पन्न नहीं किया जाता, वह लिया जाता है। सभी फालतू धन श्रमियों को ठगने और दमन करने से प्राप्त किया जाता है।

समाज में तीन वर्ग होते हैं—(१) ठीक पारिश्रमिक पाने वाले व्यक्ति, जो न तो ठगते और ठगे जाते हैं और जो उतनी ही सामग्री और सेवा प्राप्त करते हैं जितनी वह सर्वसाधारण के सहयोग वाले प्रजाराज्य में प्राप्त करते। यह निम्न कोटि वाला वर्ग नगर और ग्रामों का मध्यवर्ग है, जो न तो स्वयं अन्याय करता और न अन्याय सहन करता है। (२) दूसरे वर्ग में धनी जमींदार, पूंजीपति, लाट पादरी, राज्याधिकारी, पेशेवर व्यक्ति, सिनेमा तारिकाएं, पहलवान तथा अन्य वह व्यक्ति हैं, जो अपने उचित भाग से अधिक धन पाते हैं। यह लालची ठग होते हैं। (३) तीसरा वर्ग निर्धन और भूखे श्रमिकों, किसानों, क्लर्कों तथा अन्य उन व्यक्तियों का होता है, जो जाति द्वारा उत्पन्न किये हुए धन का कम पुरस्कार पाते हैं, यह अत्याचार पीड़ितों का बहुमत होता है।

यदि कोई मध्य श्रेणी का मनुष्य धन एकत्रित करने की इच्छा से ठगने वाले वर्ग में सम्मिलित होना चाहता है, तो वह

लोभ का अपराधी है। द्वितीय वर्ग तो पहिले से ही लोभ के शिखर पर आसीन होता है। यह लोभ में ही गर्भ में आता. लोभ में ही उत्पन्न होता, लोभ में ही पलता, लोभ के ही कार्य करता और लोभ में ही मरता है। यह सब कहीं धन को ही देखता, सुनता, सूंघता, चखता और छूता है, वह धन के वायु में ही श्वास लेता और धन ही उसके लिये खाना और पीना है। वह धन के लिये काम करता, धोखा देता, छीनता. असत्य भाषण करता और हत्या करता है। तीसरे अत्याचार पीड़ित वर्ग पर यदि वह अपने अधिकार का दावा करें तो लोभ का दोषारोपण नहीं किया जा सकता। उनकी मजदूरी की दर को मध्यम वर्ग की आय तक बढ़ा देना चाहिये। इस समय उनके साथ बड़ा भारी अन्याय हो रहा है। किन्तु यदि कोई मजदूर करोड़पति होने का स्वप्न देखे अथवा लाटरी के टिकट मोल ले, अथवा जुवा खेले अथवा पूंजीपति वर्ग में सम्मिलित होने का उद्योग करे तो वह भी अन्य ठगों के समान ही लोभी है। लोभ धनी और निर्धन दोनों के आत्मा का पतन कर देता है। यह प्रत्येक दशा में एक हानिप्रद पाप है। न्यायप्रियता मध्यम वर्ग को उनकी आर्थिक दशा में सन्तुष्ठ रहने की शिक्षा देगी, यह कुछ धनिक व्यक्तियों को उस लिये भी तयार कर देगी कि वह अपने अन्यायोपार्जित लाभों से हाथ खैंच लें और धन का उपयोग दान और समाजवाद की सेवा करने में करें। अत्याचार पीड़ित वर्ग न्यायप्रियता से साहस पाकर अपने आय के मान को ठीक

करने के लिये परस्पर संगठित होगा, किन्तु वह पूंजीवादियों के अयोग्य कार्यों को प्रदर्शित करने वाले लोभी व्यक्तियों का त्याग और उनकी निन्दा करेगा, लोभ इस प्रकार से व्यक्तियों से जुवा खिलावेगा, उनको पूंजीवाद का समर्थक बनावेगा, उनसे श्रमजीवी संस्थाओं को हानि पहुंचावेगा, अथवा चोरी, कुम्बल, जालसाज़ी, गिरहकटी, अपहरण अथवा धन प्राप्ति के अन्य सुगम कार्य करावेगा। यदि वह अधिक धन प्राप्त करने की अपनी इच्छा को पूर्ण न कर सके तो वह प्रति दिन और रात दुःखी और उदास रहा करेंगे।

उन्नतिशील आन्दोलन

लोभ सभी उन्नतिशील आन्दोलनों के लिये आतङ्क होता है। जिस प्रकार खेती के लिये वर्षा का होना अनिवार्य है, उसी प्रकार नये आन्दोलन के जन्म और उनकी उन्नति के लिये इस दोष से छुटकारा पाना आवश्यक शर्त है। धर्म अथवा राजनीति के उद्योगी वीर को एक यति के समान यही कहना चाहिये, "मेरे पास तो सोना और चांदी कुछ नहीं है।" वह किसी देश में भी अधिक धन नहीं कमा सकता, क्योंकि उसको स्वतन्त्र प्रचार में अधिक समय लगाना पड़ता और साथ ही विदेशवास और अप्रसिद्धि को सहन करना पड़ता है। यदि सभी सच्चे और सुशिक्षित नवयुवक स्त्री पुरुष लोभी हों, तो उन्नतिशील आन्दोलनों को कौन चलावेगा? यदि वह सब सोने को ही पकड़े रहें तो सत्य और न्याय की सेवा कौन करेगा? इस समय अनेक

योग्य पुरुष अपनी योग्यता को पूंजीवाद की सेवा में लगा रहे हैं, क्योंकि उनको बड़े २ वेतन और भोगविलास की सामग्री केवल वही दे सकते हैं। वह राल्स राएस मोटर कारों, कीमती सिगारों और शराब में अपने मस्तिष्क को बेच देते हैं। लोभ संसार से अनेक योग्यता सम्पन्न पैग़म्बरों, सुधारकों और क्रान्ति-कारियों को छीन लेता है। इस प्रकार की नवयुवक सन्तति में अत्यधिक बाल-मृत्यु होती है। बीस वर्ष की अवस्था में उनके आत्मा गुण और स्वतन्त्रता के साम्राज्य में उत्पन्न होते हैं; किन्तु बाद के दस वर्षों में इनमें से अनेक आत्माएं लोभ से मर जाते हैं। अच्छा भोजन पाने वाले शरीर नाम को ही जीते रहते हैं उनके दुर्गन्धियुक्त शवों में पूँजीवाद के घृणापूर्ण कीड़े उत्पन्न होते रहते हैं। पूंजीवाद द्वारा किराये पर लिये हुए सभी नौकर, जो निर्धनता में उत्पन्न हो कर अमीरी में मरते हैं इसी प्रकार के मृतात्मा होते हैं। अतएव यदि नये आन्दोलन उत्पन्न हों, कुछ प्रतिभाशाली नवयुवकों को लोभ को जीत कर साधारण जीवन को स्वीकार करना चाहिये। यदि पेट्रार्च, लूथर, रूसो, ब्लैंकी (Blanqui) और मार्क्स धन से प्रेम करते तो आधुनिक संसार मध्यकालीन दलदल से कभी न निकल सकता। लोभ बड़े २ आन्दोलनों के उत्पन्न होने में बाधा पहुंचाता है; वह उनकी उन्नति को भी रोकता है। धर्म और राजनीतिक आन्दोलनों के वीरों और तपस्वियों को निर्धनता में ही रहना चाहिये, क्योंकि उनकी स्वयं की हुई सेवा का बदला कोई संस्था नहीं

दे सकती। तत्कालीन शक्ति की सेवा न करने के कारण वह धन प्राप्त नहीं कर सकते। उनके समर्थक बहुत कम होते हैं, और इन आन्दोलनों को सदा ही आर्थिक कठिनता रहती है। लोभ को छोड़ने वाले प्रतापी स्त्री पुरुष तो नये विचारों और आदर्शों को कार्य रूप में परिणत कर सकते हैं।

इस प्रकार लोभ उन सब नये आन्दोलनों का शत्रु होता है, जिनके बिना मानवी समाज की उन्नति एक दम रुक जाती है। यह इस प्रकार के आन्दोलनों के शक्तिशाली हो जाने और उनके लाखों अनुयायी हो जाने पर भी उसको नष्ट कर सकता है। राजयक्ष्मा और इंफ्लुएंज़ा के कीटाणुओं के समान लोभ स्वार्थ-परता और विलासिता से निर्बल हुए आत्माओं के ऊपर आक्रमण करने के लिये हवा में प्रत्येक समय उपस्थित रहता है। बड़े २ आन्दोलन 'नेता' कहलाने वाले बड़े २ भारी उद्योगी बुद्धिमान स्त्री पुरुषों के द्वारा चलाये जाते हैं। इस प्रकार के 'नेता' लाट पादरी, पादरी, पुरोहित, पार्लमेण्ट के साम्यवादी सदस्य, ट्रेड यूनियन के पदाधिकारी, मज़दूर दल के पदाधिकारी, साम्यवादी सम्पादक, ग्रन्थ लेखक, व्याख्याता तथा जनता के सुसङ्गठित राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक आन्दोलनों के अन्य अधिकारी होते हैं।

यदि यह लोग लोभ करें तो आन्दोलन सदा के लिये शान्त हो जावें। उस समय वह शिक्षक नहीं वरन् 'द्रोही' कहे जाते हैं। वह अपनी 'सेवाओं' के बदले में सभाओं के निर्धन सदस्यों

से धन लेना आरम्भ कर देते हैं। इस प्रकार कर, चढ़ावे और भेंट आदि के रूप में अनेक पादरी, और पुरोहित श्रमिक-वर्ग के पैसे के बल पर आमोद प्रमोद कर रहे हैं। वह असत्य भाषण करते हैं और जनता को लूटने के लिये सूक्ष्म विधियां निकालते रहते हैं। वह मृतकों के लिये प्रार्थना करते, अथवा पापों को क्षमा करते, अथवा किसी देवता को जगाते, अथवा आपके स्वास्थ्य और सफलता के लिये यज्ञ करते, अथवा आपको तागा तावीज़ देते, अथवा आपके खेतों और मोटरकारों को आशीर्वाद देते, अथवा वर्षा और विजय के लिये प्रार्थना करते, अथवा निर्धनों के परिश्रम पर मौज उड़ाने के लिये किसी और चलाकी से काम लेते हैं। सभी धर्मों के पुरोहित ऐसे हैं और ऐसे ही थे। वह धोखे और अंधविश्वास से फलते फूलते हैं, वह ऐसे धोखेबाज़ चोर हैं, जो आपको आशीर्वाद देते समय आपकी जेब कतरते हैं। दान्ते ने क्रोध पूर्वक यह कह कर इस वर्ग की निन्दा की है। "तुमने अपने लिये सोने और चांदी के देवता बना डाले।" वह अज्ञानी लोगों को लूटते हैं, वह इससे भी बुरा काम करते हैं। वह धनिकों को भी निर्धनों को लूटने में सहायता देते हैं। वह जनता को शिक्षा देते हैं कि डाकू राजा, ज़मीदार और पूंजीपति लोग परमात्मा के द्वारा 'कारिन्दे' और 'नेता' नियुक्त किये गये हैं, और आधीनता तथा आज्ञापालन बड़े भारी गुण हैं; और निर्धन लोगों को स्वर्ग मे पारितोषिक मिलेगा, उनको यहां धनिकों पर आक्रमण नहीं करना चाहिये।

इस प्रकार की चिकनी चुपड़ी बातों से सभी धर्मों के पुरोहित लोग श्रमिकों के मस्तिष्कों पर जादू डालते हैं। वह सदा ही देश के प्रत्येक ठग वर्ग के साथी और सहायक रहे हैं। उन्होंने अन्याय और दमन का प्रतिकार करने में सम्मति देने और उसका संगठन करने के स्थान में सदा ही लूट में भाग लिया है। यह रेवेरेन्ड (Reverend), पवित्र लोग (Holinesses), प्रतापी आत्मा (Graces), उल्मा, मुल्ला, मौलवी, इमाम, महन्त और लामा लोग सब एक ही थैली के चट्टे बट्टे होते हैं। इनमें केवल वेष भूषा का ही अन्तर होता है। यह लोभी, आलसी, कायर, तुच्छ, पेटू, और पाखण्डी होते हैं। लोभ उनका एकता का बन्धन होता है। लोभ गडरिये के कुत्ते को भी भेड़िया बना देता है। श्रमिकों के आन्दोलन में भी इसी प्रकार के कपटी पिलछग्गू पीछे पड़ जाते हैं। ट्रेड यूनियनों के अधिकारियों से यह आशा की जाती है कि वह निर्धन श्रमिकों के स्वत्वों की रक्षा करेंगे, किंतु वह स्वयं लम्बे चौड़े वेतन लेते हैं और इस प्रकार अपने और अपने बच्चों को क्रमशः धनिक वर्ग में सम्मिलित कर देते हैं। वह पूंजीपतियों की आय से पूंजीपतियों वाली मनोवृत्ति के हो जाते हैं। और अन्त में "कम करने" "वर्ग सहयोग" और "औद्योगिक शांति" के पुजारी बन जाते हैं। उनको एक मात्र चिंता अपने रोजगारों को बनाये रखने की होती है, और वह उन साधारण मनुष्यों की उपेक्षा करते हैं, जिनके धन से अपनी जेबों को भरते हैं। वह वास्तव में

श्रम के विरुद्ध षड्यंत्र करने वाले होते हैं, किन्तु बहाना श्रम के प्रतिनिधि बनने का करते हैं। इसी प्रकार भेड़ के बच्चों के प्रतिनिधि बन कर उनके कसाई भी आ सकते हैं। ट्रेड यूनियन के एक अधिकारी ने दस सहस्र पौंड की रकम को हड़प लिया था। इस प्रकार मूर्ख श्रमिकों को दोनों ओर से लूटा जाता है, वह इन चालाक, चंचल, पेट भर कर खाने वालों, और उत्तम वस्त्र पहिनने वाले बदमाशों को धन देते हैं, साथ ही वह अकर्मण्यता की "कम करने" की नीति के लिए धन नष्ट करते हैं, और इन 'नेताओं' की आज्ञानुसार समझौता करते हैं। इस प्रकार लोभ उन उद्योगी और बुद्धिमान ट्रेड यूनियन वालों को बिगाड़ देता है, जो श्रमिक आन्दोलनों की सेवा करने और उनको मार्ग प्रदर्शन करने के लिये नियुक्त किये जाते हैं। समाजवादी नेता भी लोभ में पड़ जाते हैं। अनेक समाजवादी नेता निर्धनता में उत्पन्न हुए और अमीरी में मरे। उन्होंने दल के सदस्यों को अपनी पुस्तकें बेचीं, अथवा अपने व्याख्यानों के लिये लम्बी चौड़ी फीसें लीं, अथवा सम्पादक और लेखकों के रूप में बड़े २ वेतन लिये अथवा अन्य प्रकार से धन एकत्रित किया। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि उन्होंने समाजवाद की शीघ्रता पूर्ण विजय में अपने उत्साह को तोड़ दिया। वह वास्तव में पूंजीवादी हैं; क्योंकि उनका सम्बन्ध ठगने वाले वर्ग से है। वर्ग ही किसी व्यक्ति की आय का परिमाण है और वही साधारणतया उसकी

राजनीति को निश्चित करता है। एक समाजवादी नेता ने जो निर्धन परिवार में उत्पन्न हुआ था। मृत्यु के समय पन्द्रह सहस्र पौंड नक़द छोड़े थे। यह रक़म निश्चय से ही देशद्रोह से वसूल की गई थी। उसको यह सब धन कहां से मिला? उतनी बड़ी रकम को लेकर उसका पूंजीपतियों से किस प्रकार मतभेद हो सकता था? जब वह उतना अधिक लाभ स्वयं उठा रहा था तो उसको अन्य लाभ करने वालोंकी निन्दा करने का क्या अधिकार था? लोभ ही समाजवादियों को म्युनिसिपल कौंसिलों और सरकारी विभागों में उच्च पदों की नौकरी प्राप्त करने का लालच देता है। सरकारी नौकरी के लालच से उनके मुंह में सचमुच ही पानी भर आता है। पूंजीपतियों की नौकरियों के लिये भी वह शीघ्रतापूर्वक झपटते हैं। अल्पमत वाली सरकार की तरह वह पूंजीवादी वर्ग के लिये अपने शरीर और आतमा को बेच डालते हैं। जिनको अपने अस्तित्व के लिये पूंजीवादी दलों की सम्मति पर निर्भर रहना पड़ता है। वास्तव में वह कभी भी समाजवादी दल नहीं बना सकते। अपने पदों के ऊपर यथासंभव अधिक से अधिक दिनोंतक बने रहने के लिये वह पूंजीपति राजनीतिज्ञों के साथ मिलकर 'राष्ट्रीय' सरकार बनाते हैं, उन्नतिशील आन्दोलनों में लोभ इस प्रकार का विनाश और पतन ला सकता है। अतएव यदि आप धर्म और राजनीति में सुधार करना चाहते हो, तो पहिले अपने आतमा को लोभसे मुक्त करो। उसके लोभको धोकर यहां तक शुद्ध करलो कि उसमें कोई धब्बा न रह जावे।

चोरी

न्यायप्रियता आपको दूसरों की वस्तु चुराने से भी रोकेगी। चोरी ऐसा पाप है जो सामाजिक जीवन को असम्भव बना देता है। एक ईमानदार मज़दूर को अपने साथियों के धन, कपड़ों, सिगरेटों या अन्य किसी वस्तु की चोरी नहीं करनी चाहिये। समाजवादी दलों में भी चोरी को भयंकर अपराध समझा जाता है, जो कोई व्यक्ति स्वीकृत नियमों का उल्लंघन करके जनता के भंडार से किसी वस्तु को ले लेता है, उसको 'चोर' कहा जाता है। लोभ को ऐसे समाज में भी जीतना चाहिये। कैबेट (Cabet) के इकैरस (Ecarus) सम्बन्धी समाज में भी यह पता चला था कि कुछ लोग कारखाने और शस्त्रागार से भिन्न २ वस्तुयें अपने बच्चों को देने के लिये चुरा ले जाया करते थे। दूसरे व्यक्ति शराब की बोतलों को चुरा लेते थे। मनुष्य के आत्मा में से लोभ का निर्मूल करना वास्तव में अत्यन्त कठिन है।

जुवा खेलना

न्यायप्रियता आपको शिक्षा देगी कि जुवा खेलना भी समाज विरोधी कार्य है। इसका मूल भी लोभ और उत्तेजना के प्रेम में है। वर्तमान प्रणाली में केवल जुए के द्वारा ही निर्धन लोग धनी बन सकते हैं। हारते इसमें लाखों बार हैं, किंतु लाखों में से एक बार तो जीतते हैं। एक निर्धन कन्या ने एक लाटरी के टिकट को लाने पर कहा था, "यह साढ़े तीन रुपये का है।" धनी

लोगों में से भी जुवा पूर्णतया दूर नहीं होता। किन्तु आप व्यक्तिगत रूप से कभी जुवा न खेलने का निश्चय कर सकते हो। लाटरियों, शर्त लगाने, जुए में पांसा फेंकने, बराबर की बाजी लगाने और घुड़दौड़ के दांव आदि आदि के सभी कार्यों को रोकने का यत्न करना चाहिये। इंगलैंड और चीन में जुवा एक भयंकर आतंक बन गया है। प्रोफेसर एच० ए० गाइल्स (H. A. Giles) लिखते हैं, "जुवा चीन की एक विशेषता बन गया है। रोटी मोल लेने वाला बालक भी दुकानदार के पास जाकर प्रायः शर्त लगाता है कि या तो उसको एक की दो मिलें या कुछ न मिले।......... इस वास्तविक राष्ट्रीय दोष से अनेक घर बर्बाद हो चुके हैं और अनेक व्यक्तियों पर आपत्ति आ चुकी है।" जुआ मन में लोभ और निराशा के मिश्रित भाव को उत्पन्न करता है, जुवारी सदा ही उस अतुल सम्पत्ति का ध्यान करता रहता है जो उसे कभी नही मिलती। श्रमिक लोग अपनी निर्धनता और असमानता को दूर करने के लिये मार्गच्युत हो जाते हैं। वह आकस्मिक समृद्धि के गुलाबीस्वप्नों से कष्टपाते रहते हैं। यदि वह श्रमिक आन्दोलन का नेतृत्व करने लगते हैं तो वह जुवे के कारण अपने हृदय में बढ़े हुए लोभ का प्रदर्शन करते हैं। असफल जुवारी प्रतिवर्ष बढ़ने वाली धनलिप्सा को शान्त करने के लिये आन्दोलन को ही नष्ट भ्रष्ट कर देता है। जुवा बहुत हानिकारक कार्य है, इसको सभी सच्चे व्यक्तियों को चाहे वह निर्धन भी हों तो छोड़ देना चाहिए, इस मूर्खतापूर्ण पद्धति

से इन्द्रधनुष का कोना खोजने को मत भागो, समाजवाद की विजय पर हम सब एक साथ ही धनी बन जावेंगे।

आपका दैनिक कार्य

यदि आप लोभ ग्रस्त नहीं हैं, तो आप अपनी आजीविका और सामाजिक सेवा के साधन स्वरूप अपने मन को अनुकूल किसी भी व्यवसाय अथवा व्यापार को-उससे अधिक धन न कमा सकने पर भी पसंद करेंगे। आपका दैनिक कार्य केवल धनोपार्जन की चाकरी रूप नहीं है, यह आपकी सामाजिक और व्यक्तिगत उन्नति में अपना भाग है। जिस स्त्री पुरुष को केवल धन के लिये अपनी रुचि के विरुद्ध कार्य करना पड़ता है, उसका भाग्य कैसा बुरा होता है। मेरा एक ऐसा नवयुवक प्रोफ़ेसर से परिचय है, जो साहित्य से अत्याधिक प्रेम करता था और उसको बहुत सुन्दर ढङ्ग से पढ़ता था किन्तु, जिसको अपना वेतन कम होने से केवल अपनी आय बढ़ाने के लिये वकील बनना पड़ा था। उस व्यक्ति ने वास्तव में एक अपराध किया। वकील के रूप में वह कभी प्रसन्न न हो सकेगा; भले ही उसको कुछ अधिक सुविधायें, भोजन, वस्त्र और मकान के सम्बन्ध में मिल जावें। होश सम्भालते ही बेला बजाने वाला संगीतज्ञ समृद्धिशाली व्यापारी, अथवा दलाल के रूप में कभी भी व्यक्तिगत और सामाजिक तौर पर उपयोगी नहीं हो सकता, क्योंकि वह सदा ही अपने बेले (वायलन) से पृथक रहेगा। लोभ व्यक्तियों को रुचि के विरुद्ध व्यवसायों में लगा देता है। वर्तमान् समय में, सभी

वर्ग के अनेक धनी और निर्धन व्यक्ति इसलिये दुःखी और अशान्त हैं कि उनके दैनिक कार्य रुचिपूर्ण नहीं हैं। उनके व्यवसाय उनके व्यक्तित्व को उत्पादक मनोविनोद नहीं देते, अतएव यौवन में यह कभी मत सोचो। "अधिक बड़ा वेतन किस प्रकार लिया जावे ?" "वरन् यही सोचो, 'मैं किस प्रकार वास्तव में सुखी समाज की सेवा कर सकता हूं ?" तब आपको धन भले ही कम मिले, आपको जीवन और प्रसन्नता अधिक प्राप्त होगी।

अन्तकरण की पुकार

यदि आपने लोभ और आनन्दवाद को पूर्णतया जीत लिया हो तो आप अपने पूरे समय को किसी उन्नति शील आन्दोलन में उससे पुरस्कार के रूप में केवल भोजन, वस्त्र और मकान लेकर ही—दे सकते हो। उस समय आपको पारिश्रमिक अथवा वेतन नहीं मिलेगा, वरन् आपको कार्यकारी सेवा का एक अत्यंत साधारण जीवन व्यतीत करना होगा। उस समय आप एक व्याख्याता, लेखक अथवा संगठन करने वाले के रूप में कार्य कर सकते हैं। उस समय आप अन्य स्त्री पुरुषों की रुचि के भोग विलासों अथवा धन कमाने के विषय में विचार नहीं करेंगे। आपका उद्देश्य केवल आत्मोन्नति और सामाजिक सेवा होगा। यदि आपके अन्तकरण में इस प्रकार की प्रेरणा होती हो तो आपको यथासम्भव अधिक से अधिक समय तक प्रेम और विवाह से बचना चाहिये। आप स्पाइनोज़ा, मैज़िनी, लौज़, माइकेल और स्पेंसर के समान अविवाहित रह सकते हैं।

अथवा आप जार्ज फ़ाक्स और एलसा ब्रैंडस्ट्रम के समान देर से विवाह कर सकते हैं। आप अधिक मानसिक चिन्ताओं से बचने के लिये, और संस्था पर अपना व्यय भार कम डालने के लिये या तो बिना बच्चों वाला विवाहित जीवन अथवा एक बच्चे वाला जीवन पसंद करोगे। यदि आप विवाह करो तो अपने पति अथवा पत्नी रूप में बुद्धिवाद के समान सम्मति वाले साथी को खोजो, न कि साधारणतया लोभी स्त्री अथवा पुरुष को। इस प्रकार आप वर्तमान बुद्धिवाद के प्राचीन सम्प्रदायों और सिद्धान्तों के सभी बड़े २ दार्शनिकों और सन्तों की परम्परा को पूर्ण करके उस मार्ग को आगे चलावेंगे।

हत्या

न्याय प्रियता से आप प्रत्येक पुरुष के जीवित रहने के अधिकार को स्वीकार करेंगे। जीवित रहना प्रत्येक मनुष्य, स्त्री और बच्चे का प्राथमिक और अत्यन्त मौलिक अधिकार है। सभी धर्मों और नीतिशास्त्रों में हत्या करने का निषेध किया गया है किन्तु यह बात खेद पूर्वक कहनी पड़ती है कि अब भी प्रतिवर्ष यदि सहस्त्रों की नहीं, तो सैकड़ों की हत्या की जाती है। युद्ध में तो यह संख्या लाखों तक पहुंच जाती है। कुछ देशों में अभी तक द्वन्द्व युद्धों (Duel) की प्रथा प्रचलित है। कुछ जातियों में खुले तौर से और कुछ में गुप्त रूप से बालहत्या की जाती हैं। प्रेम की प्रतिद्वन्दिता और ईष्या के कारण भी अनेक हत्याएं होती हैं। जिन देशों में मद्य अधिक पी जाती है और

कला तथा साहित्य से कामुकता की कल्पना को बढ़ाया जाता है, वहां तो ऐसी हत्याएं और भी अधिक होती हैं। लोभ पूंजी के अत्याचार से पीड़ित निर्धन अथवा लोभी हत्यारे के हाथ में शस्त्र पकड़ाता है। किसी समय हड़ताल करने वाले मजदूरों और निःशस्त्र आन्दोलकों की पुलिस और सेना हत्या कर देती है। भागने का उद्योग करने वाले कैदियों को कुछ परिस्थितियों में गोली मारदी जाती है। अत्यंत असभ्य जातियों में मनुष्य के मांस को खाने तया भेंट चढ़ाने के लिये भी हत्या की जाती है। अनेक सरकार भी हत्यारों को हत्या देती है. इस हत्या को कानून के नाम पर 'न्याय' और 'दण्ड' कहा जाता है। किन्तु कुछ उन्नत राष्ट्रों ने इस बर्बरतापूर्ण पद्धति को बन्द कर दिया है। कुछ मोटर चालक अपनी असावधानता से राहगीरों की हत्या कर देते हैं। कुछ मजदूर कारखानों की दुर्घटनाओं से मर जाते हैं। यह दुरर्घटनाएं पूंजीपतियों के लोभ से होती हैं। अनेक देशों में जाति अथवा 'धर्म' सम्बन्धी विद्रोह में अनेक हत्याएं हो जाती हैं। फासिस्टवाद अपने कुछ राजनीतिक विरोधियों को प्रगट अथवा गुप्त रूप से हत्या कर देता है। साम्राज्यवाद हत्याओं को प्रोत्साहित करता और फिर उन हत्याओं का प्रतिफल देता है पूंजीवाद थोड़ी २ भूख और अकालमृत्यु से लाखों व्यक्तियों की हत्या करता हैं।

इस प्रकार आजकल शांति और युद्ध दोनों में ही स्त्री, पुरुष और बच्चों की हत्या की जाती है। किंतु क्या आप शपथ करते

हैं कि आप किसी प्रकार की भी हत्या में भाग न लेंगे ? प्राण सभी ले सकते हैं, किंतु दे कोई नहीं सकता।

पशु

पशु के साथ व्यवहार में भी सामाजिकता प्रगट करनी चाहिये। पशु भी जीवित प्राणी है, उनमें से कुछ तो मनुष्य से प्रेम और भक्ति करने योग्य हैं। अनेक आपस में प्रेम करते हैं। मनुष्य ने बनो को साफ करने के लिये सभ्य युग की आदि में अनेक पशुओं को मार डाला। इसी निर्दय और अनिवार्य प्रणाली का नये २ उपनिवेशों को बसाने में आज भी अनुसरण किया जाता है। चीतों, तेंदुओं, भेड़ियों, शार्क मछलियों, तथा सर्पों जैसे कुछ ऐसे भी दुःखदायी विषैले और निर्दय पशु होते हैं जो हमको मार डालते हैं, हमको भी उनको मार डालना चाहिये। पृथ्वी के ऊपर अनेक अस्तित्व का उत्तरदायित्व हम पर नहीं है। उनको न पालतू बनाया जा सकता है, न उनसे काम लिया जा सकता है। इटली के ग्यूबिओ (Gubbio) नगर में केवल एक ही भेड़िया था, और उसको भी मार डाला गया। चूहे, मक्खियां, बर्र, टिड्डियां, श्वेत चीटियां तथा अन्य प्राणी हमारी सम्पत्ति को नष्ट करते तथा रोगों को उत्पन्न करते हैं; उनको नष्ट कर देना चाहिये। हम इन सब भूखों के दल को भोजन नहीं दे सकते। ज़ोरोस्टर अपने सभी शिष्यों को इस प्रकार के प्राणियों को निकालनेकी शिक्षा दिया करता था, आपको भी उसकी शिक्षा के अनुसार आचरण करना चाहिये।

किंतु मनुष्य की सेवा करने वाले सभी पशुओं के साथ अत्यंत कृपा और सहानुभूति पूर्ण व्यवहार करना चाहिये। वह आपके सहायक और साथी हैं। सभ्यता के निर्माण में उन्होंने भी भाग लिया है। उनको खूब चारा दो; उन पर अधिक बोझा मत डालो; बीमार होने पर उनको औषधि और आराम दो; कभी २ उनको वैसे भी आराम दे दिया करो; सर्दियों में उनको गरम कम्बल से ढक दिया करो; कभी २ उनसे प्रेमपूर्वक बोला करो। न समझ सकने पर भी वह प्रेम के शब्दों को अनुभव करते हैं। गौ, गधा, गड़रिये का कुत्ता, घोड़ा, ऊंट, बैल, हाथी, ग्वाले का कुत्ता, खच्चर, तिब्बत का याक नामक ऊन वाला बैल तथा अन्य पालतू पशु परिश्रम करने वाले नम्र और निःसहाय साथी हैं। उनके अधिकारों को नहीं छीनना चाहिये। इस बात को ध्यान में रखना चाहिये कि वह न तो चोट कर सकते हैं, और न आपके कष्टों के प्रतिकार के लिये आन्दोलन ही कर सकते हैं। किंतु कुत्तों, बिल्लियों, तोतों तथा अन्य पशुओं को व्यर्थ में ही मत पालो। बहुमूल्य मानवी प्रेम को इस प्रकार के व्यर्थ चिपटने वालों में मत बखेरो। आपके पालने योग्य संसार में अनेक सुन्दर बच्चे हैं। पूंजीवादी समाज की स्त्रियां बहुत बड़ी संख्या में कुत्तों को पालती हैं। वह किस काम आते हैं? उनके बिस्कुटों, घरों और अस्पतालों पर बहुत अधिक धन और समय नष्ट होता है। एक राजा ने अपने कुत्तों के लिये महल भी बनवाया है। कुत्तों को पालने की इस मूर्खतापूर्ण

पद्धति को बंद कर देना चाहिये। किसी पशु को नहीं पालना चाहिये। हमको केवल मनुष्य के बच्चों को ही पालना चाहिये। पशुओं का हमारे साथ काम करने वालों के रूप में ही स्वागत किया जा सकता है।

पशुओं के प्रति सभी प्रकार की निर्दयता को छोड़ देना चाहिये। बारहसिंघे के शिकार, लोमड़ी के शिकार, घुड़-दौड़, सफ़ेद कुत्तों की दौड़, बैलों के युद्ध, कौवों के युद्ध, और बुलबुलों के युद्ध जैसे खेलों में भाग मत लो। इससे निर्दयता की मात्रा बढ़ती और भाईचारे की घटती है। ऐबीसीनिया वालों के समान जीवित गाय या बैल के माँस को मत काटो। निर्दयता तथा अत्याचार पूर्ण ढंग से प्राप्त किये बालों और रोवें को मत मोल लो। घोंघा मछली अथवा किसी अन्य प्राणी को जीवित ही मत पकाओ। उनको कच्चा और जीवित ही मत खाओ। उन प्राणियों (जैसे बिल्ली) के सर्कस में खेलों को प्रोत्साहित मत करो क्यों कि वह निर्दयतापूर्ण अत्याचारों के बिना शिक्षा नहीं पा सकते। केवल खेल के लिये ही पक्षियों और कीड़ोंको मत मारो। निर्दय बनना कोई खेल नहीं है। किसी समय भी, किसी काम करते हुए पशु (घोड़े, गधे, अथवा अन्य किसी) के कोड़ा मत मारो। कोड़ा सदा ही मनुष्यता से गिरने का चिन्ह होता है। वृद्धावस्था में उनको भूखा मत रक्खो; या तो उनको खूब भोजन दो अथवा निर्दय होकर मार डालो। ग्रीष्म ऋतु में उनको सड़क के किनारे पानी की टंकी के पास बारबार रोक दिया करो।

त्यौहार के दिन जिस प्रकार आप अपने होली दिवाली के त्यौहार को मनाते हो, उनको भी गाजर, सेव, तथा अन्य उत्तम वस्तुएं दे दिया करो। आप सदा ही कृपा विचारशीलता और और अन्य मानवी भावों से ओतप्रोत रहा करो।

शाकाहार और मांसाहार के प्रश्न पर भी आपको एकदम अति तक न पहुँच जाना चाहिये। यदि आप मछली, मुर्गी अथवा मांस के बिना अपने स्वास्थ्य और बल को बनाये रख सकते हैं तो आपको निश्चय से ही शाकाहारी बनना चाहिये। किन्तु यह सन्दिग्ध है कि संसार के लाखों और करोड़ों मनुष्यों को बिना मांस के सस्ता और उपयुक्त भोजन मिल सकता है। ब्रह्म देश के बौद्ध तक मछली खाते हैं; यद्यपि वह मुर्गी और मांस नहीं खाते, मछली को तो जल-तुरई कहा जाता है। यदि आप दूध और घी खाते हो तो आपको अवश्य ही इस कठिन प्रश्न का उत्तर देना चहिये, "बुड्ढी गौओं और छोटे २ बछड़ों का क्या होगा ?" बादाम, अखरोट आदि मेवाओं की चिकनाई की अपेक्षा किसी प्रकारके भी पशुकी चिकनाई शारीरिक तथा मानसिक उन्नति के लिये कहीं अधिक उपयोगी होती है। सहस्रों व्यक्ति अण्डे और दूध खाते हैं, किन्तु उनका स्वास्थ्य शाकाहारियों जैसा अच्छा नहीं होता। सब से अच्छा तो यही है कि यूनानी कैथो-लिक सम्प्रदाय की शिक्षा के अनुसार पशुओं से मिलने वाले किसी प्रकार के भी आहार को न लिया जावे। स्वास्थ्य विज्ञान के दृष्टिकोण से मांस की अपेक्षा मछली और मुर्ग़ कम हानिप्रद

होते हैं। बैल और भेड़ों जैसे स्तनपोषित प्राणियों को मारने की अपेक्षा उनके मारने में हमारे हृद्गत भावों पर कम चोट लगती है। कोई पशु मनुष्य के विकाश के जितना ही समीप होगा, उसको उतना ही उसका अधिक ध्यान होता है, मानवी मनोविज्ञान का यह स्वाभाविक नियम है। इसके अतिरिक्त भोजन कार्यों में स्तनपोषित प्राणियों का उपयोग करने से नगर में कसाईखाना बनाना पड़ता हैं। कसाईखाना नगर में अत्यन्त बर्बरतापूर्ण और अनैतिक संस्था होती है। यह बड़ी भद्दी बात है कि बच्चे कठघरे में बन्द पशुओं को कसाईख़ाने में ले जाये जाते हुए देखें। कसाईख़ाने के नौकर भी निर्दय हो जाते और मनुष्योचित उत्तम भावनाओं से गिर जाते हैं। इस विषय में जी० लैन्सबरी ने अपने जीवन-चरित्र में लिखा है, "(आस्ट्रेलिया में) भाग्य सौभाग्यवश मुझको कसाईख़ाने में एक काम मिल गया। यहां मैं कसाईख़ाने से मरे हुए पशुओं के शवों की गाडी को नगर में ले जाया करता था। .... वहां के सभी कर्मचारी अत्यन्त निर्दय थे, मैं समझता हूं कि जिस प्रकार वह भेड़ों और बैलों के शरीर को काटते थे उसी प्रकार वह एक दूसरे के शरीर को भी अवश्य काट सकते थे। वास्तव में उनमें कुछ भी दया भाव नहीं था।" यदि पशुओं के लिये न सही तो हमारे ही ऊपर ख़याल करके कसाईख़ानां को तुरन्त सदा के लिये बन्द कर देना चाहिये। "दयापूर्ण बध" की कई २ विधियां निकाली गई हैं। किन्तु यह संस्था अपने मौलिक रूप में ही

ग़लत और आक्षेप योग्य है। कसाई का व्यवसाय भी कोई उत्तम व्यवसाय नहीं है, उसकी दूकान भी फल वाले की दूकान की अपेक्षा कहीं कम आकर्षक होती है। यह भी कहा जाता है कि शाकाहार मछलियों की अपेक्षा कहीं सस्ता होता है; परन्तु घी, अण्डों, बादामों और मांस का मूल्य भिन्न २ देशों में भिन्न २ प्रकार का हो सकता है। शाकाहारियों को मुख्य रूप से स्वास्थ्य-विज्ञान और नीति-शास्त्र की युक्तियों पर निर्भर रहना चाहिये। वह युक्तियां वास्तव में ही अत्यन्त प्रबल और विश्वास कराने वाली हैं। यह अवश्य है कि वह पूर्णतया अथवा समस्त विश्व पर लागू नहीं हो सकतीं।

आप पूर्ण शाकाहारी अथवा अर्द्ध शाकाहारी हो सकते हैं, आप चाहे केवल मछली और मुर्ग़ खावें या आप सब प्रकार के मांस खावें, किन्तु इनमें सब से अन्त की आदत सब से बुरी है। दूसरी और तीसरी प्रायः मनुष्यों के लिये सुगम और व्यवहारिक है।

यहां आपको एक चेतावनी भी दे देनी चाहिये। भोजन में शाकाहार ही बड़ा भारी गुण नहीं है, वरन् सरलता और नशा न पीना भी बड़ा गुण है। शाकाहार की नैतिक विशेषता के विषय में अतिशयोक्ति से काम मत लो, इसका क्षेत्र वास्तव में बहुत छोटा है। खाने और पीने पर अत्यधिक व्यय करने वाले पेटू शाकाहारी की अपेक्षा भोजन में सरल और संयमी मांसाहारी कहीं अधिक अच्छा होता है। तालू के होटलों में रहने वाले

धनी स्वेच्छाचारियों के शाकाहारियों का कोई नैतिक मूल्य नहीं है। उनका दूसरे के ऊपर पड़ने का स्वार्थीपने का कार्य इतना भयङ्कर पाप है कि उनके शाकाहार का छोटा सा गुण उसमें पूर्णतया खोया जाता है। वह पशुओं के प्रति न्याय और दया प्रदर्शित करने का यत्न करते हैं किन्तु वह स्त्री और पुरुषों के लिये अन्यायी और निर्दय हैं। वह उत्तम स्वास्थ्य के लिये शाकाहार करते हों, किन्तु वह उच्च आचरण वाले होने का अभिमान नहीं कर सकते। गणित के रूप में बात करने से हमारे नीति शास्त्र के ९८ प्रतिशतक का सम्बन्ध हमारे अन्य स्त्री पुरुषों के साथ सम्बन्ध पर निर्भर है, और उसको केवल दो प्रतिशतक ही उसके पशुओं के साथ व्यवहार के लिये दिया जा सकता है, यह अंक किसी परीक्षा में भिन्न २ विषयों पर दिये हुए अङ्कों के समान है। यदि आप आचरण-शास्त्र के पशु-विभाग के पूरे अङ्क (केवल दो) ले लोगे और मानवी विभाग में कम से कम अङ्क नहीं ले पाते, तो आप परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो जाओगे। भारत-वर्ष के कुछ शाकाहारी अत्यन्य निर्दय, सूदखोर और रक्त के प्यासे होते हैं। यदि आप न्याय और भाईचारे के सामाजिक गुणों को पहिले प्राप्त कर लेंगे तो उस समय आपका शाकाहार और आपकी पशुओं के प्रति दया आपके व्यक्तित्व का आभरण हो जावेगी। किन्तु लोभी, बदला लेने वाला, धनी, क्रोधी अथवा अहङ्कारी शाकाहारी और पशुओं पर दया करने वाले केवल बजने वाली पीतल और बोलने वाले मंजीरे के समान ही

होते हैं। वह उन आधुनिक ईरानियों के समान होते हैं, जो बहुत छोटे गुण के विषय में बड़ी भारी शेखी मारते हैं, जब कि उनमें मनुष्यता के विशेष सामाजिक गुणों का अभाव होता है।

आप चाहे जैसा भोजन करें इस विषय को अत्यन्त अधिक महत्त्व न दें। पहिले उच्चकोटि की नैतिकता को प्राप्त करो और फिर आप समय पर उसके निम्न विभागों में भी अपने को पूर्ण कर सकते हैं।

———

द्वितीय अध्याय

व्यक्तिगत सेवा

सभी स्त्री पुरुषों को अपने कुछ समय और शक्ति को व्यक्तिगत सेवा में व्यतीत करना चाहिये। जिन अभागे भाई, बहनों को प्रकृति अथवा समाज ने हमारे द्वारा उपभोग की जाने वाली सब सुविधाओं का आनन्द लेने योग्य नहीं रखा, उन सब का हम में से प्रत्येक पर एक ऋण है। उस ऋण के लिये केवल धन देना ही पर्याप्त नहीं है। आपको अपने आपका समय का और अपने कार्य का समर्पण करना चाहिये। व्यक्तिगत सेवा नैतिक उन्नत्ति में प्रथम पग है, क्योंकि यह आपको निःस्वार्थता की शिक्षा देती है। वास्तव में निःस्वार्थता ही सब गुणों का मूल है।

आप जहां कहीं भी रहते हों यह दया योग्य प्राणी आपको सुगमता से मिल सकते हैं। खेद है, यह सभी स्थानों में मिलते

हैं। इस व्यक्तिगत सेवा से बचने के लिए कोई बहाना नहीं बतलाया जा सकता। इस कर्तव्य पालन करने के सभी को अनेक अवसर मिलते हैं। प्रेम करने वालों और पीड़ितों के मार्ग में बुरे कानूनों और संस्थाओं को बाधा नहीं देनी चाहिये, व्यक्ति की व्यक्तिगत सेवा सभी वर्गों, राज्यों, राष्ट्रों और धर्मों के कृत्रिम बन्धनों को तोड़देती है, यह एक भाई से दूसरे भाई तक और एक बहिन से दूसरी बहिन तक स्वयं ही अपना मार्ग बना लेती है। यह साम्राज्यवाद और प्रजातन्त्र शासन प्रणाली जमींदारी प्रथा और पूंजीवाद में सोवियट रूस और धनिक वर्ग के शासन वाले अमरीका सभी में अपने मार्ग को आप ही बना लेती है, यह मुसलमानों और इसाइयों, बौद्धों और हिन्दुओं, आदिम पशु आदि के पूजकों और स्वतन्त्र विचारकों में घाव को भर सकती और आशीर्वाद दे सकती है। जहां कहीं भी कष्ट है, वहीं सेवा की आवश्यकता है। इस प्रकार की सेवा करने वाले और सेवा लेने वाले, दोनों को ही आशीर्वाद देती है। यह कानूनों और संगठनों, संस्थाओं और शासनप्रणालियों की प्रतीक्षा नहीं करती, यह स्वतन्त्र, सीधी जाने वाली, तत्काल कार्य करने वाली और दया के पंख लगाकर उड़ने वाली है। यह राजनीति और कानून की टेढ़ी मेढ़ी भूलभुलैयां में से रेंग और फिसलकर नहीं जाती। यह उच्चकोटि के स्त्री, पुरुषों के हृदयों में से अपने प्रकाशित रूप में ताजी ही निकलती है। यह बकने वाली पार्लमेंटरों और मुरझाने वाली नौकरशाही शासन प्रणा-

लियों के बीच के मन्दे और अनिश्चित मार्ग में से नहीं आती, यह मिलने और बिछुड़ने वालों को नहीं जानती, यह स्त्री, पुरुष और बच्चों को अपने पीड़ित सहयोगियों के रूप में सहायता करती और धैर्य देती है, न कि अपने देशवासियों, सहधर्मियों और क्रान्ति में सहकारियों के रूप में। यह केवल एक वन्धन, मनुष्य जाति को जानती है, यह केवल एक उद्देश्य, प्रेम का ही सम्मान करती है, यह केवल कष्ट पीड़ितों के एक शब्द को ही सुनती हैं।

व्यक्तिगत सेवा सदा ही अपने परिणाम में आन्तरिक और एक स्थान में परिमित होती है, क्योंकि कष्टों का एक बड़ा भाग उत्तम आर्थिक और राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना से ही दूर किया जा सकता है। व्यक्तिगत सेवा हमारे आस पास के सभी दोषों और दुःखों को दूर कर सकती है। उसका अपना ही सीमित क्षेत्र होता है, जब कि अर्थशास्त्र और राजनीति का अपना शक्तिशाली मार्ग प्रथक होता है। व्यक्तिगत सेवा आज के विषय में यहां तक कि इस घंटे और मिनट के विषय में अनुभव करती और काम करती है, जब अर्थशास्त्र और राजनीति कल और यहां तक कि अगले वर्ष, अगली शताब्दी और अगले सहस्र बर्ष तक की बात सोचती और अनुभव करती है। किन्तु हमको प्रत्येक के लिए व्यक्तिगत सेवा यहां अब और सब कहीं शीघ्र प्राप्त हो सकती है, जब कि अर्थशास्त्र और राजनीति को बहुत प्रतीक्षा करनी पड़ती है। उनकी प्रतीक्षा से हृदय दुखने

लगता है, बस प्रतीक्षा किये जाओ। प्रतीक्षा करने का समय कोई नहीं हुआ करता। जब आप सड़क के किनारे पर किसी निर्धन अपाहिज को कहीं पड़े हुए देखते हो तो आप उसको दिन भर की रोटी के लिये कुछ पैसे दे देते हो। किन्तु जब आपका उन्नतिशील राजनीतिक दल अनेक वर्षों के पश्चात इस प्रकार के कष्ट पीड़ितों के लिये अस्पताल और मुहताजखाने खुलवावेगा तो उस अपाहिज का कहीं पता भी न होगा। राजनीति में सदा ही समय लगता है, जिसको व्यक्तिगत सहायता से किसी सीमा तक जीतना चाहिये। विज्ञान और राजनीति एक दिन पृथ्वी पर से अंधेपन और बहिरेपन को नष्ट कर देगी, किन्तु इस बीच में आपको अपने समय के अंधों और बहिरों को जीवन व्यतीत करने में सहायता देनी चाहिये। जिस समय विज्ञान धीरे २ शुद्ध करने और धीरे २ छानने वाली प्रयोगशालाओं से अन्धे और वहरे पन से रहित पूर्णतया स्वतन्त्र और पूर्ण संसार निकलेगा तो आप, मैं और हमारे समय के सभी अंधे और बहिरे मर चुकेंगे। सच्चा प्रेम आज के कष्टों और कल के स्वप्न-राज्य के सुदूरवर्ती स्वर्ण युग दोनों के लिये उद्योग करता है।

अर्थशास्त्र और राजनीति की विजय प्रायः अस्थायी और अनिश्चित होती है, जब कि व्यक्तिगत सेवा अपनी इच्छानुसार प्रतिक्षण विजय प्राप्त करती है। प्राचीन काल में पशुबल के द्वारा अनेक उत्तम संस्थायें और शासनप्रणालियां पूर्णतया नष्ट कर दी

गईं। एक सभ्य राज्य कष्टों को कम करने लिये भिन्न २ प्रकार के मिश्रित नियम बना सकता है, किन्तु अचानक ही हूण लोगों के आक्रमण, ट्यूटोन लोगों का झंझावात, अथवा मुग़लों की चढ़ाई का भूकम्प आ जाता है। तब वह रोम और बग़दाद के बुद्धिमत्तापूर्ण नियम कहां जाते हैं। वह सब मरुभूमि की वायु में धुएं के समान उड़ जाते हैं। और तब क्या होता है? कई शताब्दियों तक राजनीतिक बुद्धि कुण्ठित और निश्चल हो जाती है और शक्ति तथा धोखा राज्य पर शासन करते हैं। तब उन निर्बल और असहाय पीड़ितों की रक्षा करने कौन आवेगा? कानून और राजनीति निश्चय से ही नहीं आवेंगे। उस अन्धकारपूर्ण युग में केवल प्रेम ही, जैसा कि व्यक्तिगत सेवा में प्रगट होता है, समाज को निराशावाद और अहङ्कार में पूर्णतया नष्ट होने से बचा सकता है। जिस समय राज्य अस्पतालों की स्थापना नहीं कर सकता था तो सेण्ट बेसिल और उसके शिष्यों ने उनका व्यक्तिगत सेवा के जादू से निर्माण किया। जिस समय 'सरकार' केवल सौन्दर्य, सुरा और शस्त्र-प्रयोग (युद्ध) को ही जानती थी, तो सेन्ट बेनीडिक्ट और उसके अनुयायी जनता के लिये यूरोप भर में स्कूलों और दान-ग्रहों की स्थापना कर रहे थे। यह सब कुछ हो चुका है, और फिर भी हो सकता है। सभ्य राज्य बहुत समय तक निर्बल और क्षणिक संस्थाएं बने रहेंगे, प्रजातन्त्र वर्गों और जनता, बर्बरता और सभ्यता के चिरकालीन युद्धों में विजय प्राप्त करेगा और

फिर जीतेगा। जिस समय पशुबल अच्छे नियमों और संस्थाओं को नष्ट कर देता है उस समय अच्छे २ स्त्री पुरुषों को पीड़ितों की सहायता करने के बोझ को अपने कन्धों पर उठाना चाहिये। कानून और राजनीति हमारी जाति की अनेक रंगों वाली कहानी में अनेक २ बार उठें और गिरेंगे, किन्तु प्रेम और सेवा सदा ही खड़ी और स्थिर रहेगी।

व्यक्तिगत सेवा के बिना कोई जीवन पूर्ण नहीं होता। यदि आप विद्वान् हैं तो आपकी विद्या आपको इस कर्तव्य से उन्मुक्त नहीं करती। यदि आप कलाकार हैं तो आपकी प्रतिभा आपके इस पवित्र उत्तरदायित्व को हल्का नहीं करती। यदि आप राजनीतिज्ञ हो तो आपके राजनीतिक कार्यक्रम और उपाय आपको इस नैतिक कर्तव्य से उन्मुक्त नहीं करते। यदि आप एक कवि, एक व्याख्याता अथवा एक पत्रकार हैं तो आपका विभिन्न 'कारणों' और आन्दोलनों के लिये किया हुआ कार्य इसका बदला नहीं है। मैं आप से भावमय 'कारणों और 'आन्दोलनों' की बात नहीं करता, वरन् जीवित, रक्त डालते हुए, निराश और अत्यन्त निराश स्त्री पुरुषों और बच्चों के सम्बन्ध में बातें कर रहा हूं। यदि आप धनी हो तो आप अपने भूखे अथवा रोगी पड़ौसी से भाग नहीं सकते, और न यह कह सकते हैं कि "ओह ! मैं अनेक अस्पतालों और परमार्थिक संस्थाओं को आर्थिक सहायता दे रहा हूं।" इस प्रकार के 'संरक्षकों' और 'परोपकारियों' को साइमन का निम्न लिखित अभिशाप लगता है, "तेरा धन तेरे

साथ ही नष्ट हो जावे।" यदि आप अपना समय साहित्य में व्यतीत करते हो तो आप अन्धों को उनके अन्धकार में और बहिरों को एकान्त में छोड़ कर यह नहीं कह सकते, "ओह! मैं सभ्यता की उन्नति पर एक आश्चर्यजनक पुस्तक लिख रहा हूँ, सामाजिक बीमे के बिल पर एक विद्वत्तापूर्ण भाषण तयार कर रहा हूं, अथवा दया के आशीर्वाद के ऊपर एक कविता की रचना कर रहा हूँ, मेरी तो यही सेवा है।" यह वास्तव में दान नहीं है, यह तो एक बहाना है। यदि आप एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक हैं, तो आप उन अपाहिजों की उपेक्षा करके उनसे यह नहीं कह सकते, "मैं शरीर विज्ञान, ज्योतिर्विज्ञान और बनस्पति विज्ञान में बड़े २ बहुमूल्य आविष्कार करके मनुष्य जाति की इस प्रकार सेवा कर रहा हूं। मैं शीघ्र ही एक नये प्रकार के कीटाणु अथवा नये तारे का आविष्कार करूंगा।" यदि आप सहस्रों नई नीहारिकाओं का पता लगा भी लो और आप पीड़ितों की व्यक्तिगत सेवा में थोड़ा समय देने से इन्कार कर देते हो तो आपका जीवन अपूर्ण और बिना आशीर्वाद का रहेगा। आप अपने दूरवीक्षण यन्त्र में तारों को देख और सूक्ष्मदर्शक यन्त्र में कीटाणुओं को पकड़ सकते हैं, किन्तु आपको अपने चारों ओर अपने ही नगर और अपने ही मुहल्ले में इन कष्ट से पागल बने हुओं को देखने के लिये किसी दूरवीक्षण यन्त्र और सूक्ष्मदर्शक यन्त्र की आवश्यकता नहीं है। आपका पहिला छोटासा कर्तव्य उनके लिये है, तारों और कीटाणुओं के लिये नहीं। पहिले

अपने भाग की सेवा अपने अभागे पड़ौसियों कीकर दो और फिर अपने विज्ञान, राजनीति और साहित्य के भारी बहुमूल्य कार्य को करना। आप केवल उस प्रकार ही यह सिद्ध कर सकते हैं कि आपके मानवी भाव नष्ट नहीं हुए हैं। उस समय आप पूर्ण विकसित स्त्री और पुरुष के रूप में मनुष्य जाति की सेवा करेंगे, न कि केवल चित्रों, कविताओं, आविष्कारों, सिद्धान्तों, व्याख्यानों, पुस्तकों, कानूनों अथवा शासन पद्धतियों को निर्माण करने के केवल मृतक यन्त्रों के रूप में। कीट्स की यह ठीक ही शिक्षा है कि नैतिक उन्नति गहनतम रूप में अनुभव की हुई सहानुभूति और प्रेम पर ही निर्भर है—

"इस ऊंचाई पर कोई उछल कर नहीं बैठ सकता.....
किन्तु जिनके लिये संसार के दुःख वास्तव में ही
दुःख है, वह उनको ठहरने नहीं देंगे।"

व्यक्तिगत सेवा असमर्थों (अंगभंग वालों), रोगियों और निर्धनों की करनी चाहिये।

१ **असमर्थ**— हम में से प्रत्येक को अंधों, बहिरों, गूंगों बहिरों, अपाहिजों, तथा उन सब की व्यक्तिगत सेवा करनी चाहिये जो अपनी शारीरिक अयोग्यता और निर्बलता से असमर्थ बन गये हैं। वह वास्तव में ही भाग्य के मारे हुये हैं। आप सभी पूर्ण अंगों से युक्त होते हुये इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकते कि यह असमर्थ प्राणी कितना खेद और दुःखपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। पहिले अंधों के

विषय में ही विचार करो । हम सूर्योदय और सूर्यास्त, तारा-मंडलों से युक्त आकाश और फूलों से लदे उपवनों की सुंदरता, चित्रकारी, आलेख्यकला, वास्तुकला के प्रताप, बच्चों के निर्दोष मुख और सुन्दरियों के लावण्य को देख कर प्रसन्न होते हैं, जो हमें आश्चर्य और आनन्द से भर देते हैं । हम हिमालय पर्वत के हिमाच्छादित और धूप में चमकते हुये शिखरों, और ताजमहल को देख कर अत्यंत प्रसन्न होते हैं, जिससे हमारा रोमांच खड़ा हो जाता है । हम अपने मित्रों और उनके छोटे २ बच्चों को प्रेम प्रमुदित आकृतियों को देख कर आनन्द के उद्रेक में भर जाते हैं। हम बादाम की कलियों हरी पत्तियों, कमल के फूलों. और अन्य फूलों का आनन्द लेते हैं । हम स्वीजलैंड लाटर ब्रनेन (Lauterbrunnen) के चांदी के समान शुभवर्ण वाले जलप्रपात को और गॉरनरग्रैट (Gorner-grat) के परिस्तान की सुन्दरता को देखते हैं । हमारी स्मृति उष्ण देशों के आकाश की बिजली की चमक, अथवा चन्द्रमा के कुण्डल, अथवा दुहरे इंद्रधनुष, अथवा फूलों से सजी हुई फुलवाड़ियों और उत्तर को श्वेत शरद् ऋतु की चमकदार परियों के प्रकाश को चाहे जब फिर उपस्थित कर सकती है । हम शनैश्चर के परिमण्डलों के देखने के प्रथम क्षण को अथवा उपवनों के पौदों की सुन्दरता को घर २ स्मरण करते हैं । हमने प्रकृति और मनुष्य जाति के प्रायः सौन्दर्य और मोहक द्रव्यों को देख देख कर उनका आनन्द लिया है ।

हम दृष्टि दोष न होने के कारण उसके अधिकांश भाग को फिर भी देखने की आशा करते हैं । किंतु सौंदर्य के इस समस्त संसार का अस्तित्व अंधों के लिये नहीं हैं । इस विषय में यह नितान्त अभागे हैं। मिल्टन उनके कष्टों का इस प्रकार वर्णन करता है—

"इस प्रकार, प्रतिवर्ष
ऋतुएं आती हैं, किंतु मेरे लिये
दिन, अथवा सुन्दर प्रातःकाल अथवा संध्या;
अथवा वसन्त ऋतु की कलियों का दृश्य, अथवा ग्रीष्म ऋतु का गुलाब
अथवा मनुष्यों की स्वर्गीय आकृतियों के समूह नहीं आते;
किंतु उसके स्थान में बादल और सदा रहने वाला अन्धकार
मुझे घेरे रहता है, मैं मनुष्यों के आमोद प्रमोद पूर्ण क्रीड़ा से सदा ही
पृथक रहता हूं; और ज्ञान की सुन्दर पुस्तक के लिये
प्रकृति के कार्यों की विश्व जनी नवीन उज्वलता अर्पित की गई है,
किंतु मेरे लिये तो वह छिली हुई और मिटी हुई है,
मेरे लिये तो उसके द्वार पर बुद्धि बिल्कुल बंद है ।"

हेनरी फैसेट (Henry Fawcett) ने अपने स्त्री बच्चों का मुख कभी नहीं देखा। आप में से जिनके अपना परिवार है, वह इस बात को जानते हैं कि वह किस वस्तु से वंचित रहा। शिलर (Schiller) इस हृदयवेधी शब्द को आरनोल्ड वॉन मेहचथल के मुख से सदा ही कहलाता रहे—

"मरना कुछ बड़ी बात नहीं है, किंतु जीवित रहते हुये देखने योग्य न होना अत्यन्त खेदपूर्ण है।"

इस प्रकार आप नेत्र वालों का अंधों के लिये एक कर्तव्य है। उनको प्रतिदिन, अथवा प्रति सप्ताह अथवा यहां तक कि प्रति मास में एक बार अपने नेत्र थोड़ी देर के लिए मांगे दे दिया करो। उनको पुस्तक पढ़ कर सुनाया करो, अथवा टहलने को ले जाया करो, अथवा संगीत सुनाया करो, अथवा उनके लिये पत्र लिख दिया करो, अथवा उनको लिखना, पढ़ना या काम करना सिखलाया करो, अथवा उनको भोजन बना दिया करो, अथवा उनके लिये एक प्याला चाय बना दिया करो। अपने नेत्रों से केवल अपना ही काम न लो, उनमें अंधों को भी भाग करो। अंधों के लिये अंधकोष में चंदा देकर ही संतुष्ट न हो जाओ। काम वहां से अवश्य आरम्भ करो; किंतु वहीं मत ठहर जाओ। कम से कम एक अंधे को अपना मित्र बना लो, और उस एक मित्र की सेवा सहायता करने, उसको प्रसन्न करने और साहस देने का उद्योग करो। अंकों और संस्थाओं के विषय में चिंता मत करो। अपने कर्तव्य का पालन उस अकेले ही पीड़ित स्त्री अथवा पुरुष के लिये करदो। इस प्रकार आप दो — अपने और दूसरे के—जीवनों को पूर्णतया साधन सम्पन्न करोगे। बौद्ध कवि शांतिदेव की महान् आकांक्षा को स्मरण रखो, "मैं अंधों के लिये दीपक बन जाऊं।" एक बार मैंने कुछ अंधे श्रमिकों से अपने लिये कुछ सेवा बतलाने को कहा। मुझे उनके

इस उत्तर को सुन कर अत्यंत आश्चर्य हुआ, "कृपा कर के हमको हमारे कारखाने में कुछ रोचक पुस्तकें पढ़ कर सुना दीजिये।"

अन्धे तो कठिनतापूर्ण और अङ्गहीन जीवन को व्यतीत करते ही हैं किन्तु बहिरे किन्हीं बातों में उनसे भी अधिक अभागे हैं। वह वार्तालाप और सामाजिक जीवन से बिल्कुल पृथक होते हैं और प्रायः अपने ही जेलखाने में स्वयं बन्द रहते हैं। कभी २ तो उनकी दूसरे लोग भी उपेक्षा करते हैं, क्योंकि उनसे वार्तालाप करना अत्यन्त कष्टसाध्य होता है। हैरिएट मर्टिनौ (Harriet Martineau) के नरसिंहे से बहुत से मित्र भयभीत हो चुके हैं। बहिरे स्त्री पुरुषों को सामाजिक उत्सवों में चुपचाप अत्याचार सहन करने पड़ते हैं। वह देखते हैं कि उनके आसपास के लोग बातचीत करते और हंसते हैं, किन्तु वह उस वार्तालाप अथवा आमोद प्रमोद में कोई भाग नहीं ले सकते। उनकी यह भयंकर हानि को कौन पूर्ण कर सकता है? आप सोचते हो और कहते हो कि सङ्गीत के बिना जीवन नीरस हो जाता है और उसकी रूक्षता को सहन नहीं किया जा सकता है। असभ्य खानाबदोश भी सङ्गीत का आनन्द लेते और उससे प्रेम करते हैं, किन्तु बहिरा आदमी सङ्गीत का आनन्द कभी भी नहीं ले सकता। उत्तम २ सङ्गीतकारों के स्वरों की तान उनके लिये नहीं है। आपने उत्तम २ सङ्गीतों को सुना है, और आप जब चाहें उसको अपनी स्मृति में उपस्थित कर

सकते हैं। आप उच्चकोटि के सङ्गीत को और भी सुनना चाहते हैं, क्योंकि आप बहिरे नहीं हैं। किन्तु बहिरों के लिये ऐसी कोई आशा नहीं है, वह आनन्द और अनुभूति के उस वर्ष भर रहने वाले साधन से सदा ही वञ्चित रहते हैं, उनका जीवन दुःखपूर्ण और शुष्क है।

आप सुनने वालों का बहिरों के प्रति एक कर्तव्य है। आप उनको शब्द या संगीत नहीं सुना सकते, किन्तु आप उनकी अनेक प्रकार से सेवा कर सकते हो! आप उनके पास जाकर लिखकर अथवा संकेत द्वारा उनसे कौतुहल पूर्ण वार्तालाप कर सकते हो, उनको आप ओठों से पढ़ना सिखा सकते हैं, जिससे आप उनके आत्मिक अकेलेपन को दूर कर सकते हैं। आप उनको उनकी इस त्रुटि को दूर करने के उपाय बतला सकते हो। आप उनके बोझ को अन्य भी अनेक प्रकार से दूर करके उनकी प्रशंसा के पात्र बन सकते हो।

बहिरों की अपेक्षा गूंगे बहिरे और भी अभागे होते हैं। उनकी सेवा करने के ढङ्ग का और उनके लिये कुछ कार्य का पता लगाओ।

लंगड़ों लूलों पर अधिक दया करनी चाहिये। वह न अधिक चल सकते हैं, और न काम ही कर सकते हैं। वह केवल अर्द्धजीवित हैं और अनेक आवश्यक कार्यों और उठने बैठने के कार्यो के लिये दूसरों की सहायता पर निर्भर रहते हैं। जब आप अपनी शक्ति और स्वतंत्रता से टहलते हो तो बेचारे लंगड़े लूलों

को भी स्मरण रक्खो । जब आप लिखने, खाने अथवा काम करने लिये अपने हाथों तथा अन्य अंगों से काम लो तो बेचारे लंगड़ों लूलों को स्मरण रक्खो । इस बात का पता लगाओ कि आप उनकी सेवा किस प्रकार कर सकते हो। संभवतः उनको उठने, बैठने, नीचे जाने, सड़क पार करने, कपड़े पहिनने, अथवा भोजन बनाने में आपकी सहायता की आवश्यकता है। उनको यथाशक्ति अधिक से अधिक सहायता करने का यत्न करो।

२–रोगी हममें अनेक असमर्थ नहीं हैं, किन्तु रोगी हम कई २ बार हो चुके हैं। हमको इस बात का अनुभव है कि रोगी को सहायता और आराम की आवश्यकता होती है। जब कोई पुरुष ज्वर अथवा दर्द से बिस्तर पर पड़ा होता है, तो किसी समय तो वह डाक्टर को सूचना देने अथवा उसके घर जाने योग्य भी नहीं होता । उसके किसी मित्र, सम्बन्धी अथवा धात्री (नर्स) को उसकी सेवा करनी चाहिये, इसके पश्चात् औषधि लाकर निश्चित समय पर देनी पड़ती है। उसके लिये विशेष भोजन और जल तैयार करना पड़ता है, उसका तापमान लेना पड़ता है, उसको स्नान कराना पड़ता है इत्यादि २ किसी न किसी को रोगी के पास रात भर रह कर उस प्रेम के बदले में अपनी नींद का त्याग करना ही चाहिये। रोगी की शारीरिक रक्षा के अतिरिक्त उसके प्रेमी मित्रों अथवा सम्बन्धियों को उससे सहानुभूति अथवा साहस पूर्ण प्रिय वार्तालाप करना चाहिये। और रोगी को

यह प्रगट कर देना चाहिये, कि उससे प्रेम किया जाता है। यह जानकर ही कि हमसे कोई प्रेम करता है, रोग में बहुत कुछ परिवर्तन हो जाता है। आधे से अधिक चिकित्सा प्रेम की और आधे से कम औषधि की होती है। यदि कमरे की वायु में प्रेम और स्नेह के अपूर्व भावों का समावेश होता रहे तो रोगी की स्वस्थ होने की इच्छाशक्ति जाग्रत और प्रबल हो जाती है। जिस अकेले प्राणी के पास ऐसे कष्ट के समय भी कोई नहीं होता उस पर अत्यन्त दया करनी चाहिये। इस कारण हमको अस्पताल में रोगियों को उन वेतन प्राप्त नर्सों के हाथ में पूर्णतया छोड़ देने की निर्दय प्रणाली का प्रबल विरोध करना चाहिये, जिनके लिये रोगी वार्ड में केवल एक संख्या बढ़ाने वाला है, न कि पिता, माता, भाई, बहिन, पुत्र, पुत्री, चाचा, चाची, चचेरा भाई, मित्र अथवा साथी है। यह आवश्यक है कि रोगी को अस्पताल में भेज कर उसको विशेष सेवा के लिये सुशिक्षित नर्सों को रखा जावे। किन्तु किसी सम्बन्धी अथवा मित्र को भी उसके पास उसी प्रकार बराबर रहना चाहिये, जिस प्रकार वह उसकी घर पर चिकित्सा होने में उसके पास रहता। अस्पताल की वैज्ञानिक पूर्णता में घर की प्रेम पूर्ण कृपा को भी मिला देना चाहिये। मुझे स्मरण है, कि एक मित्र को उसके उस मित्र के पास अस्पताल में रात को रहने दिया था, जो वहां कई सप्ताह से चिकित्सा में पड़ा हुआ था। इस सेवा में हम लोग बारी २ से जाते थे। हमारी उपस्थिति ही कम से कम डाक्टर के नुस्खों

और नर्सों के आगमन से कम महत्त्वपूर्ण नहीं थी। धार्मिक रूप से सुशिक्षित नर्सों का कोमल व्यवहार भी घरके प्रेम की समानता नहीं कर सकता। दया की श्वेत वस्त्रों वाली बहिन आपको धैर्य नहीं दे सकती; वह भले ही देवी हो, किन्तु वह आपकी माता पत्नी अथवा बहिन नहीं है। वह आपके लिये व्यक्तिगत प्रेम का अनुभव नहीं कर सकती। आप केवल उसके विश्वजनीन दया और दान के विषय हो, उसकी रूक्ष दया आपको प्रेम के वायुमण्डल से नहीं घेर सकती। रोगावस्था में रोगी के पास उसके सभी प्रेमियों को उसके लिये अत्यन्त गहन व्यक्तिगत प्रेम प्रदर्शित करना चाहिये।

यदि आपके घर अथवा मित्रमण्डली को रोग घेर ले तो यथासम्भव पहिले घरेलू चिकित्सा ही करनी चाहिये। तब आपको स्वस्थ होने के कारण अपने रोगी सन्बन्धी के लिये अपने आराम और नींद को भूल जाना चाहिये। आपको या तो आधी रात तक जाग जाना चाहिये, अथवा रात भर जागना चाहिये। अथवा अपने आमोद प्रमोद और मुलाकात के बचनों को छोड़ना चाहिये, अथवा आपको अपना नियमित भोजन तक छोड़ देना चाहिये, किन्तु यदि आप प्रेम करते हो, तो आपको इस बोझे को उठाना अधिक कठोर नहीं जान पड़ेगा। यदि आप केवल एक मित्र हो और रोगी के कमरे में सेवा नहीं करते, तो रोगी की कुशल समाचार बराबर लेते रहा करो और अपने लिये सेवा पूछ लिया करो। सहानुभूति और सद-

भिलाषा के कृपापूर्ण सन्देश के साथ कुछ फल भेजना न भूलो यदि आप बार २ न जा सको तो बारबार टेलीफोन करना न भूलो, परन्तु आपको इतना व्यस्त कभी नहीं होना चाहिये कि आप अपने रोगी मित्र के पास न जा सको। प्रेम और कर्तव्य सब जगह समय निकाल लेते हैं। रोगी के कुछ अच्छा हो जाने पर आपको अपना समय उसके सहयोग और वार्तालाप में लगाना चाहिये। पूर्णतया अच्छा हो जाने पर आप अपने मित्र अथवा सम्बन्धी को अच्छी सम्मति दे सकते है। आपको उसको स्मरण करना चाहिये कि चिकित्सा से परहेज अधिक अच्छा होता है। आपको यह बतला देना चाहिये कि स्वास्थ्यविज्ञान के नियमों का उल्लंघन करने का दंड ही रोग के रूप में भोगना पड़ता है। अनेक पुरुष अच्छे स्वास्थ्य में इस प्रकार की बातों को नहीं सुना करते, किन्तु रोग को बढ़ जाने पर उनको मित्रों की सम्मत्ति की ही अपेक्षा करनी पड़ती है। उस समय वह अपनी प्रकृति को बदलने और नियमित व्यायाम करने के लिये सहमत हो सकते हैं। यह हो सकता है कि आपकी प्रभावपूर्ण शिक्षा के कारण आपके मित्र पर रोग का आक्रमण होते २ टल जावे। यदि आप रोग में प्रेम और सेवा करें और उसके पश्चात अच्छी सम्मति दे तो आप अपने कर्तव्य का पूरा पालन कर देते हैं।

आप पूछ सकते हैं, कि "यदि हमारे सम्बन्धियों अथवा मित्रों पर इंफ्लूएंजा, राजयक्ष्मा, हैजे अथवा प्लेग जैसे संक्रामक

रोग का आक्रमण हो तो क्या करना चाहिये अथवा नगर अथवा देश में फैले हुए संक्रामक रोग के विषय में क्या करें ?" इस सम्बन्ध में भी आपका कर्तव्य सामान्य रोगों जैसा हीं है इनमें केवल आपको योग्य रूप से सावधान रहना चाहिये। आपके मित्र को साधारण रोग अथवा सांघातिक हैजा है, इसमें कुछ अन्तर नहीं है। आप अपने कुटुम्ब, अपने मित्रों अथवा अपने सहनागरिकों से—यदि उन पर इस प्रकार उड़ने वाले रोग का आक्रमण हो भी गया है तो नहीं भाग सकते। अपने बचने के सब आवश्यक उपाय करलो, किन्तु सन्तरी के समान अपने स्थान पर निश्चलता से डटे रहो। कायरता मत करो। कीटाणुओं की अपेक्षा भय से अधिक लोग मरते हैं। मेरे एक मित्र ने प्लेग पीड़ित अनेक सम्बन्धियों और मित्रों की सेवा की, किन्तु उसको कुछ नहीं हुआ। मध्यकालीन गन्दे नगरों में रह कर रोगियों की सेवा करने वाले रोमनकैथोलिक भूरे साधुओं की बात को स्मरण करो, अठारवीं शताब्दी में यूरोप के फांसी के कैदियों की कोठरियों में जाने वाले जान होवर्ड (John Howard) को स्मरण करो। फादर डैमियन (Father Damien) ने अपना जीवन उन कैदियों को समर्पित कर दिया था, जो उसके जाति भाई अथवा मित्र नहीं थे। दूसरे लोग आज भी इस प्रतापी परम्परा का पालन कर रहे हैं। यह हो सकता है कि प्रेम अथवा कर्तव्य का पालन करते हुए आपको जीवन में एक या दो हि बार मृत्यु का मुक़ाबला करना पड़े, किन्तु

आपको भागना नहीं चाहिए। एक व्यक्ति अथवा जाति के आचरण की सच्ची परीक्षा इसी प्रकार की कठिन परिस्थति में की जाती है। यदि आप भी घबरा गये तो फिर क्या होगा? यदि दूसरे लोग आपके चारों ओर मर रहे हैं तो आप को मरने से नहीं डरना चाहिये। एक दिन हम सब को ही मरना है। सदा कोई भी नहीं जीवेगा। साधुओं और सन्तों के समान शान से मरना और कायरों तथा भागने वालों के समान घृणा से न मरना हमारे ही हाथ में है, मृत्यु से आप अपने को कहां तक छिपाओगे? उससे आप कहां भाग सकते हो?

जब प्रेम और कर्तव्य आपको अपने आपको आपत्ति में डालने की आज्ञा दें तो आपको मृत्यु की ओर जरा और दृढ़ता से देखने का अभ्यास कर लेना चाहिये। यदि आप बचोगे तो सम्मान से जिओगे, किन्तु यदि आप मरोगे तो सम्मान से ही मरोगे और यह भी अच्छा ही है।

३ निर्धन—वर्तमान सामाजिक प्रणाली में अनेक स्त्री पुरुषों और बच्चों को जीवन की आवश्यक वस्तुयें भी नहीं मिलतीं। ऐसे निर्धन सभी देशों में हैं, वह भूख और शीत को सहते हैं। वह चिथड़ों और उतरे हुये वस्त्रों को पहिने रहते हैं, वह टूटे फूटे मकानों और अन्धेरी कोठरियों में रहते हैं। उनको इतने थोड़े में गुजारा करना पड़ता है कि उससे उनकी शारीरिक आवश्यकतायें भी पूर्ण नहीं होतीं। वह सदा आधा

पेट भोजन करते है, उनके मकान अन्धेरे और गन्दे होते हैं। शीत प्रधान देशों में वह अपना शीत निवारण करने योग्य काफी ईंधन अथवा उष्णवस्त्र मोल नहीं ले सकते। बुरे आहार तथा नंगे रहने के कारण असह्य ऋतु में वह मक्खियों के समान मरते हैं। उष्ण देशों में उनके भाग्य कुछ अच्छे होते हैं क्योंकि वहां वह धूप में बैठ सकते और नदियों में स्नान कर सकते हैं। किन्तु निर्धनता सब कहीं भयंकर विपत्ति है। थिओगनिस (Theognis) ने कहा था, "वृद्धावस्था और भयंकर रोगों से भी बड़ी विपत्ति निर्धनता है।" इस प्रकार का अभाव जीवन में से आनन्द और स्वाद को छीन लेता है और अपने शिकारों की जीवन शक्ति और कार्यशक्ति को अत्यन्त कम कर देता है, इस प्रकार के निर्धनों को जीवित नहीं कहा जा सकता वह केवल श्वास लेते और कराहते हैं। बिना भोजन, वस्त्र, और मकान के जीवन बड़ा भारी सन्ताप है। इस प्रकार के अभागे मनुष्यों से तो बहुत से जंगली और पालतू पशु भी अच्छे होते हैं। इस प्रकार के दुखी प्राणी हमको प्रत्येक देश में सड़कों के किनारों पर दुख और लज्जा का अनुभव कराते हैं। चिथड़ों में लदे पैसा अथवा भोजन मांगने वाले अभागे भूखे मनुष्य का दृश्य वास्तव में बड़ा खेदपूर्ण दृश्य है, जो मन में से कई दिनों तक नहीं निकलता।

इस वर्ग के अस्तित्व के अनेक कारण और परिस्थितियां मन में आती है। वह निर्धनता में ही उत्पन्न होते और जन्म भर

बहुत थोड़ी मजदूरी पाते रहते हैं। उनका सम्बन्ध बिना बुद्धि-वाले परिश्रम से है। दूसरे अंधे, बहरे, अथवा लूले असमर्थ हैं, जो काम करना सीख नहीं सकते। कुछ लोग पतित मद्य सेवी और न सुधरने योग्य आलसी हैं। जिनका न तो ठीक शासन किया गया और न जिनको आरम्भ में ठीक सूचनाएं दी गई। कुछ लोग अभागे जुआरे होते हैं, जो सब कुछ जुवे में हार चुके हैं। कुछ अनाथ तथा विधवाएं हैं। जिनकी कोई पर्वाह नहीं करता। कुछ लोग सम्भवतः देशनिर्वासित और रक्षा पाए हुए हैं, जो किसी बड़े विचार का दण्ड पाते हैं। कुछ लोभ प्राकृतिक आपत्ति भूकम्प अथवा बाढ़ पीड़ित होते हैं। यह सब मिल कर ही बिना बुद्धिवाले निर्धन श्रमिक, भिक्षुक, पैदल घूमने वाले. आवारा, सड़क में पड़ने वाले, बाजा बजाकर मांगने वाले, दियासलाई बेचने वाले, तथा राज्य के निर्धन बच्चे होते हैं।

उनकी निर्धनता का कारण कुछ भी क्यों न हो, वह यहां अब और हमारे पास हैं। सीधी व्यक्तिगत सेवा से निर्धनता को पूर्णतया दूर नहीं किया जा सकता। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये नयी २ आर्थिक और राजनीतिक संस्थाओं को खोलना पड़ेगा। निर्धन हमारे साथ सदा न रहेंगे। समय ईसा-मसीह के शीघ्रतापूर्ण बचनों को मिटा देगा। किंतु इस बीच में जीवन की आवश्यक वस्तुओं और आमोद प्रमोद और संभवतः विलासिता तक का उपभोग करने वाले आपका अपने अभागे साथियों और नगर वासियों के प्रति एक कर्तव्य है। आप एक

चतुर कलाकार, एक कारखाने के श्रमिक, एक व्यवसायी, एक व्यापारी अथवा एक पूंजीपति हो सकते हैं, किंतु आप यह सहन नहीं कर करते कि संसार में इतनी अधिक सामग्री और भोजन होते हुये भी स्त्री, पुरुष और बच्चे भूख की ज्वाला से व्याकुल हों और भयंकर शीत सहन करें। इस प्रकार के पीड़ितों के व्यक्तिगत जीवन और कठिनाइयों को सुन कर शोक से आप के आंसू निकलने लगते हैं। आप अपने और अपने परिवार को इस प्रकार के कष्ट में देखना किसी प्रकार सहन नहीं कर सकते। आप एक सामाजिक व्यक्ति हो आपके हृदय में उन दीन प्राणियों के कष्टों के विचार मात्र से दया का स्रोत उमड़ आता है। आपका यह भाव ही दान के रूप में प्रगट होता है। आप जिन निर्धनों को जानते अथवा अचानक मिल जाते हो, उनको थोड़ा पैसा, भोजन और वस्त्र देते हो।

इस प्रकार दया आपको दीनों की विपत्ति में सहायता करने को उद्यत करती है; किन्तु न्याय आपको यह शिक्षा देता है कि आप उतना ही दें, जितना सहन कर सकें। समाज में धन का असमानता के आधार पर बंटवाए अयोग्य और अस्वाभाविक है। सामाजिक श्रम की समस्त उत्पत्ति में सभी को समान भाग मिलना चाहिये। प्रत्येक वस्तु सभी की है। जिस प्रकार आज कल एक परिवार की आयको उसके सभी व्यक्तियों में प्रेम पूर्वक व्यय किया जाता हैं, उसी प्रकार सम्पत्ति के सम्पूर्ण भाग को प्रेम और सामाजिक सेवा की भावना में वांटना चाहिये।

किसी परिवार का पिता यह नहीं करता कि कुछ बच्चों पर खूब व्यय करे और कुछ को भूखा मारे। संसार की समस्त सम्पत्ति संसार में रहने वाले निवासियों की है। अतएव वह अत्यन्त निर्धन भी, जिनको जीवन की आवश्यक वस्तुएं भी नहीं मिलतीं, अपने भाग से अन्यायपूर्वक वंचित किये जाते हैं। उनसे उनके न्याय प्राप्त द्रव्य को छीना जाता है। कुछ धनी लोग धन का अत्यधिक अपव्यय कर रहे हैं और वह इन अत्यचार पीड़ितों को कुछ भी नहीं देते। अतएव यदि आपका सम्बन्ध उच्च कोटि के मध्यमवर्ग से अथवा पूंजीपतियों और जमीदारी के धनिक वर्ग से है तो आप से न्याय के नाम पर उनको उनका योग्य भाग दे देने का अनुरोध किया जाता है। जिनसे आपने धोखे और कपट द्वारा उसको छीना है। आपके पास पर्याप्त से भी अधिक है। सभ्य जीवन की आवश्यक वस्तुएं, आमोद प्रमोद और विषय वासनाएं आपकी आज्ञा पर हैं, जब कि दूसरों को उनकी आवश्यक वस्तुएं भी नहीं मिलतीं। जिस धन को आप अपना कहते हो उसका एक भाग निश्चय से उनका भी है। आपने उसको शक्ति अथवा जालसाजी के द्वारा चुराया है। अतएव आपका यह कर्तव्य है कि आप अपने पड़ौस के निर्धनों को दान, भिक्षा और उपहार के द्वारा उस धन को उसके योग्य मालिकों को दें। दया का तात्कालिक भाव आपको कुछ देने को विचलित करता है; किन्तु जब आपको पता चले कि न्याय दूसरे के धन को तत्काल वापिस कराना चाहता है तो अपने

दान को बड़े परिमाण में बढ़ाते रहो । या तो अपनी अटूट सम्पत्ति को दे देने की शीघ्रता करो, अन्यथा चारों ओर डाकुओं के समान लज्जा और पाप मय जीवन व्यतीत करो । दोनों में से एक को पसंद करलो । स्पेंसर की बुद्धिमत्तापूर्ण उक्ति को स्मरण करो, "भलाई को यदि व्यय न किया जावे तो वह भलाई नहीं है।"

इस प्रकार दया आपको प्रोत्साहित करती, और न्याय आप को निर्धनों को दान देने की शिक्षा देता है । दान दैनिक उन्नति का प्रथम चरण है। यह आचरण शास्त्र की वर्णमाला का 'अ' है । यदि मुझ से कोई पूछे कि उसको नैतिक उन्नति के लिये क्या करना चाहिये, मैं तो यही कहूँगा, "कि अपनी आय (मजदूरी, वेतन, लाभ अथवा बैंक के लाभ के भाग) के एक निश्चित भाग को निर्धनों के लिये प्रथक कर देना चाहिये ।" तब आप आत्मिक सीढ़ी के सबसे नीचे के डण्डे पर खड़े होंगे । अपनी आय को किसी उद्देश्य से कम मत करो । सभी आवश्यक खर्चों के बाद होने वाली बचत में से मत दो । दान का अपने परिवारिक व्यय में प्रथम स्थान रक्खो । इस धन जो एक प्रथक् खाते में रख दो और कैसी ही परिस्थिति आने पर भी इसे मत छुओ। आपने उसको निर्धनों के लिये दे दिया है, उसको वापिस मत लो ।* आपकी आय का कम से कम एक प्रति शतक

*खेद है कि भारतवर्ष में दान की प्रवृत्ति होना तो दूर, यहां लोग दान की रक़म को खा जाते हैं । देहली आदि अनेक स्थानों के व्यापारी

इस स्थायी निर्धन खाते में अवश्य जाना चाहिये, इससे कम नहीं। अपना यह स्वभाव बनालो कि आप अपनी वास्तविक आय ९९ प्रति शतक को ही समझो। निश्चय से ही यह मनो-विज्ञान का कठिन कार्य नहीं है। इस प्रकार आपके पास निर्धनों की सहायता के लिये धन सदा बना रहेगा। आपको उनके अधिकार की उपेक्षा करने का लोभ न होगा। आपको दान के प्रत्येक अवसर पर गिनना और हिसाब लगाना न पड़ेगा। आपने एक बार निश्चय कर लिया कि आप एक प्रति शतक निर्धनों को दिया करेंगे। इस प्रकार आप जहां कहीं भी दया, और न्याय की मांग हो, कार्य करने को तैयार और सहमत रहेंगे।

इस निर्धन खाते को खोल कर आपको अपने पड़ौस में किसी असहाय निर्धन को खोजना चाहिये। दान का आरम्भ आपके मुहल्ले, आपके गांव अथवा आपके नगर से होना चाहिये। पहिले उन निर्धनों की सहायता करो, जिनको आप जानते हो और जिनसे आप नित्य मिलते हो। आपका प्रथम कर्तव्य उनके प्रति है। जब तक आप अपने संसार के छोटे से कोने के पीड़ितों के कष्टों को दूर न कर दो पारमार्थिक संस्थाओं को युक्तहस्त हो कर मत दो। अनेक दानी पारर्थिक संस्थाओं

अपने आड़तियों से धर्मादिफण्ड का पैसा अनिवार्य रूप से काटते हैं; निश्चय से ही यह धन उन्होंने अपनी जेब से नहीं दिया, किन्तु वह इसके भी देने को तैयार नहीं होते। यदि बहुत कुछ दबाव पड़ने पर देते भी हैं तो उस को अपने नाम से देते हैं, जैसे यह रक़म उन्होंने अपनी आय में से दी हो।

को युक्तहस्त होकर दान देते हैं, किन्तु अपने द्वार के भिखारी को कुछ नहीं देते। सबसे अच्छा दान व्यक्तिगत, सीधा, और स्थानीय होता है; उसके बाद दूसरा अच्छा दान सार्वजनिक, दूर का और यान्त्रिक होता है। आपको कोने में बैठी हुई निर्धन अंधी विधवा, अथवा मोहताज खाने में बैठे हुये बृद्ध और असमर्थ के पास जाकर उसको प्रेम और सम्मान पूर्वक पैसा. भोजन अथवा वस्त्र देना चाहिये। सच्चा दान पैसा और प्रेम दोनों ही देता है। प्रेम कभी वैतनिक सार्वजनिक संस्थाओं के वैतनिक मंत्रियों और किराये के एजेण्टो के द्वारा नहीं दिया जा सकता। दान को आप यन्त्र के समान मत बनाओ। जिन निर्धन पड़ौसियों की आप सहायता करो उनके साथ मित्रता का सम्बन्ध स्थापित करलो। अपना उपहार उस प्रकार दो जिस प्रकार एक मित्र मित्र को देता है, न कि उस मृत कम्पनी के समान जो लाभ की रक़म को अपने परोक्ष भागीदारों में बांटती है। गिनती व्यक्तिगत कार्य की ही की जाती है। धन के अतिरिक्त कोई वस्तु अपनी भी देदो। इस प्रकार आपके उपहार के लिये दोहरा आशीर्वाद मिलेगा। कार्लमार्कस अपने मुहल्ले के निर्धन बच्चों को केवल पैसा ही नहीं दिया करता था, वरन् वह उनसे प्रेम भी किया करता था। वह भी उसे प्रेम करते और 'दादा मार्कस' कहा करते थे।

अनेक बार पैसा न देकर, सामग्री, कपड़े, लकड़ी और अन्य आवश्यक वस्तुएं देना कहीं अच्छा होता है। पैसे की

अपेक्षा इन वस्तुओं के द्वारा प्रेम अधिक स्वाभाविक रूप में प्रगट किया जाता है। अन्त में आपके धन को पाने वाला निर्धन पैसे से इन्हीं वस्तुओं को मोल लेगा। इस प्रकार आप उसके लिये स्वयं मोल लेकर उसके कष्ट को बचा देते हो। इसके अतिरिक्त आपको इस बात का पता रहता है कि आप का पैसा मद्य अथवा जुवे में व्यर्थ नष्ट नहीं किया जाता। भाव और बुद्धि दोनों यही बतलाते हैं कि नकद की अपेक्षा प्राकृतिक वस्तुओं का दान अधिक उत्तम होता है। किंतु इसके लिये कोई कठिन नियम नहीं है। परिस्थिति के अनुसार दोनों ही प्रकार के दान को देने का उद्योग करो।

आपको निर्धनों के प्रति व्यक्तिगत दया भी प्रदर्शित करनी चाहिये। उनको केवल भोजन और वस्त्र की आवश्यकता नहीं है, वरन् प्राय: आत्म सम्मान, साहस, और मनुष्यता की भी है, उनके समृद्ध पड़ोसी प्राय: उनसे घृणा करते हैं। उनको 'समाज का रोग', 'जनता की गंदगी', 'व्यर्थ बोझा' आदि आदि कहा जाता है। इस प्रकार के नीच वाक्य उस घृणा को प्रगट करते हैं, जो इन निर्धन व्यक्तियों के लिये पूंजीवादी समाज में प्रगट की जाती है। उनको यह अनुभव कराया जाता है कि उनकी निर्धनता अपमान और अपराध है, जिसके लिये उनको लज्जा करनी चाहिये। आपको इस प्रकार के सामाजिक प्राणियों को अपने घर अथवा दूकान में चाय पिलानी और भोजन कराना चाहिये। आपको उनके साथ सदा हाथ मिलाना

चाहिये, उनके प्रणाम को केवल दूर से ही स्वीकार न करना चाहिये। आपको उनके साथ खाना, पीना, खेलना, टहलना, और समानता तथा मित्रता का व्यवहार करना चाहिये। अपने किसी बन्धु-मनुष्य से घृणा मत करो। निर्धन और विनयी लोगों का कभी अपमान करके उन्हें मत भगाओ। वरन् मेसफ़ील्ड (Masefield) के शब्दों में यह कह उठो, "संसार भर की गंदगी, तलछट, धूल और मैल मेरा हो।" यदि आप पहिले उनकी सार्वजनिक मनुष्यता को स्वीकार नहीं करते तो उन निर्धनों को धन देने से क्या लाभ है? बुद्ध और आनन्द दलित-जातियों के साथ स्वतंत्रता पूर्वक भाईचारे के रूप में मिलते जुलते थे। क्या आप समझते हैं कि आप बुद्ध और आनन्द से भी बड़े हैं? सेंट फ्रांसिस असीसी के निर्धन कोढ़ियों के साथ खाया और पिया करता था। जब मैं लंदन में एक गली गली फिरने वाले चित्रकार को अपने साथ लेकर एक चाय घर में गया, और मैंने दोनों के लिये चाय बनाने की आज्ञा दी तो उस दूकान के मालिक और नौकरनी को बड़ा भारी आश्चर्य हुआ। हमने एक दिन सड़क के कोने पर ही, जो उसके व्यवसाय का दफ्तर था, एक बार चाय पी तो तो स्वयं उसको भी बड़ा भारी आश्चर्य हुआ। एक करोड़पति भिखारी की टोपी में अशर्फी को उसी प्रकार डाल सकता है, जिस प्रकार कुत्ते के सामने हड्डी फेंक दी जाती है। अच्छे हृदय वाले मजदूर — यदि अपने चौके में किसी निर्धन विधवा को भोजन के लिये

निमंत्रित करता है तो अधिक दान देता है । यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि "बिना दाता का दान नंगा समझा जाता है।" निर्धनों को सामग्री सम्बन्धी सहायता तथा नैतिक सहायता दोनों की आवश्यकता है । वह रोटी के लिये भूखे अवश्य हैं, किंतु वह प्रेम, सहानुभूति, समानता और भ्रातृवत्सलता के और भी अधिक भूखे हैं। हमको उन्हें दोनों ही वस्तुएं देनी चाहियें।

जो निधन आपके पड़ौस में नहीं रहते उनके लिये भी आपका एक कर्तव्य है, किन्तु आप को व्यवसायिक भिखमंगों और पाखण्डियों से सावधान रहना चाहिये । यह जानना अत्यन्त कठिन है कि उक्त घूमने वाले को किसी विशेष कारण बश भिक्षा करनी पड़ी है, अथवा वह ढोंगी है । सड़कों के कोने और मन्दिरों के सामने खड़े होने वाले बहुत से भिक्षुकों को तो उनके सुधार के लिये कुली बस्तियों और सुधारक संस्थाओं में भेज देना चाहिये। कभी २ ता वह भिक्षुक आठ दस घंटे तक अत्यन्त परिश्रम करके कमाने वाले सच्चे मजदूरों से भी अधिक कमा लेते हैं। यह सिद्ध हो चुका है कि कुछ भिक्षकों की तो न्यूयार्क (अमरीका) के बैंकों में बड़ी भारी रकमें जमा हैं। क्वीनटीन हौग (Quintin Hogg) ने स्वयं एक सौ भिक्षुकों के मामलों की जांच की थी। उस जांच के परिणाम का एडवर्ड गिलेट Edward Gilliat ने इस प्रकार वर्णन किया है, उसको पता चला है कि लगभग पचास ने तो अपने पते ग़लत बताये थे, शेष भिक्षुकों में से प्राय सहायता के पात्र नहीं थे केवल दो

ही योग्य पात्र थे। इस प्रकार भीख मांगने के व्यवसाय को वन्द करना भी आपका कर्तव्य है। इस प्रकार के निकम्मे व्यक्तियों को एक पैसा तक मत दो। उनकी प्रार्थनाओं पर अपना हृदय पत्थर बनालो, बिना पहचाने हुए पैसा देना दान नहीं है, यह एक मूर्खतापूर्ण प्रकृति है। एक सभ्य राज्य को किसी भी नागरिक को सड़कों में भिक्षा न मांगने देना चाहिए। योग्य पात्रों को उनके पड़ौसियों, संस्थाओं, म्युनिसिपैलिटियों और राज्य की सहायता करनी चाहिए। सड़कों के किनारे पड़े रहने वाले भिखमंगों और अपाहिज राजनीति के शरीर के घाव और नासूर हैं। वह सामाजिक रोग और अनियमता के चिन्ह हैं। वह समय आने वाले हैं कि जब सभी देशों में सार्वजनिक रूप से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भिक्षा मांगना एक दम बन्द हो जावेगा।

साथ ही साथ यह स्वीकार करना चाहिये कि सड़क के कुछ भिखमंगे आपके दान के पात्र हैं, क्योंकि वह बिना अपने किसी अपराध के वास्तव में ही अकिंचन हैं। उनमें से कुछ तो कुछ आने रोज़ कमा कर अपने रात्रि के लेटने और साधारण भोजन तक का प्रबन्ध नहीं कर सकते। वह सदा ही आधा पेट रहते और चिथड़े पहने से रहते हैं। यदि आप उनके रहने और कार्य का पता पहिले से लगा लें तो आपको उनमें से कुछ की सहायता अवश्य करनी चाहिये उनसे वार्तालाप करो और उनको अपना मित्र बना लो। इस प्रकार आप इस बात का निश्चित पता लगा

सकते हैं कि आपका दान बदमाशों में नहीं जाता। इस प्रकार के मामलों में वह सार्वजनिक नियम ही अच्छा रहता है दान वास्तव में ही व्यक्तिगत जानकारी और रुचि के आधार पर करना चाहिये दान अंवेपन से और यन्त्रीय रूप में नहीं करना चाहिये।

संस्थाएं---सभी देशों में निर्धन और रोगियों की सहायता के लिये कुछ बड़ी संस्थाएं खोली जाती है। आपको उनको धन, ऐच्छिक सेवा और मित्रतापूर्ण सम्पति से सहायता करनी चाहिये अपने निर्धन खातों में से कुछ संस्थाओं, बस्तियो और अनाथालयों को चन्दा दिया करो। जहां निर्धनों और रोगियों की अपेक्षा मंत्रियों, मैनेजरों और कार्यकर्ताओं के वेतनों पर अधिक व्यय किया जाता हो, ऐसी लोभी संस्थाओं से सावधान रहो. वार्षिक रिपोर्ट का सदा पढ़ा करो। इस प्रकार की उत्तम संस्थाओं को सदा ही सहायता करते रहा करो—अफ्रीका में डाक्टर ऐडवर्ड स्वीटजर का अस्पताल शेफील्ड में शिक्षा की बस्ती, पूर्वीय लन्दन में मिस मूरियल लेस्टर की बस्ती, स्त्रियों के लिये सेसिल-गृह, पूना का बिधवा आश्रम, रामकृष्ण मिशन, शाम (Syria) देश में मित्रों के आर्मिनिया अनाथालय, तथा उसी प्रकार के अच्छे प्रबन्ध वाली अन्य संस्थायें जिनके प्रबन्धक स्वयं ही आत्म-बलिदान करने वाले आदर्श हैं, और केवल किराये के पदाधिकारी नहीं हैं. इस प्रकार की संस्थाओं को रक्षाकार्य के साथ २ धार्मिक अथवा राजनीतिक कार्य मत करने दो, अनेक संस्थायें,

इतनी निर्दोष नहीं हैं, जितनी वह दिखलाई देती हैं। वह जनता में साम्यवाद को रोकने अथवा किसी विशेष धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार करने के उद्देश्य स स्थापित की जाती हैं।

इस प्रकार की संस्थाओं में काम करके आप पीड़ितों के साथ सीधा व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकते। अतएव आपको अपने धन को अनेक देशों की संस्थाओं में बांटना चाहिये। इस प्रकार का सार्वजनिक दान सभी राष्ट्रों के निर्धनों और रोगियों के लिये बिना किसी पक्षपात के करना चाहिये। इस प्रकार आपका प्रेम समस्त संसार में फैल जावेगा। जिस प्रकार भूकम्प-सूचक यंत्र पृथ्वी के ऊपर बड़ी २ दूर के हल्के से हल्के धक्के का भी पता लगा लेता है, उसी प्रकार अपनी आत्मा का भी समस्त संसार भर के दुःख का अनुभव तुरंत करने दो।

अपने आत्मा के फुलिंगे को सदा ही खूब चमकते रहने के लिये सदा ही व्यक्तिगत सेवा करने वाले वीर स्त्री पुरुषों के जीवन चरित्रों का अध्ययन करते रहो और उनके कार्यों की प्रशंसा किया करो। सेंटबेलिस, सेंट-बेनीडिक्ट, सेंट-विंसेट डे पाल, एलबर्ट स्वीटजर, बाडेलस्विंग (Bodelschwingh), जान होवर्ड, जेन ऐडम्स, विलियम बूथ, डाक्टर बर्नार्डो, डाक्टर विल्फ्रेड ग्रेनफेल, एलिजेबेथ फ़्राई, जे. एफ. ओबरालिन, रामकृष्ण, जे. एच. विचर्न, ई. श्वेंक (E. Schveuk), तथा मनुष्य जाति के अन्य सेवकों के सम्बन्ध में छोटी २ पुस्तकें

पढ़नी चाहियें।

इस प्रकार आप सदा ही व्यक्तिगत सेवा के अपने भाग को करने के लिये तयार रहोगे।

"वह चुपके से......

और चौरी से कोमल हाथ वाला दान करता है,

वह अपने इतने स्वतन्त्र दान को

समय और स्थान की अपेक्षा यहां तक अत्यन्त कोमल कर देता है,

कि रुक्ष संसार एक भी दु:खी को नहीं देख पाता,

वरन् अपने प्रताप को ही देखता है।

(केविल),

तृतीय अध्याय

एक केन्द्र वाले पांच वृत्त

पृथ्वी पर आप अपने लाखों और करोड़ों मनुष्यों से घिरा हुआ पाते हो। हमारे इस ग्रह पर लगभग दो अरब स्त्री, पुरुष और बच्चे हैं। अपने माता पिता तथा बीवी बच्चों से लगाकर अफ्रीका के वनों के दोनों और सीलौन (लङ्का) के भारी से भारी जंगलियों तक सभी मनुष्यों के लिये आपका एक कर्तव्य है, जो पूर्ण, विषेध न करने योग्य, और अनिवार्य है। मनुष्य-जाति एक और अविभक्त है। मनुष्यजाति की एकता आपके सिद्धान्तों के सबसे पवित्र सिद्धान्तों के अनुसार एक और पूर्ण होनी चाहिये। यदि हमारे सूर्य तथा अन्य सूर्यों की परिक्रमा करने वाले अन्य ग्रहों के ऊपर भी मनुष्यसृष्टि हो तो आप उनके साथ भी सम्बन्धित हैं। किन्तु इस विषय में हमारा अज्ञान हमारे कर्तव्य की इतिश्री कर देता है।

मनुष्य जाति की एकता

मैं कहता हूं मनुष्यजाति एक है। सब मनुष्य जाति के केवल आदम और हव्वा से ही उत्पन्न होने में एक कवित्वमय सत्य है। हमको इस विषय पर वादविवाद करने की आवश्यकता नहीं है कि मनुष्य जाति प्रथम पृथ्वी के किस भाग पर प्रगट हुई। यह पुरातत्त्व विज्ञान का विषय है, हम मनुष्य-जाति की एकता के सिद्धान्त को वर्तमान कालीन घटनाओं और अनुभवों से निकालते हैं। सभी मनुष्य इस सुन्दर और उदार पृथ्वी पर रहते हैं। उनका उत्तराधिकार और रहने का स्थान इसी पृथ्वी पर है। यही हमारा पालना और यही हमारी क़ब्र है। आपके प्रेम करने के लिये इससे बड़ी मातृ भूमि दूसरी कौनसी हो सकती है? आप इससे बड़े और किस 'लोक' के नागरिक बनना पसंद करेंगे? यह पृथ्वी हमारी माता और मातृभूमि है। इसने हमको जन्म दिया है। यह हमको भोजन देती और पालती है। मरने के पश्चात् यह हमको फिर अपनी गोद में छिपा लेगी। हे पृथ्वी माता! हम तेरा अभिनन्दन करते हैं! हम अत्यन्त विनय और कृतज्ञता पूर्वक तुझको प्रणाम करते हैं। तेरे द्वारा और तेरे सामने ही तेरे, सफ़ेद, भूरे, काले, और पीले, सभी बच्चे अपने नित्य सम्बन्ध का अनुभव करते हैं।

मनुष्यजाति एक है। सभी स्त्री और पुरुष एक प्रकार के हैं। उनका उत्पादक कारण भी एक है। वह सब एक दूसरे के

साथ पल सकते हैं, एक श्वेतांग मनुष्य का रूप काले अथवा पीले मनुष्य में बदला जा सकता है। संयुक्त राज्य अमरीका के दास बनने वाले स्वामियों ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की थी, कि नीग्रो लोग बिल्कुल ही भिन्न प्रकार के हैं और उनको अर्द्ध-मनुष्य प्राणी समझा जा सकता है। किन्तु यह युक्ति लोभ से दी गई थी और इसका शीघ्र ही खण्डन कर दिया गया। पांचों महाद्वीपों के सभी स्त्री पुरुषों का शरीर विज्ञान और शरीर कर्य विज्ञान एक ही प्रकार का है। प्राणिविज्ञान की दृष्टि से समस्त मनुष्य जाति के एक होने के सिद्धान्त से कोई निषेध नहीं कर सकता।

निम्नतम झाड़ियों में रहने वाले दक्षिण अफ्रीका वासियों और न्यू गिनी के जंगली मनुष्यों तक सभी मनुष्य बोल सकते हैं। मनुष्य में वाणी की विशेषता है। उन्होंने वृहत् मस्तिष्क में बड़ी भारी उन्नति की है। सभी स्त्रीपुरुष किसी न किसी प्रकार के औज़ारों से काम लेते हैं और आग जला सकते हैं। सभी स्त्री पुरुष परिवार में रहते हैं, कभी २ वह एक प्रकार के दलबन्दी वाले समाज में रहते हैं, रूसो का अकेला जंगली जो 'स्वयं अपने बच्चों को भी नहीं जानता था,' अशिक्षित कल्पना का अविष्कार था। सभी स्त्री पुरुष गिन सकते, सोच सकते, अनुमान कर सकते, परिणाम निकाल सकते, और कार्य करने के साधनों से काम ले सकते हैं। सभी स्त्री पुरुषों में में कुटुम्ब प्रेम होता है। वह पिता, माता, भाई, बहिन, और

बच्चों में संबंधोंको निबाहते हैं। सभी स्त्री पुरुष विश्व की उत्पत्ति, उसके शासन, उसके उद्देश्य और अभिप्राय के सम्बन्ध में कुछ अभिप्राय रखते हैं। वह यों ही गड़बड़ सड़बड़ में नहीं, वरन् नियमों, व्यवसायों, रीतियों और रिवाजों के अनुसार रहते हैं। सभी स्त्री पुरुषों की सामाजिक स्मृति होती है, वह भूतकाल को देखते और किसी परम्परा का पालन करते हैं। सभी स्त्री पुरुष भविष्य के लिये आगे को देखते और सन्तानों का पालन करते हैं। सभी स्त्री पुरुष यह अनुभव करते हैं कि पूर्णतया नहीं मरेंगे, वरन् किसी न किसी रूप में — या तो व्यक्तिगत आत्म-संवेदन वाले जीवात्मा के रूप में अथवा अपने उत्तराधिकारी के रूप में जीवित रहेंगे। मनुष्य अपनी मौलिक एकता को दो असाधारण गुणों — बुद्धि और सामाजिकता की उच्चकोटि की उन्नति करके प्रदर्शित करता है। जब विकासक्रम में बुद्धि और सामाजिकता का एक निश्चित रूप में विकास हो जाता है तो रंगभूमि पर मनुष्य जाति प्रगट होती है। स्टोइक लोग (Stoics) मनुष्य जाति की एकता का आधार सभी के तर्क में भाग लेने में मानते थे, जैसा कि मार्कस औरीलियस कहता है, "यदि हमारा बौद्धिक भाग सर्वसाधारण है, तो वह तर्क भी — केवल जिसकी दृष्टि से हम बुद्धिवादी प्राणी हैं — सर्व साधारण है।" ईसाईयों ने ईश्वर के पितापने की इस रूप में शिक्षा दी, "ईश्वर ने सभी राष्ट्रों के मनुष्यों का एक रूप बनाया।" उन्होंने प्रेम को एकता का बन्धन बनाया। अब हमको इन दोनों ही गम्भीर विचारों

को स्वीकार कर लेना और यह मान लेना चाहिये कि मस्तिष्क की शक्ति और गहन सहानुभूति के दो गुण ही मनुष्य को अन्य सब प्राणियों की अपेक्षा विशेष उच्च बनाते हैं । आपको अभिमान पूर्वक कहना चाहिये, कि "मैं मनुष्य जाति का एक सदस्य और पृथ्वी का नागरिक हूँ ।"

दो बाधाएँ

मनुष्य जाति की एकता एक वास्तविक घटना है, किन्तु मनुष्यों में समानता न होने से उसको न तो स्पष्ट रूप में स्वीकार किया जाता है न उसकी सराहना ही की जाती है । हमारे लिये जीवन का नियम यह जान पड़ता हैं कि एकता के साथ भेद हों, समानता न हो । हम में से कुछ तो इस एकता के भेद में सभी प्रकार से पूर्ण एकता को पसन्द करते हैं, किन्तु दूसरे प्रकार के लोग पूर्ण समानता को पसन्द नहीं करते, वह एकता में विभिन्नता को पसन्द करते हैं; हम को इस अप्रिय सत्य का मुक़ाबला करना है कि मनुष्य जाति में विभिन्नता डालने वाले कुछ विद्रोहियों ने जाति की मौलिक एकता को दूषित कर दिया और यहां तक कि घृणा और युद्ध करा दिये । इस प्रकार के ऊपरी मतभेदों से आपको अपनी पूर्णतया रक्षा करनी चाहिये । आपको पृथ्वी के सभी महाद्वीपों और देशों के स्त्री पुरुषों और बच्चों के प्रति अपनी कर्तव्य बुद्धि को कभी भी निर्बल नहीं होने देना चाहिये । आगे मानवी एकता के हमारे दृष्टिकोण को

गड़बड़ और नष्ट करने वाले विभिन्नता के दो मुख्य कारणों पर संक्षेप से विचार किया जावेगा। यह दो कारण जाति (रंग सहित) और भाषा (राष्ट्रीयता सहित) हैं।

(१) जाति और रंग

मनुष्य विज्ञान के विद्वान् मनुष्य जाति को उनके रूप रङ्ग, शरीर की ऊंचाई, शिर की रचना, चेहरे की बनावट, नासिका के आकार, बालों के रंग आदि के अनुसार अनेक जातियों (Races) में विभक्त करते हैं। मनुष्य श्वेत, भूरे, पीले, काले और ताम्बे के रङ्ग के भी होते हैं; वह आगे से पीछे को लम्बे सिर वाले, दाहिनी ओर से बाईं ओर को लम्बे सिर वाले, अथवा बहुत छोटे सिर वाले होते हैं; वह चौड़े अथवा लम्बे चेहरे वाले, आगे को निकले हुए जबड़ों वाले अथवा सीधे जबड़े वाले होते हैं; वह छोटी नाक वाले, मध्यम नाक वाले, चौड़ी नाक वाले अथवा अत्यधिक चौड़ी नाक वाले होते हैं। यह शारीरिक विभिन्नताएं बड़े २ झगड़ों की कारण बनती रही हैं, क्योंकि उन्हीं के कारण स्त्री, पुरुष और बच्चे समान दिखलाई नहीं देते। इस प्रकार की विचित्र आकृति और शरीरों को देख कर हम अपनी आधारभूत एकता को भूल ही जाते हैं। लम्बे तड़ङ्गे श्वेत काकेशियावासी अपनी झुकी हुई नाक और सुनहरे बालों से ठिगने, चपटे चेहरे वाले, पीले जापानियों अथवा मोटे ओठों वाले, ऊन जैसे बालों और आबनूसी रङ्ग वाले नीग्रो की अपेक्षा अत्यन्त भिन्न दिखलाई देते हैं। प्रकृति

ने हमारे साथ इस विषय में एक अत्यन्त खेदपूर्ण चाल चली है। यद्यपि अधिकांश व्यक्ति इस बात को जानते हैं कि न्यूटोन छैला *बेचुआनालैण्ड की कृष्णवर्णा सुन्दरी में एक ही प्रकार का मस्तिष्क और रक्त है, तो भी नेत्रों में विभिन्नता और विरोध का ऐसा प्रतिबिम्ब आ जाता है कि विचार करने वाला मस्तिष्क और प्रेम करने वाला हृदय उस क्षण के लिये किसी भी व्यवहारिक उद्देश्य के लिये पूर्णतया पराजित और पंगु हो जाते हैं, इस प्रकार के दर्शनजन्य भावों को बुद्धि और सामाजिकता से जीतना चाहिये, और आपको भाईचारे के सम्बन्धों को सभी के साथ अधिक दृढ़ करना चाहिये। इस घटना स्मरण रखो कि अमरीका में गौरांगों के बच्चे अपने काले नीग्रो साथियो के साथ खेलने में घृणा नहीं करते। इस प्रकार बच्चे हमको शिक्षा देते हैं, इसके अतिरिक्त आप इस बात को भी जानते हो कि पुरुष और स्त्री के बीच होनेवाला प्रेम जाति की सभी सीमाओं को कूद जाता है, वास्तव में भिन्न २ जातियों (races) के दम्पत्ति एक दूसरे को सजाति प्रेमियों की अपेक्षा अधिक घनिष्ठ प्रेम करते हैं। प्रेम विवाह के मिष्ट बन्धनों में मिला ही देता है। नीग्रो, चीनी लोग, काकेशिया वासी और ब्रेजिल के अमरीकन लोग प्रेम की एकता के साक्षी हैं। उत्तरी अमरीका और दक्षिणी अफ्रीका के पक्षपाती व्यवस्थापक (Legislators) व्यर्थ ही प्रेम से यह कहते रहेंगे 'तू यहीं तक जा सकेगा, आगे नहीं।'

*दक्षिणी अफ्रीका का एक देश

वह प्रेम को अपने कम्बख्त नियमों और कानूनों की सीमा में बांधने का प्रयत्न व्यर्थ ही करते रहेंगे। प्रेम के पक्षी को वे व्यर्थ ही श्वेत रंग तथा काले रंग वाले पींजरे में बन्द करने का उद्योग करते रहेंगे। कामदेव उन सम्बन्धों को तोड़ कर जहां चाहेगा वहीं उड़ कर जा पहुँचेगा। मध्य अमरीका में तो श्वेत और कालों ने मिल कर भूरे सौन्दर्य का निर्माण कर डाला। जिस कार्य को अभिमान और पक्षपात किसी प्रकार भी न कर सके वह प्रेम ने पूरा कर दिखलाया। इसके अतिरिक्त आपको संस्कृति के उन अनेक तत्त्वों का अध्ययन करना चाहिये, जो सभी जातियों में सर्वसामान्य रूप से मिलते हैं। इस प्रकार आप मनुष्य जातिभेद विज्ञान के विद्वानों (Ethnologists) के द्वारा विस्तार से वर्णन किये हुए आकृति विज्ञान के कष्टों से बच जावेंगे, आपके नेत्र रोगन के बाहिरी पर्दे को छेद देंगे और प्रेम की एक्स किरणें उनको दूसरे भाई के मस्तिष्क और हृदय में सीधा झांकने योग्य बना देंगी। क्योंकि अब आर्य, सेमेटिक, मंगोल और नीग्रो कोई नहीं है। अब तो केवल स्त्री और पुरुष है और मनुष्य जाति ही सब कुछ है।

इन सब बाह्य मतभेदों में बाह्य चर्म का रंग प्राय: एकता और प्रेम के मार्ग में बड़ा भयानक बाधक हुआ करता है। वर्ण पक्षपात के प्रभाव में न आने वाले सभ्य पुरुषों का सभी सम्मान करते हैं। भूमध्यसागर के तटवर्ती तथा दक्षिणी अमरीका के देश इसी प्रकार के हैं, किन्तु इङ्गलैण्ड,

जर्मनी और उत्तरी अमरीका की प्रायः जनता इस विषय में खेदपूर्ण ढङ्ग से बर्बर है। उनके अन्दर वर्ण पक्षपात इतने भयङ्कर रूप में उस हिंसक पशु के समान काम करता है. जिसको किसी प्रकार पालतू नहीं बनाया जा सकता। अधिक प्रार्थना किये हुए ईश्वर और 'क्षमा करने वाले' ईसा मसीह में उनका विश्वास भी उनको इस भयानक संक्रामक रोग से मुक्त न कर सका। भले ही एक उच्च शिक्षा प्राप्त नीग्रो उसी ईसाई सम्प्रदाय का अनुयायी और उसी राष्ट्र का नागरिक हो, किन्तु अनेक श्वेत अमरीका वासी जो उसी के सम्प्रदाय तथा नगर वाले हैं उसको 'अछूत' समझते हैं। उत्तरी अमरीका के श्वेत लोग कालों को अपने स्कूलों, गिरजाघरों, क्लबों और यहां तक कि कब्रिस्तानों तक से निकालना चाहते हैं। दक्षिणी अफ्रीका के श्वेत मज़दूर अपने साथी काले मज़दूरों का बहिष्कार करते और उनको अनेक प्रकार से तंग करते हैं, इस प्रकार के धार्मिक और नागरिक किस काम के? वह कोरे पाखण्डी और धोखेबाज़ हैं, वह दण्ड और सर्वनाश को लाने वाले हैं, क्योंकि उनमें ग़लती करने वाले स्त्री पुरुषों को बुरे कार्यों और भयंकर अपराधों से बचाने की शक्ति नहीं है। सन् १८८६ से १६३० ईस्वी तक संयुक्त राज्य अमरीका में ३७२४ व्यक्तियों को पीटा गया था। सभी वर्णविद्वेषी अध्यात्मिक रोगी होते हैं, वह कुमार्ग पर जाते हैं, वह वर्णविद्वेष के जङ्गली विद्रोहों लड़ाई झगड़ों में अनेकों की हत्या कर देते हैं।

इस मानसिक विग्रह को रसायनिक अथवा नैतिक औषधियों से अच्छा किया जा सकता है। कुछ वैज्ञानिकों को एक ऐसे रोग़न का आविष्कार करना चाहिये, जिसको पृथ्वी भर के सब स्त्री पुरुष अधिकृत रंग के मानरूप में स्वीकार कर लें। ठीक छाया न हो तो कुछ बात नहीं, मुख्य आवश्यकता तो रंग की समानता की है। एक अन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेस श्वेत या काले, सफ़ेदी मायल काले अथवा कालिमायुक्त सफ़ेद, पीलेपनयुक्त भूरे अथवा भूरे मायल पीले, लालिमायुक्त पीले अथवा पीलेपनयुक्त लाल रंग को पसन्द करना चाहिये और उस रंग के रोग़न में सभी नवजात बालकों को रंग देना चाहिये। जन्मभर बराबर रोग़न करते रहना चाहिये। इस विषय में पूर्ण समानता होनी चाहिये, सभी प्रकार के भेदों को बन्द कर देना चाहिये। इस अवस्था में वर्णभेद की समस्या सदा के लिये हल हो जावेगी। यह रसायनिक औषधि है।

यदि आप इस प्रस्ताव को स्वीकार न करें तो आपको नैतिक स्वास्थ्य विज्ञान और शिक्षा सम्बन्धी सुधार के शक्तिशाली कार्यों को करना पड़ेगा। आपको वर्णविद्वेष के इस सत्यानाशी राक्षस को ठोस शिक्षा, दयापूर्ण आचारशास्त्र, अन्तर्राष्ट्रीय नियमों और भाईचारे के सामाजिक बन्धन के जादू से मार भगाना होगा।

(२) भाषा और राष्ट्रीयता

कैलिबन ने प्रॉस्पेरो से कहा,

"आपने मुझ को भाषा की शिक्षा दे दी, और मेरा लाभ उससे यही है कि मैं शाप देना जान गया हूं।"

यह विचार वास्तव में अत्यंत खेदपूर्ण है कि मनुष्य जाति की एकता में भाषाओं की विभिन्नता से बड़ी भारी बाधा और कठिनता उपस्थित हुई है। भाषाओं की विभिन्नता ने घृणा, संदेह, और रक्तपात को खूब बढ़ाया है। यह स्वाभाविक है कि मनुष्य उन विदेशियों से भाईचारा करने में सहमत न हो सकें, जो उनसे वार्तालाप नहीं कर सकते। आपस में एक दूसरे की बातचीत को समझ सकना सहयोग की आवश्यक शर्त है। भाषा ने एक जाति से दूसरी जाति के अंदर पृथक करने की न चढ़ने योग्य चीनी दीवार खड़ी करदी है। इस विषय में भी प्रकृति ने हम पर बड़ी भारी निर्दयता की है। आरम्भिक युग में आजकल के अफ्रीका के समान भुलाने वाली अनेक देसी देश-भाषाएं प्रचलित थीं, इसके परिणाम स्वरूप सामाजिक सम्बन्ध एक बहुत परिमित क्षेत्र में किये जाते थे। किसी समय एक देसी भाषा राष्ट्रीय भाषा के रूप में उन्नति कर जाती है और प्रत्येक भाषा-भाषियों के राजनीतिक संगठन के रूप में एक राष्ट्रीय राज्य की स्थापना होती है। इस समय हम इसी युग में से गुज़र रहे हैं। प्राचीन काल की सहस्रों देश भाषा अब पचास अथवा इससे कम संख्या में साहित्य भाषाओं का रूप धारण कर चुकी हैं। जिस समय पृथ्वी भर में केवल एक भाषा को ही पत्र-व्यवहार का माध्यम बना लिया जावेगा तो उस समय

अगला चरण होगा।

जिस प्रकार भाषाओं की एकता अधिकाधिक होती जावेगी, वैर और घृणा भी कम होंगे, क्योंकि राजनीतिक राज्य की स्थापना एक सार्वजनिक भाषा के आधार पर ही की जावेगी। जब अनेक देशभाषाएं बोली जाती हैं तो अनेक छोटे २ राज्यों का संगठन किया जाता है और अनेक छोटे छोटे युद्ध हुआ करते हैं। अत्यन्त व्यापक रूप में बढ़ी हुई राष्ट्रीय भाषाओं से बड़े २ राष्ट्रीय राज्यों की उन्नति होती है, उस समय युद्ध बहुत कम होते हैं, और जो होते भी हैं तो वह अत्यन्त भयंकर होते हैं। यह एक ऐतिहासिक नियम है कि राज्यों को आपस में लड़ना ही पड़ता है। राज्य सदा से ही एक झगड़ालू पशु था, है और सदा बने रहेगा। जब तक अनेक राज्यों का अस्तित्व रहेगा, उनमें युद्ध होता रहेगा। विशेष नागरिकता के समीपवर्ती और तंग बन्धन से मानवी एकता का भाव लगभग मिट जाता है। स्त्री और पुरुष विभिन्न राज्यों के नागरिक बने रह कर शान्ति और सन्तोष से नहीं रह सकते। शांति पृथ्वी भर में एक राज्य चाहती है, जिसकी स्थापना एक विश्वभाषा के आधार पर की जावेगी।

इस बीच में, राष्ट्रीय भाषाओं की भयंकर बाधाओं के होते हुये भी हमको अपनी शक्ति भर सभी साधनों से मानवी भाईचारे के भाव का प्रचार और उसको अधिक दृढ़ करना चाहिये।

शेक्सपीयर ने शैलाक के मुख से मानवी एकता की पूर्ण युक्ति को कहलाया है। एक सूद खोर महाजन से उसकी जाति और धर्म यहूदी होने के कारण घृणा की जाती थी। वह चिल्ला कर कहता है, "मैं एक यहूदी हूँ। क्या यहूदी के नेत्र नहीं होते? क्या यहूदी के हाथ, अंग, परिमाण, इंद्रियां, प्रेम और वासनायें नहीं होतीं? वह ईसाई के समान उसी भोजन को खाता है, उसके उसी शस्त्र से चोट लगती है, उसको वही रोग होते हैं, उसको उन्हीं साधनों से आराम होता है, उसको उसी शीत ऋतु से सर्दी और ग्रीष्मऋतु से गरमी लगती है। यदि आप हमारे चोट मारोगे तो क्या हमारे शरीर से रक्त नहीं निकलेगा? यदि आप हम को गुदगुदाओगे तो क्या हम नहीं हंसेंगे? यदि आप हमको विष दो तो क्या हम नहीं मरेंगे?"

अतएव यदि आप किसी अन्य जाति और धर्म वाले भाई से घृणा करते अथवा उसकी ग़लती पकड़ते हो तो यहूदी शैलाक के प्रभावशाली युक्तियों को स्मरण रखो।

जिस प्रकार एक हवाई जहाज़ का चलाने वाला पृथ्वी के ऊपर उठ कर समस्त भूमिभाग को एक दृष्टि में ही देखता है, उसी प्रकार आपको जाति, रंग, भाषा और राष्ट्रीयता की सीमाओं से ऊपर उठ कर सभी स्त्री, पुरुष और बच्चों को प्रेमपूर्वक छाती से लगा लेना चाहिये। आपके प्रेमी हृदय का द्वार किसी के लिये भी बन्द न हो। जिस प्रकार पृथ्वी सब का पालन करती और सूर्य सबको धूप देता है, उसी प्रकार आपकी

प्रेमपूर्ण सहानुभूति बिना किसी अपवाद के सभी स्त्री पुरुषों के लिये होनी चाहिये। महाभारत में इस आदर्श का इस प्रकार वर्णन किया गया है —

"अन्य निजो परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥"

"'यह हमारा है अथवा दूसरे का है'
इस प्रकार की बातें तुच्छ हृदय वाले किया करते हैं।
उदार चरित्र वालों के लिये तो
सारी पृथ्वीभर की मनुष्य जाति ही उनका कुटुम्ब है।"

समाजिक कर्तव्य का मौलिक नियम यह है—आपके सब विचारों और कार्यों से मनुष्य जाति के सुख में बिना किसी जाति और राष्ट्रीयता का विचार किये वृद्धि होनी चाहिये। अपने को मनुष्य जाति के एक सम्पूर्ण रूप का एक छोटसा भाग समझो। इस समय आप मनुष्य जाति के $\frac{१}{२,०००,०००,०००}$ वें भाग हो। जिस बड़े समाज की दृष्टि से आपके सब विचारों और कार्यों का अनुमान करके उन पर विचार किया जावे। उसको अपनी दृष्टि से कभी ओझल मत होने दो। सामाजिक कर्तव्य की जांच की कसौटी यही है कि आप सम्पूर्ण मनुष्य जाति से छोटी किसी इकाई को न मानो। हम मनुष्य जाति के लिये उत्पन्न होते, जीते, विचार करते और कार्य करते हैं, और मनुष्य जाति के लिये ही हम मरते हैं।

पांच वृत्त

मनुष्य जाति के इस बड़े भारीं वृत्त के अन्दर प्रकृति ने आपके लिये उसी वृत्त वाले चार और केन्द्र बनाये हैं। प्रत्येक वृत्त पूर्णतया अपने से दूसरे वड़े वृत्त में आ जाता है और वह सभी सब से बाहिर के उस सब से बड़े वृत्त में हैं। तुम उन सब वृत्तों के केन्द्र हो। मनुष्य जाति के वृत्त में उन सभी वृत्तों का अन्तर्भाव हो जाता है। यह रेखागणित सम्बन्धी आकार उन पांचों संस्थाओं के चिन्ह हैं, जिन से तुम्हारा मनुष्य होने के नाते सम्बन्ध है। वह यह है—(१) कुटुम्ब, (२) सम्बन्धी, (३) म्यूनिसिपैलिटी. (४) राष्ट्र (५) विश्व राज्य।

कुटुम्ब—मनुष्य जाति की सेवा में कुटुम्ब आपके कार्य का सब से छोटा क्षेत्र हैं। इसमें आप, आपकी पत्नी और आपके बच्चों का अन्तर्भाव किया जाता है, यह वर्ग प्राणीविज्ञान सम्बन्धी स्वाभाविक इकाई है, पुरुष और स्त्री कामवासना और व्यक्तिगत प्रेम के कारण एक दूसरे के लिये आकर्षित होते हैं। उनके प्रेम की ज़मानत बच्चा होता है।

इन वर्गों के अतिरिक्त समय २ पर अन्य अनेक प्रकार के गर्वों को बनाने के प्रस्ताव किये गये हैं, किन्तु हमको उनके विवाद में पड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। प्लैटो की शिक्षा थी कि पति पत्नी और सन्तान तथा माता पिता के व्यक्तिगत बन्धन ने उनको समाज और और राज्य के प्रति अपने कर्तव्यों

को भुला दिया। उसने संरक्षक वर्ग के लिये पारिवारिक प्रथा को बन्द करने का प्रस्ताव किया, क्योंकि इससे स्वार्थपरता और समाज विरोधी प्रकृति उत्पन्न होती है। उसने लिखा है, "पिताओं, पुत्रियों तथा अन्य सम्बन्धियों का............बिलकुल ही पता नहीं लगना चाहिये।............यह राज्य के संरक्षकों में स्त्रियों और बच्चों का समाज है।" संयुक्त राज्य अमरीका में ओनीडा (Oneida) पूर्णतावादी समाज के संस्थापक जान हम्फ्री नॉएस स्त्री पुरुषों से दाम्पत्य जीवन व्यतीत करने के स्वभाव को छोड़ देने का विशेष आग्रह किया करते थे। वह एक विचित्र कार्यपद्धति के अनुसार सम्भोग करते थे और उनके बच्चे सार्वजनिक शिशुसंस्थाओं में पाले जाते थे। सी-नार्डाफ इन ईसाइयों साम्यवादियों के विषय में कहते हैं "उनमें एक प्रकार का मिश्रित विवाह होता था कि इस मिश्रित विवाह को उनकी समाज के सदस्य ही कर सकते थे। इसमें कोई भी स्त्री और पुरुष किसी अन्य पुरुष के द्वारा एक दूसरे की स्वीकृति प्राप्त करके बिना किसी गुप्त वार्तालाप अथवा कोर्टशिप के एक दूसरे के साथ स्वतन्त्रता पूर्वक सम्भोग कर सकते थे। वह दो व्यक्तियों के एक दूसरे के प्रति प्रेम के बडे भारी विरोधी थे।" अतएव उन व्यक्तियों और समाज में कोई संगठित 'पारिवारिक प्रथा' नहीं थी।

ईसाइयों और बौद्धों का मठ पद्धति में साधुओं को अविवाहित रहकर जीवन व्यतीत करना पड़ता था, जिससे वह बच्चों

अथवा परिवार दोनों से ही बचे रहते थे, इस अस्वाभाविक सीढ़ी पर वह अस्वाभाविक आत्म-संयम द्वारा कूदते जाते थे।

यह बात स्वीकार करने योग्य हैं कि यदि परिवार से अपने को अपने में ही समाप्त कर लिया जावे और उसको मनुष्यजाति की सेवा का साधन न बनाया जावे, तो उसकी पतन करने वाली संस्था के रूप में निन्दा करनी चाहिये। सभी अच्छी वस्तुओं के समान इसके अच्छे और बुरे दोनों प्रयोग हो सकते हैं। खेद है। कि इस समय स्त्री और पुरुष इस स्वाभाविक और आवश्यक संस्था के द्वारा बदमाशी निर्लज्जता और अपराधपूर्ण कार्यों का पाप कर रहे हैं। उनको वह मनोवैज्ञानिक रोग हो जाता है, जिसको गैटेनो मोस्का (Gaetano Mosca) ने पारिवारिकवाद (Familvism) कहा है। उनकी दृष्टि अपने छोटे से परिवार पर इतनी केन्द्रित हो जाती है कि उनको विश्व समाज उसी प्रकार दिखलाई नहीं देती जिस प्रकार आंख के सामने रक्खा हुआ पैसा सूर्य के बिम्ब को आंख से ओझल कर देता है। शारीरिक दृष्टि तथा प्राणी विज्ञान की दृष्टि से परिवार हमारे बहुत पास है, जब कि मनुष्य जाति कुछ दूर भावमय और अस्पर्श अनेक स्त्री पुरुष परिवार से अत्यधिक प्रेम करते हैं, इसके परिणाम स्वरूप वह मनुष्यजाति से बहुत कम प्रेम करते हैं। परिवार में अत्यधिक भक्ति रखने से स्वार्थपरता, लोभ, कमीनापन और दान न करने की प्रवृत्ति होती है। उद्योगी व्यापारी लोग मजदूरों पर कठोरता से अत्या-

चार करके लाखों रुपये जमा करते हैं। मजदूरों को तो वह निर्वाहयोग्य मजदूरी भी नहीं देते, जब कि उनके बहुव्ययी स्त्री बच्चे उस सब धन को विलासिता में ही उड़ा देते हैं। धनी स्त्री पुरुष अपनी सम्पत्ति उत्तराधिकारापन्न के द्वारा अपने पुत्रों पुत्रियों, भतीजों और भतीजियों के लिये छोड़ जाते हैं। इंगलैंड में उनकी सम्पत्ति का लगभग एक प्रति शतक ही सार्वजनिक संस्थाओं में व्यय होता है। इन अंकों से पारिवारिक अहंकार की कितनी खेदजनक कहानी का पता चलता है। अनेक स्त्रियां अपने बच्चों को कुछ विशेष लाभ करने के उद्देश्य से दूसरी स्त्रियों के बच्चों को किसी प्रकार से हानि पहुंचा दिया करती है, 'सौतियां मां' शब्द का तो अर्थ ही: निर्दयता बन गया है। सौन्दर्य प्रतियोगिता में से विरोधी उम्मेदवार की मातायें कभी कभी घूंसों से लड़ती और दूसरी के बालों को नोच लेती है। बेल्फास्ट के आम्स टामस ने निम्न शब्दों में शिशु प्रदर्शनों का विरोध किया है, "वह बिलकुल राक्षसी हैं। प्रत्येक माता यह समझती है कि प्रदर्शन में मेरा बच्चा ही सर्वोत्तम है, मैंने इसी प्रकार की एक प्रतियोगिता के अवसर पर एक माता को दूसरी के नेत्र को काले करते हुये देखा था।"

पारिवारिक अहंकार के कारण अनेक पुरुष अपने पड़ौसियों को लूट लेते हैं और उनकी सम्पत्ति को नष्ट कर देते हैं। प्रत्येक राजनीतिज्ञ के राज्य के व्यय पर अपने परिवार को लाभ पहुंचाने की प्रवृत्ति के कारण सार्वजनिक जीवन में सचाई का

मिलना असम्भवसा हो गया है। इस नैतिक पतन के कारण ही चीन, फारिस और भारतवर्ष जैसे देशों में सार्वजनिक भावना में बहुत धीरे २ उन्नति हो रही है। परिवारिक अहंकार के समाज में इस प्रकार गहरी जड़ जमाने के आतंक से समाज-वादी नेता राबर्ट ओवेन को इतना अधिक खेद हुआ कि उन्होंने हमारे 'घरों' को छल और स्वार्थपरता की गुफाएं बतलाया है। पारिवारिक वाद के बुरे प्रभावों से ही इंगलिश मुक्ति फौज की परिस्थिति अत्यन्त विषम हो गई थी। मार्कस औरीलियस ने अपने अयोग्य पुत्र कामोडस (Commodus) को अपने सम्राट पद का उत्तराधिकारी बनाया था। ओलीवर क्रामवेल ने एक राज-नीतिक वंश की स्थापना करके इंगलैण्ड में प्रजातन्त्र वाद को हानि पहुंचाई थी। आधुनिक समाज में भी विवाह और परि-वारिक जीवन ने अनेक उन्नतिशील आन्दोलनों से उनके सब से बड़े उत्साही आन्दोलकों को छीन लिया। विवाह से पूर्व अनेक स्त्री पुरुष अनुकरणीय उत्साह के साथ अनेक कार्यों और आदर्शों के लिये कार्य करते हैं, किन्तु जब उनकी चिन्ता और प्रेम के लिये एक परिवार हो जाता है तो वह उस उच्च कर्तव्य की उपेक्षा करने लगते हैं। विवाह ने अनेक उच्च आचरणों को नष्ट कर दिया। पी. जे. प्रोधोन को अपनी तीनों कन्याओं के साथ इतना अधिक आनन्द आता था कि वह विवाह के पश्चात सार्वजनिक सभाओं में कभी २ जाया करता था। मैं एक योग्य ग्रेजुएट को जानता हूं जिसकी पत्नी का देहान्त हो गया था।

उसके पश्चात् उसने साधारण जीवन व्यतीत करने और अपने को पूर्णतया सार्वजनिक आन्दोलनों में लगाने का निश्चय किया था। किन्तु दुर्भाग्यवश उसको फिर विवाह करने का प्रलोभन दिया गया और अब वह एक अच्छी पूंजी वाला सफल वकील है। जान स्टुअर्ट मिल ने एविग्नन (Avignon) जाने के उद्देश्य से इंगलैण्ड छोड़ा। उसकी पत्नी की मृत्यु यहीं हुई थी। उसने कब्रिस्तान के पास ही एक मकान बनवाया। यह वास्तव में ही कोमल भावों का अतिशयित रूप था। हर्बर्ट स्पेंसर ने घोषणा की थी कि यदि वह विवाह कर लेता तो वह विश्लेषणात्मक दर्शनशास्त्र पर अपने ग्रन्थ को कभी नहीं लिख सकता था। उसके अविवाहित जीवन ने जहां एक ओर साहस और समय दिया, वहां उसको सार्वजनिक भी बना दिया। मेरा एक अमरीकन चिकित्सक से परिचय है जो एशिया में प्रचार के लिये गया था किन्तु उसने अपने को उसी उद्देश्य वाली एक महिला के साथ विवाह बन्धन में बांध लिया। जब वह वहाँ की उष्णजल वायु में बीमार पड़ गई तो उसने अपने उस जीवन-कार्य को छोड़ कर उसके साथ अमरीका को वापिस आना ही अपना कर्तव्य समझा। इस प्रकार विवाह बन्धन ने एक स्वस्थ आदर्श-वादी को एक रोगी के साथ मिलाकर उसी प्रकार नष्ट कर दिया, जिस प्रकार रस्सी बांधकर ऊपर चढ़ने वाले को कभी कभी दूसरे निर्बल साथी के साथ रस्सी नीचे घसीट लाती है, अनेक वीर पुरुष स्त्री और बच्चों के कारण ही जेल और सम्पत्ति की

हानि से डरते है। विवाह उन सब को कायर बना देता है वास्तव में बैकन (Bacon) की इस उक्ति में कुछ तथ्य है— "स्त्री और बच्चों वाला अपने को सम्पत्ति के बदले बन्धक रख देता है, क्योंकि स्त्री और बच्चों के गुण अथवा दोष सभी प्रकार के बड़े कार्यों में बाधा होते है।" अथवा साइनिक (Cynic) लोगों के शब्दों में यह भी कहा जा सकता है "एक नवयुवक विवाह करके अपनी उन्नति को रोक लेता है।"

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि परिवारवाद एक भयंकर बुराई है, जो एक समान सामाजिक जीवन नहीं बनने देता, तब क्या हम यह कहें "परिवार का पतन हो?" क्या हम चीनी दर्शन शास्त्री मोती (Mo Ti) का अनुकरण करें, जो सब पुरुषों से समान रूप से प्रेम करने और किन्हीं माता पिता और कुटुम्बियों के लिये विशेष प्रेम न करने की शिक्षा देता था? इस अतिशयित कार्य को करने से पूर्व आपको दो बातों पर विचार कर लेना चाहिये, प्रेमियों (प्रेमी दम्पति) का सम्बन्ध स्वाभाविक और लाभदायक होता है। (२) माता पिता और बच्चे का सम्बन्ध भी स्वाभाविक और लाभदायक होता है। वह सम्बन्ध प्राणि-मनोवैज्ञानिक (Bio-Psychological) अथवा विशुद्ध मनो-वैज्ञानिक हो सकता है।

मेरा विश्वास है कि दाम्पत्य सम्बन्ध के नियम के अनुसार स्त्री और पुरुषों को दम्पति होने की स्वाभाविक प्रवृति होती है। (इस विषय में किसी ऐसे विशेष दाम्पत्य सम्बन्ध का विचार

नहीं किया जा सकता, जो स्थिर अथवा अस्थिर हो) वह नव-यौवन के पश्चात 'प्रेम में पड़ जाते हैं जैसा कि अरस्तू बहुत समय पूर्व कह चुका है कि प्रेम का एक प्रकार का अतिशय होता है जो एक समय में एक ओर को ही झुक सकता है उचित यही है कि प्रायः दम्पतियों के सम्बन्ध स्थायी ओंर शाश्वत हो। किन्तु युक्ति के सामने यह बात ठीक नहीं बैठती। अस्थायी अथवा स्थायी प्रेमी दम्पतियों के निर्माण में दिखलाई देने वाले प्राणि-विज्ञान तथा मनोविज्ञान सम्बन्धी कार्यों को पहचानना पर्याप्त है। ओनीडा समाज के अनुभव ने स्त्री और पुरुषों में इस शक्तिशाली आक्रमण के अस्तित्व को सिद्ध कर दिखलाया है। सी० नार्डोफ (C. Nordhoff) का कहना है " ओनीडा पूर्णता वादी लोगों ने उस प्रवृति को व्यवहारिक रूप में पाया है जिसे वह स्वार्थी प्रेम कहते हैं। वह प्रवृति दो व्यक्तियों का एक दूसरे के लिये प्रेम और उनकी एक दूसरे के प्रति सच्चा बना रहने की अभिलाषा है........ इस बिषय में उनके नवयुवक अनेक कष्ट भोग चुके है तो भी वह स्वार्थपूर्ण और पापमय होने के कारण इस प्रवृति की निन्दा करते हैं और उसको कठोरता से बन्द कर देना चाहते हैं।" जे० एच० नोएस (J. H. Noyes) ने समाज को अनेक 'दम्पतियों' और उनके 'घरों' में विभक्त करने वाले इस व्यक्तिगत प्रेम को रोकने के लिये अनेक कठोर नियम बनाये थे। प्रत्येक मनुष्य को एक स्त्री से एकान्त में वार्तालाप करने का निशेध किया गया। टहलने के

लिये समूह में टहलने का ही विधान किया गया। इस प्रकार भद्दे और कृत्रिम प्रतिबन्धों से स्त्री और पुरुष की दम्पति बनने की स्वाभाविक प्रवृत्ति को रोका गया। इस प्रकार के प्रतिबन्ध सदा यह सिद्ध करते हैं कि मूर्ख व्यवस्थापक प्रकृत्ति के विरुद्ध विद्रोह करके उसके नियमों को तोड़ रहे हैं। इस प्रकार की अत्याचार पूर्ण रीतियों से मानवी व्यक्तित्व का विकास नहीं होता इनसे वह केवल बिगड़ता और नष्ट होता है। प्रेम की प्रकृति एक का निर्वाचन करके उसी में सीमित रहने की होती है। यह केवल वासनामय सम्बन्ध को ही नहीं वरन् गहनगतम व्यक्तिगत प्रेम को भी उत्पन्न करता है। एक स्त्री और पुरुष के लिये यह सम्भव नहीं है कि वह प्रेम करके सम्भोग करें, फिर एक दूसरे में सामान्य मित्रों और साथियों की अपेक्षा अधिक रुचि न रखें। किन्तु नोयस अपने समाज में उस अस्वाभाविक तटस्थता को चलाना चाहता था क्योंकि वह 'दम्पतियों' और 'घरों' को मिटा डालना चाहता था। वह आत्मिक सीढ़ी पर चढ़ने की इतनी शीघ्रता में था कि उसने उसके स्वाभाविक लम्बे बासों में से ही एक को निकाल लिया। किन्तु यदि इस उन्नति को अनावश्यक रूप से कठिन कर दिया गया तो मनुष्य बड़े भारी गहन गड्ढे में गिर सकते हैं। मेरा विश्वास है कि यह पूर्णतावादी अत्यन्त योग्य कार्यकर्त्ता थे, किन्तु वह वास्तव में सुखी स्त्री और पुरुष नहीं हो सकते थे। वह दमन और पतन के अस्वाभाविक राज्य में रहते थे।

जिस प्रकार हम स्त्री पुरुष की विभिन्नता और प्रेम को स्वीकार करते हैं, उसी प्रकार हम को प्रकृति के दम्पत्ति-निर्माण-कारी नियम को भी स्वीकार कर लेना चाहिये। दोनों प्रेमियों का एक दूसरे से कुछ इस प्रकार का विशेष सम्बन्ध होना चाहिये, जो एक दूसरे का साथ करने में और एक दूसरे की सहायता करने में विश्वास और प्रगाढ़ आनन्द के रूप में प्रगट हो। प्रेम स्त्री और पुरुष में मित्रता का एक विशेषयुक्त रूप होता है। यही उनको दाम्पत्य सम्बन्ध में बांधता है, एलीज़बेथ बैरेट ब्राउनिंग ने व्यक्तिगत प्रेम की इस विशेषता को बड़े सुन्दर शब्दों में प्रगट किया है—

"यद्यपि सभी को तुमको स्वीकार करना चाहिये,
किन्तु कोई भी तुमको शब्दों में प्रगट नहीं कर सकता
प्रिय मैं तुमको इतना प्यार करती हूं,
कि केवल मैं ही तुमको प्यार कर सकती हूं।"

जिस प्रकार हम अपने व्यक्तिगत स्वत्वों की रक्षा के लिये किसी व्यक्ति का नाश नहीं चाहते, उसी प्रकार यह आवश्यक नहीं है कि परिवारवाद के भयंकर प्रभावों के मुक़ाबले के लिये दाम्पत्य सम्बन्ध को रोक दिया जावे। हम प्रत्येक व्यक्ति को विशाल मानव समाज की सेवा करने की शिक्षा देते हैं, हमको प्रत्येक दम्पत्ति को भी यही शिक्षा देनी चाहिये। किसी भी स्वाभाविक वर्ग को न तो मिटाना चाहिये. न उसकी निन्दा ही करनी चाहिये। उसको केवल सर्वोच्च विश्वजनीन सामाजिक

वर्ग—मनुष्य जाति—के आधीन कर देना चाहिये। इस प्रकार सभी छोटे २ वर्गों (परिवार, म्यूनिसिपैलिटी और राष्ट्र) को पूर्ण समाज के साथ बराबर एक रूप कर देना चाहिये। प्रकृति के न तोड़ने योग्य नियमों का अनुसरण करने में मनुष्य जाति को ही इन छोटे वर्गों अथवा भागों में बांट देना चाहिये। यह एक केन्द्रीय सम्पूर्णता ही उनको जीवनशक्ति और स्थायित्व प्रदान कर सकती है, उसके बिना यह भाग व्यर्थ, निरर्थक और प्रभावशून्य हैं। किन्तु यदि उन भिन्न २ प्रकार के भागों का दमन किया गया तो 'मनुष्य जाति' सभी प्रकार के सन्तोष योग्य और नैतिक प्रभाव से रहित हो कर निर्जीव भावमात्र रह जावेगी। इस मध्यवर्ती स्थानीय संस्थाओं के अभाव में समस्त विश्व की शुभकामना केवल समस्त विश्व के स्वार्थ में परिणित हो जावेगी। जो कोई भी सब किसी से प्रेम करने का दावा करता है, वास्तव में किसी से प्रेम नहीं करता। उसके सामाजिक विचार 'मनुष्य जाति' के विशाल शून्याकाश में वाष्प बन कर खो जावेंगे। यदि सभी दम्पति अपने को मनुष्थ जाति की सेवा के लिये समर्पित करके अपने व्यक्तिगत सम्बन्ध को खोखला बना लें तो परिवार पृथ्वी के समस्त मनुष्यों को प्रेम की स्वर्णमय जंजीर में बांधने की एक कड़ी बन जावेगा। दाम्पत्य-अभिमान के दोषों से सावधान रहो। अपने को केवल अपने दोनों के संसार में ही बन्द मत रखो, केवल अपनी ही सफलता और प्रसन्नता के उपाय मत सोचो। धन के लिये अत्यधिक चिन्ता

मत किया करो। आपके इस प्रेम बन्धन में पड़ने से पूर्व जो आपके मित्र थे उनकी उपेक्षा मत करो। इस समय एक दूसरे के साथ अधिक समय व्यतीत करने की इच्छा से सामाजिक जीवन से विराम मत लो। उन्नतिशील कार्यों में अपने भाग के कार्य और धन को देने में कंजूसी मत करो। एक दूसरे के विषय में अधिक गुलगपाड़ा मत मचाओ। इस बात को स्मरण रखो कि मनुष्यों में एकमात्र आपका पति ही सब से अधिक महत्वपूर्ण है और स्त्रियों में एकमात्र आपकी स्त्री ही सब से अधिक आश्चर्यजनक है। एक दूसरे का अधिक मूर्ति तथा आदर्श न मान लो। ईर्ष्यालु तथा छोटे मन वाले मत बनो। अपनी अनुपात बुद्धि को मत खोओ, दम्पति के रूप में अपने योग्य कार्य को ही करो, उससे अधिक नहीं। यदि आपका प्रेम आपको पहले से अधिक स्वार्थी और लोभी बनाता है, तो यह एक बुरी बात है। सत्य प्रेम को सदा ही व्यक्तित्व की उन्नति करनी चाहिये, न कि अवनति। यही उसका योग्य कार्य है। इससे स्त्री और पुरुष दोनों को ही अपने शरीर और मन को अधिक से अधिक उत्तम उपयोग करने का उनको समाज की उन्नति में दत्तचित्त होकर लगने का साहस मिलना चाहिये। यदि आप प्रेम को अपने आधीन बनाये रखते हो तो वह आपके आदर्श के मार्ग पर बढ़ने के कार्य को सुगम कर देता हैं; किन्तु यदि आप उसके दास बन जाते हो तो वह आपको उस मार्ग से उठा कर फेंक भी सकता है। अन्तःकरण अपनी चिरस्थायी

शान से प्रेम से भी ऊपर और व्यक्तिगत आनन्द से भी दूर बैठा हुआ है। अन्तःकरण मार्ग-प्रदर्शक है, प्रेम को उसका अनुसरण करना ही चाहिये। इसी परीक्षा को प्रत्येक दम्पति के जीवन पर लागू करो—क्या प्रेम ने उनकी शारीरिक और नैतिक उन्नति की है? अथवा उसने उनको पहले से अधिक गिरा दिया है? इस बात को स्मरण रखो कि आपमें से प्रत्येक एकमात्र एक दूसरे की ही सम्पत्ति नहीं है। आपमें से प्रत्येक पहिले समाज का है, और फिर बाद में किसी दूसरे का है. प्रेम स्वयं एक परिणाम नहीं है; यह एक सामाजिक परिणाम को प्राप्त करने का साधन है, उद्देश्य यह होना चाहिये कि वैवाहिक जीवन में पूर्ण, अथवा अधिक से अधिक एकरसता प्राप्त की जावे। किन्तु आप स्थायी एकरसता नहीं ला सकते तो दाम्पत्य सम्बन्ध में बँधना व्यर्थ है, मैं एक बुद्धिमान स्त्री की उक्ति को स्वीकार नहीं करता, "बिलकुल विवाह न करने से तो दुखी विवाहित जीवन कहीं अच्छा है।" यदि स्वभाव और विचार न मिल सकें तो ये कहीं अच्छा है कि विवाह-विच्छेद करके पृथक् २ रहा जावे। किन्तु एकरसता उद्योग करने से लाई जाती है, अपने आप नहीं आया करती। एक दूसरे के व्यक्तित्व का सम्मान करो, अपनी इच्छा को अपने दूसरे भागीदार पर जबरदस्ती मत लादो। लेसिंग की इस उक्ति को कभी मत भूलो, "समानता सदा ही प्रेम का सब से प्रबल बन्धन है।" जब तक आपको इसमें किसी भयंकर आपत्ति की सम्भावना दिखलाई न दे एक

दूसरे की बात और प्रस्तावों को स्वीकार करने के लिये सदा तयार रहा करो। दैनिक कार्यों में एक दूसरे की इच्छानुसार चलो, अनेक दम्पति तनिक २ सी बातों पर झगड़ा किया करते हैं, चिड़चिड़ेपन को एक मीठी मुस्कराट से टाल दो और सभी शिकायतों का उत्तर मित्रतापूर्ण मौन से दो। सदा कोरा उत्तर देने का उद्योग मत करो। सत्य प्रेम की वृद्धि के साथ २ बिना कहे हुए ही दैवी इच्छाएं होनी चाहियें, उनको परिस्थिति तथा अवसर के अनुसार पूर्ण करते रहो। व्यक्तिगत झगड़ों को कम से कम करो। प्रेम विवाहित जीवन को आरम्भ करता है. किन्तु निःस्वार्थता उसको पुनरुज्जीवित और दीर्घजीवी करती है, दम्पति का आनन्द आचरण पर निर्भर है, प्रबल भावों और वासनाओं पर नहीं। गाएथे ने जो कुछ स्वतन्त्रता और जीवन के सम्बन्ध में कहा है. वह प्रेम के सम्बन्ध में भी सत्य है, आपको उसे प्रतिदिन नये सिरे से जीतना चाहिये। उस पर प्रतिदिन किस प्रकार विजय प्राप्त की जाती है ? विचार शब्द और कार्य में निःस्वार्थ बनने से। उच्च उद्देश्यों के लिये एक साथ काम करो। एक साथ पढ़ो; सभा समितियों में एक साथ जाओ; निर्धन और रोगियों की एक साथ सेवा करो; प्रकृति का अध्ययन एक साथ करो, रचनात्मक कार्य एक साथ करो, नये विचारों पर एक साथ वादविवाद करो; उनको एक साथ ही स्वीकार करो अथवा उनका निषेध करो; एक साथ यात्रा करो, एक साथ सङ्गीत का आनन्द लो; जो भी कोई अच्छा काम हो, एक साथ करो; इस प्रकार

जब तक आपकी यात्रा पूर्ण न हो अवस्था में भी एक साथ बढ़ते रहो।

जिन प्रसिद्ध दम्पतियों ने उच्च उद्देश्यों और आदर्शों की प्राप्ति में एक दूसरे को सहायता दी है उनके विषय में प्रायः सोचते और वार्तालाप करते रहा करो। जिस आयु में अनेक स्त्रियां उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं करतीं उस अवस्था में क्रेट्स (Crates) और हिप्पार्चिया (Hipparchia) दार्शनिक साथी थे। उसके विषय में डायोजीन्स लेर्शियस का कहना है, "वह क्रेट्स के व्याख्यानों और उसके जीवन से उस पर आसक्त हो गई। अब उसने अपने किसी भी प्रार्थी की बात पर ध्यान देना बन्द कर दिया। उनकी सम्पत्ति, उनका उच्च वंश अथवा उनका सौन्दर्य उसको किसी प्रकार आकर्षित न कर सका। किन्तु क्रेट्स उसके लिये सब कुछ था। वह अपने माता पिता से स्पष्ट कह दिया करतीं थी कि या तो उसका विवाह क्रेट्स के साथ किया जावे, अन्यथा वह आत्मघात कर लेगी। अन्त में उसके माता पिता की प्रार्थना पर क्रेट्स ने स्वयं उसको इस मार्ग से रोकने का प्रयत्न किया। किसी प्रकार भी उसको राज़ी करने में असमर्थ होने पर वह उठा, उसने उसके सामने ही अपने कपड़े उतारे और कहा, "यही वह दुल्हा है, यही उसकी सम्पत्ति है। आप यदि चाहो तो इसे पसंद कर सकती हो, क्योंकि यदि आप मेरे विचारों में भाग न लो तो आप मेरी सहायक न हो सकोगी।" लड़की ने उसी को पसंद किया। वह

उन्हीं वस्त्रों को पहिन कर अपने पति के साथ चली और उसके साथ खुले आम रहने लगी। मनोंडर निम्नलिखित कविता में उसकी ओर संकेत करता है:—

'तुम मेरे साथ उसी प्रकार एक अंगरखा पहिन कर जाओगी'
'जिस प्रकार एक बार क्रेंटस के साथ उसकी पत्नी गई थी'

सेंट लूचेसियो (St. Lucchesio) और उसकी पत्नी बोना डोना (Bonna Donna) सेंट-फ्रांसिस के शिष्य थे। वह एक साथ ही निर्धन की सेवा करते थे और एक साथ ही मरे। पी० सैबैटियर (P. Sabatier) कहता है, "उसकी पत्नी बोना डोना उसके साथ सबसे अच्छा परिश्रम करती थी। जब १२६० में उसने उसको क्रमशः क्षीण होते हुए देखा तो वह अपने शोक के प्रबल बेग को सहन न कर सकी........जब उसने देखा कि उसके प्राण निकल गये, तो वह उसके ऊपर क्रौस (Cross) का एक चिन्ह बना कर उसकी बग़ल में लेट गयी और सदा के लिये गहन निन्द्रा में सो गई।"

आधुनिक समय में भी अनेक दम्पति सेवा और सफलता में एक साथ रहे हैं। अपने विवाह दिन को प्रत्येक वर्ष अपने मित्रों के साथ मनाना बड़ा उत्तम विचार है। उस समय आप अत्यन्त प्रसन्नता से वास्तव में ही स्पेंसर की इस कविता को दोहरा सकते हैं:—

"अतएव इस जन्म भर पूरे दिन भर दावत करते रहो,
यह दिन मेरे लिये सदा ही पवित्र दिन हैं।"

प्रेम दम्पति को बनाता और दम्पति बच्चों को उत्पन्न करते हैं। लांगफेलो ने कहा कि बच्चे 'जीवित कविता' होते हैं, और वास्तव में वह ऐसे ही होते हैं। बच्चे हमारे अविनाशी पन की ज़मानत होते हैं; हम उनके द्वारा ही मृत्यु पर विजय प्राप्त करते हैं। यदि आपके अपने बच्चे न हों, तो आपको भावी जाति में अपना भाग बनाने के लिये कम से कम एक को गोद ले लेना चाहिये। जिस दम्पति के कोई बच्चा नहीं होता, अथवा जो किसी बच्चे को गोद नहीं लेते, वह नगर में एक ऐसी अंधीगली के समान हैं, जो कहीं नहीं पहुंचाती। उनकी तुलना जीवन की सदा और स्वतंत्र रूप से बहने वाली धार के किनारे पर एक छोटे से बन्द तालाब से की जा सकती है; किंतु खेद है कि वह उससे बञ्जर तटस्थता के रूप में प्रथक रहते हैं। पितृभाव का आधार शारीरिक होने के साथ मनोवैज्ञानिक भी होता है। बच्चों के बिना जीवन वास्तव में ही नंगा और रूखा होता है। इस विषय में बर्ट्रेंड रसेल जैसे प्रसिद्ध वैज्ञानिक और दार्शनिक ने भी घोषणा की है, "मैं तो अपना अनुभव यही बतलाता हूँ कि मैं ने किसी अन्य परिस्थिति की अपेक्षा पितृभाव में अधिक आनन्द का अनुभव किया।" मेरा एक सौदागर से परिचय है, जिसने पैंतालीस वर्ष की आयु में विवाह किया। उसके दो बच्चे हैं। उसने अपने अतीत जीवन का वर्णन करते हुये कहा, "कुमारावस्था में मैं समझता था कि मैं अपने क्लब, अपने कुत्तों और अपनी प्रेम किलोलों

में बिल्कुल प्रसन्न था; किंतु मेरे बच्चे नहीं थे, मैं नहीं समझता कि मुझ में क्या त्रुटि थी।" यदि अपने विवाह के प्रथम वर्ष आपको बच्चे और मोटरकार में से एक का निर्वाचन करना पड़े तो आपको बच्चे को ही पसन्द करना चाहिये; इससे आपको अधिक आनन्द आवेगा।

ईस्चाइलस का कहना है कि हमारे बच्चे ही हमको अमर करते हैं —

"बच्चे ही मृतक के नामको अंधकार में लुप्त होने से बचाते हैं,
वह मछली मारने के जाल में लगने वाले काग के समान होते हैं,
सन की बनी हुई अन्य रेखायें गहन समुद्र में मिट जाती हैं।"

बचपन के आधुनिक कवि विक्टर ह्यूगो ने कहा है—

"हे बच्चे ! यदि मैं राजा होता तो अपने साम्राज्य,
अपने राजदंड, अपने रथ के सामने
झुकने वालों, अपने सोने के मुकुट,
और अत्यन्त विस्तीर्ण समुद्र में घूमने वाले अपने समुद्री जहाजों को
हे बच्चे ! तेरी एक मुस्कान पर न्योछावर कर देता।"

माता पिता सम्बन्धी भाव हमारे सन्मुख गहन भावों और रचनात्मक कार्यों के एक नवीन संसार को उपस्थित करते हैं। यह विकास के लम्बे चौड़े परिश्रम की सफलताओं की मुकुटमणि हैं। मछलियों तथा सरीसृपों की अपेक्षा उच्चकोटि के स्तन-पोषित प्राणी पितृभाव के आनन्द और उत्तरदायित्तव को अधिक समझते हैं। स्त्री और पुरुष में पिता और माता सम्बंधी

प्रेम का भाव इतनी उच्च शक्ति प्राप्त कर लेता है कि वह सुगमता से एक सामाजिकता विरोधी शक्ति बन जाता है। माता पिता अपने बच्चे को असीम चिंता और आत्म-बलिदान से इस कारण पालते हैं कि वह उनसे अपने हृदय, मन और आत्मा से अत्यधिक प्रेम करते हैं। किंतु यह गहन, अपरिमेय, और अतृप्य स्नेह अपने बच्चे के लिये कुछ सुविधाओं को प्राप्त करने के लिये मनुष्यजाति के सब से बड़े हित को भी हानि पहुंचाने अथवा उससे उपेक्षा करने को उकसा सकता है। वह यह भूल जा सकते हैं बच्चे अन्य भी लाखों हैं और राज्य को उन सभी के लिये निष्पक्षपात हो कर समानता से व्यवहार करना चाहिये। इस माता पिता सम्बन्धी प्रेम का शक्तिशाली मौलिक शक्ति से तीन प्रकार से व्यवहार किया जा सकता है।

(१) स्त्री और पुरुष को पालने और प्यार करने के लिये कोई और बच्चा दे दिया गया हो, जो उनका अपना न हो।

इस विषय में प्राणिविज्ञान सम्बन्धी तर्क को छोड़ कर केवल मनोवैज्ञानिक आवश्यकता को ही पूर्ण किया जावेगा। सभी माता पिता को प्रसन्न रहने के लिये बच्चों के लिये कुछ न कुछ अवश्य करना चाहिये। यदि उनको अन्य नागरिकों के बच्चे पालने के लिये दे दिये जाते हैं तो वह उनको निश्चय ही पालें और प्रेम करेंगे, क्यों कि उनके साथ केवल यही बच्चे रहेंगे। यह कहना मानव स्वभाव की अनुचित निंदा करना है कि औसत नागरिक दूसरों के बच्चों के प्रति निर्दय अथवा

उदासीन होते हैं। प्रत्येक स्त्री अथवा पुरुष की रचना इस प्रकार की है कि उसके कम से कम एक बालक के साथ कोमल प्रेम का व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित करना ही पड़ता है। हमारी जाति के हित के लिये यह प्रकृति का रहस्यपूर्ण और आश्चर्य-जनक उपाय है, माता पिता सम्बन्धी प्रेम — जिसका आधार केवल शरीर कार्य विज्ञान होता है — अंधा, क्रोधी, हृदय विदारक हो सकता है। किंतु यदि उसका सम्बन्ध केवल मनोवैज्ञानिक आवश्यकता से होता है तो वह सम्भवतः ऐसे मिष्ट तथा कोमल भाव के रूप में प्रगट होगा, जो किसी प्रकार के भी सामाजिकता विरोधी परिणाम को उत्पन्न नहीं कर सकता। इस बात की जांच करना अत्यंत कौतुकपूर्ण होगा कि एक गोद लिये हुये बच्चे के लिये पुरुष अथवा स्त्री का प्रेम औसत माता पिता के अपने बच्चे के प्रेम से किस बात में भिन्न है। इन दोनों भावों में एक मौलिक अन्तर होना चाहिये। यदि किसी विवाहित दम्पति से एक गोद लिये हुये बच्चे को पालने को कहा जावे तो सम्भवतः वह आधुनिक समाज को हानि पहुंचाने वाले भयंकर परिवारवाद से प्रमाणित हुए तथा उसका दास बने बिना ही माता पिता सम्बन्धी प्रेम के पूर्ण आनन्द का अनुभव और उनके कर्तव्य का पालन करेंगे। वह बच्चे से प्रेम करेंगे, किंतु वह उस एक बच्चे के स्वत्व को बढ़ाने के लिये न तो अन्य बच्चों के अधिकारों को हानि पहुंचावेंगे और न राज्य के नियमों का उल्लंघन करेंगे। वह विश्वसमाज के स्वीकृत

सामाजिक उद्देश्यों के अनुसार एक मत होकर उस बच्चे का अधिक से अधिक हित करेंगे। उनका पितृ प्रेम इस प्रकार "सामाजिक रूप धारण कर लेगा' और वह भाग (परिवार) सम्पूर्ण (अर्थात् मनुष्य जाति) के उद्देश्यों की आंशिक रूप में सेवा करेगा। वर्तमान समय में अधिकांश जनता उस सम्पूर्ण की अपेक्षा उस भाग को कहीं बड़ा समझती है।

(२) कुछ समाजविज्ञान वादियों ने व्यक्तिगत पितृ सम्बन्ध के पूर्णतया दमन करने का प्रस्ताव किया है। वह सब बच्चों का एक सार्वजनिक शिशु पोषण संस्था में इस प्रकार के विशेष शिक्षित अधिकारियों के निरीक्षण में पालन करना चाहते हैं, जो बिना व्यक्तित्व का पक्षपात किये उनका उस प्रकार पालन पोषण करें, जिस प्रकार प्राणिविज्ञान के बगीचे (Zoological Garden) के अधिकारी किया करते हैं। किसी वयस्क स्त्री पुरुष को किसी बच्चे के साथ प्रेम का व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित नहीं करने दिया जावेगा और न कोई बच्चा किसी व्यक्ति से 'पिता' अथवा 'माता' के समान प्रेम अथवा सम्मान कर सकेगा। यह विधि न्याय के अनुमान अथवा गणित की विधि के समान सीधी सादी है। किन्तु यह इस महान् सत्य की उपेक्षा करती है कि मानव जीवन तर्कशास्त्र अथवा गणित की अपेक्षा अधिक व्यामिश्रित है। हम दो मौलिक प्रश्न करना चाहते हैं, (क) क्या वयस्क स्त्री पुरुषों की प्रसन्नता और उन्नति की दृष्टि से यह आवश्यक है अथवा नहीं, कि वह यदि अधिक नहीं तो कम से

कम एक बच्चे से अवश्य ही व्यक्तिगत प्रेम करें और उसको पालें? (ख) क्या बच्चे की प्रसन्नता और उन्नति के लिये यह आवश्यक है अथवा नहीं, कि उससे एक दम्पत्ति द्वारा व्यक्तिगत रूप से प्रेम किया जावे और उसका पालन किया जावे और वह उसके प्रेम का प्रत्युत्तर देते रहें? मेरा उत्तर दोनों प्रश्नों के लिये विध्यात्मक होगा? यदि स्त्री, पुरुष और बच्चे सर्व-सामान्य यन्त्रीय प्रणाली के अनुसार रहेंगे तो सम्भव है कि उनमें पारिवारिक-अभिमान न आवे, किन्तु वह मनुष्य जाति के शोकग्रस्त नमूने होंगे। उनमें सभी प्राणियों के अङ्ग-भङ्ग किये जाने के भद्दे धब्बे होंगे। यह हो सकता है कि कैथोलिक साधुओं और साध्वियों के समान वह पूर्ण मनुष्य और स्त्री पुरुष के रूप मे बढ़ने की इच्छा न करके कुछ दोषों और बुराइयों से बच जावें। किन्तु हमारा उद्देश्य पूर्णतया विकसित स्त्री और पुरुषों को पूर्ण विध्यात्मक और कार्यकारी गुणों को पसन्द करना है। हम स्त्री और पुरुषों के अर्द्धविकसित हास्य चित्रों में अपूर्ण, प्रतिषेधात्मक और दूसरों से कार्य कराने वाले गुणों को पसन्द नहीं करते। जिन स्त्री पुरुषों के किसी बच्चा को अपना कहने का अधिकार न होगा वह उदास, आत्म-केन्द्रित और असावधान प्राणी होंगे। जो बच्चा अपने में विशेष रूप से आसक्त दम्पति द्वारा नहीं पाला जाता वह बलिष्ट, स्वस्थ और औसत वयस्क के रूप में उन्नति नहीं कर सकता। जिस प्रकार पौदों को धूप की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार मानव-जीवन

को व्यक्तिगत भावों की आवश्यकता है। यदि किसी बच्चे से प्रेम को छीन लिया जावे तो वह अधिक से अधिक वैज्ञानिक पोषणग्रह में भी पुष्ट नहीं हो सकता। वास्तव में सार्वजनिक संस्थाओं में पाले जाने वाले अनाथों में उन गुणों का विकास नहीं होता जो व्यक्तिगत प्रेम में पलने वालों में प्रगट होते हैं। बुद्धिमान और हँसोड़ अध्यापक बर्नार्ड शा कहता है, "संस्थाओं में पलने वाले बच्चे—जिन पर केवल इतना ही ध्यान दिया जाता है, जिसे अज्ञानी लोग आवश्यक ध्यान कहते हैं—प्रायः मर जाते हैं, जब कि घर के बच्चे—जिनके साथ खेला जाता है, जिनको थपथपाया जाता, आदर से पाला जाता, उछाला जाता और लोरी देकर सुलाया जाता है—एक या दो गन्दे चिथड़ों में लिपटे होने पर और एक छप्पर के तङ्ग तथा गन्दे मकान में पलने पर भी जी जाते हैं।" अतएव इस सब से यह परिणाम निकाला जा सकता है कि सभी बच्चों की योग्य वृद्धि और बड़ों की प्रसन्नता के लिये माता-पिता और बच्चे के व्यक्तिगत सम्बन्ध का होना अनिवार्य है। उस सार्वजनिक विधि को अवैज्ञानिक और सत्यानाशी समझ कर छोड़ देना चाहिये।

(३) स्त्री और पुरुष आजकल के समान अपने ही बच्चों को पालें, किन्तु वह पारिवारिक-अभिमान को रोकना सीखें।

माता-पिता स्वभाव से ही अपने बच्चों से प्रेम करते हैं। हमारा काम उनको अत्यधिक प्रेम न करने की शिक्षा देना है। आपको अन्धी प्रकृति के अत्यधिक कार्य को कम करना चाहिये।

आपको उन महान् स्त्री पुरुषों के विषय में विचार करना चाहिये, जिनके अपने परिवार थे, किन्तु जिन्होंने परिवारवाद की वेदी पर समाज के सब से अच्छे स्वत्वों का बलि नहीं दिया। गौतम बुद्ध ने अपने अध्यात्मिक अन्वेषण के मार्ग पर चलने के लिये अपने परिवार को छोड़ दिया। इसके पश्चात् उसने अपनी स्त्री और पुत्र के भी निर्धनता को स्वीकार करके अपने आपको मनुष्यजाति की सेवा के लिये अर्पण करने का अनुरोध किया। इस मामले में सच्ची सामाजिक भावना में परिवार को समाज के आधीन कर दिया गया। सुकरात की पत्नी अत्यन्त प्रसिद्ध थी, उसके बच्चे कम प्रसिद्ध थे, उसने उनके लिये कभी धन की इच्छा नहीं की। उसने अपने सिद्धान्त के अनुसार निर्धनता का ही जीवन व्यतीत किया और वह निर्धनता में ही मरा। रोम की कहानियां उन स्त्री पुरुषों के कार्यों से प्रकाशित हैं. जिन्होंने अपने परिवार को बड़े समाज के आधीन कर दिया था, जो इस मामले में हमारे आदर्श का विश्वजनीन मानव समाज न हो कर केवल राष्ट्र ही था। किन्तु उसमें सिद्धान्त वही था, प्राणिविज्ञान सम्बन्धी दाम्पत्य भाव से उत्पन्न हुए पारिवारिक अहङ्कार को विशाल राजनीतिक वर्ग के स्वार्थ के लिये दबा दिया गया था। आपको सामाजिक कर्तव्य की रोमन भावना को हृदयंगम कर लेना चाहिये, किन्तु रोमनों के राष्ट्रीय अहंकार को छोड कर उसके स्थान में विश्व-साम्राज्य के प्रति भक्ति को स्थापित करना चाहिये। वास्तव में रोमनों, अंगरेजों, फ्रांसीसियों,

जर्मनों, इटलीवासियों तथा अन्य युद्धप्रिय सुसंगठित जातियों में पारिवारिक अहंकार केऊपर राष्ट्रीय-अहंकार की विजय यह सिद्ध करती है कि उच्च सामाजिक वर्ग की सेवा के लिये पारिवारिक प्रेम को दबाया जा सकता है। इस उच्च वर्ग को तब तक बड़ा करते जाओ जब तक कि समस्त मनुष्य जाति उसके अन्दर न आजावे और वह नैतिक आदर्श को न समझ ले। लाइबी (Livy) ने टीटस मैनलियस (Titus Manlius) की भयंकर कहानी का इस प्रकार वर्णन किया हैं—

"कौंसल लोगों ने यह आज्ञा निकाली थी कि अपने स्थान से बाहिर शत्रु से कोई भी युद्ध न करे......... कौंसल का पुत्र टीटस मैनलियस अपनी सेना सहित शत्रु के शिविर के पीछे गया........ उस स्थान में जेमिनस मेशियस की अध्यक्षता में टस्कुलन रिसाला था। .... जेमीनस ने अपने दल से कुछ आगे निकल कर मैनलियस से कहा, "क्या तुम तब...... मेरे साथ अखाड़े में उरना चाहते हो?" अपने पिता और कौंसल की आज्ञा को भूल कर वह उस युद्ध में कूद ही पड़ा।........ मैनलियस ने अपने शत्रु के गले को छेद डाला, फिर वह अपनी सेना सहित अपने शिविर में वापिस आया और वहां से अपने पिता के पास गया।........ वह कहता है, "पिता, ललकारा जाने पर मैंने अपने शत्रु को मार डाला और उससे घुड़सवारी के इस सामान को छीन लिया।" जब कौंसल ने यह सुना तो उसने अपने पुत्र की ओर से मुख फेर कर एक

नरसिंघा बजा कर तुरन्त ही सभा बुलाई। जब सभा एकत्रित हो गई, तो उसने कहा, "हे टीटन मैनलियस, तुमने शत्रु के साथ अपने स्थान से बाहिर युद्ध करने के कारण……… इस बात की आवश्यकता उत्पन्न कर दी है मैं या तो प्रजातन्त्र या स्वयं अपने आप और अपने परिवार सब को भूल जाऊँ।………… या तो तुम्हारी मृत्यु से कौंसलों के अधिकार की रक्षा की जानी चाहिये, अथवा तुमको क्षमा करके उसको तोड़ देना चाहिये। जाओ और उसको काठ से वांध दो।" इस इतनी निर्दय आज्ञा से विनयानुशासन की अपेक्षा भय के कारण सभी चुपचाप खड़े रहे।

यूनानी इतिहास में टाइमोलियन ने सामाजिक कर्तव्य के ऊपर भ्रातृ प्रेम को नहीं चढ़ने दिया। उसके भाई टाइमोफेन्स ने कोरिन्थ की प्रजा पर अत्याचार किये थे। टाइमोलियन ने उससे इसकी शिकायत करने का उद्योग किया, एक बार वह उसके पास अपने दो मित्रों के साथ गया। प्लूटार्च कहता है, "इस समय टाइमोफेन्स के चारों ओर तीन मनुष्य खड़े थे, उन्होंने अब भी उससे युक्ति पर ध्यान देने और अपनी अभिलाषा के लिये पश्चात्ताप प्रकट करने के लिये कहा, किन्तु टाइमोफेन्स पहले तो उन पर हँसा और फिर नाराज़ होकर क्रोध में भर गया। टाइमोलियन एक ओर को थोड़ा पीछे हट को कर अपना मुख ढांप खड़ा रहा। जब कि शेष दोनों अपनी २ तलवारें निकाल कर उसके टुकड़े २ कर दिये। कोरिन्थ वासियों ने बदमाशी का बिरोध करने और उसकी आत्मा की महानता

के लिये टाइमोलियन की बड़ी प्रशंसा की।"

ईसाई सम्प्रदाय के जन्म लेने से यह प्रगट हो गया कि स्त्री और पुरुष 'धर्म' और 'हमारी पवित्र माता' के नाम पर बड़े समाज की सेवा में पारिवारिक-अभिमान को जीत सकते थे। अनेक स्त्री बच्चों वाले उत्साही ईसाइयों ने इच्छापूर्वक हँसते हँसते प्राण दे दिये। इस आदर्श का सब से उच्चकोटि का उदाहरण सेंट परपेटुआ (St. Perpetua) ने दिया, जो अपने छोटे से बच्चे को छोड़ कर प्राचीन ईसाइयत के अनुसार न्याय और समानता के लिये मर गयीं। वह बीस या बाईस वर्ष की उच्च शिक्षा प्राप्त विवाहित स्त्री थी। उसके माता पिता जीवित थे उसके दो भाई थे और एक बच्चा था, जो इतना छोटा था कि दूध पीता था। वह गिरफ्तार कर ली गई। उसने ईसाई धर्म छोड़ने से इंकार कर दिया, अन्त में वह सन् २०२ के लगभग जान से मार डाली गई। पहिले उसको एक मरखनी गाय से ज़ख्मी कराया गया और फिर वह मार डाली गई। एक प्राचीन पुस्तक में उसकी मनुष्योत्तर मनोवृत्ति का उसी के शब्दों में वर्णन किया गया है, "अत्याचारियों द्वारा पकड़ी जाने पर मेरे पिता ने मुझको फिर भी धर्मविमुख करने की चेष्टा की।……… कुछ दिनों के पश्चात हमको अँधेरे कारागार में डाल दिया गया, मैं अपने बच्चे को जेल में अपने पास रखकर दूध पिलाने की अनुमति ले ली।…… ..एक दिन अचानक हमको मुकदमे की सुनवाई के लिये टाउनहाल पहुंचाया गया। मैंने अपनी मां से

बच्चे की चिन्ता का वर्णन किया। मैंने अपने भाइयों को धैर्य दिया और अपना बच्चा उनको दे दिया। हम चबूतरे पर चढ़ गये। पेशकार ने कहा, "अपने पिता के सफेद बालों का ध्यान कर, अपने पुत्र की बाल्यावस्था का ध्यान कर। सम्राटों की शुभ कामना के लिये बलिदान कर। मैंने उत्तर दिया, "मैं ऐसा नहीं करूंगी।"

गुरु गोविन्दसिंह मुग़लों के विरुद्ध छेड़े हुए अपने युद्ध में अपने चारों पुत्रों का बलिदान कर दिया। उसने उनको आपत्ति तथा मृत्यु से बचाने की चेष्टा नहीं की। रूसो ने पितृ प्रेम के लिये अपने हृदय को पत्थर का बना लिया। उसने अपने अग्निमय सन्देश के प्रचार के लिये अपने पांचों पुत्रों से जन्म भर प्रथक् रहना स्वीकार किया। एक बड़े परिवार का पिता पाइरे लेरौक्स (Pirre Leroux) विदेशों में दरिद्रतापूर्वक रहा और प्रजातन्त्र तथा समाजवाद की सेवा करता रहा। कार्ल मार्क्स और उसकी पत्नी जेनी ने लन्दन में बड़े २ कष्ट सहे। उनके बच्चे रोटी की तलाश में प्रायः भूखे ही बाहिर निकल जाया करते थे। किन्तु उन्होंने मनुष्य जाति के हित के लिये पारिवारिक स्वार्थ का प्रसन्नतापूर्वक बलिदान कर दिया था। यह बच्चे निर्धनता और सादगी में पाले गये, और वह जेनी, लौरा और एलीनर भी समाजवाद की सेवा में ही अपने माता पिता के समान लग गये। सब से उच्चकोटि के नैतिक आदर्श मी भावना से समस्त परिवार के सेवा में लग जाने का

यह प्रतापी उदाहरण है। इस परिवार ने अपने को पारिवारिक अभिमान से पूर्णतया मुक्त कर लिया था। महान् स्त्री और पुरुष अपने परिवार की अपेक्षा मनुष्यजाति से अधिक प्रेम करते हैं। आपको भी इसी प्रकार बन जाना चाहिये। पारिवारिक जीवन नैतिक उन्नति के मार्ग में एक अजेय बाधा नहीं होना चाहिये। स्त्री और पुरुष प्रेम तथा आनन्द करने के लिये परिवार के होने पर भी पारिवारिक-अभिमान को नष्ट कर सकते हैं। यदि सभी दम्पति इसी भावना से रहें तो उनको अपने बच्चों को पालने के मार्ग में कोई बाधा नहीं आवेगी। किन्तु यह अत्यन्त कठिन है।

अतएव यदि आपके बच्चे हैं, तो उनको केवल अपनी ही व्यक्तिगत सम्पत्ति मत समझो, वरन् उनको अपने संरक्षण में दिये हुये विश्व-साम्राज्य के छोटे २ नागरिक समझो। उनको अपने आप से माता पिता के रूप में अत्याधिक प्रेम करना मत सिखलाओ, उनका प्रथम कर्तव्य समाज के लिये होगा, न कि आपके लिये, उनके लिये अधिक धन पैदा करने का उद्योग मत करो। उनको यह शिक्षा मत दो कि जीवन में उनका उद्देश्य यथाशक्ति अधिक से अधिक धन कमाना है। उनके लिये स्कूल, कालेज, व्यापार अथवा राजनीति में अयोग्य सुविधाएं प्राप्त करने का उद्योग मत करो। उनको इस प्रकार के उच्च पद दिला कर, जिनके वह योग्य नहीं है, समाज द्रोह मत करो। अनेक मस्तिष्कों को छोटे २ परिवारिक झगड़ों में कैद मत करो।

उनका ध्यान म्यूनिसिपैलिटी, राष्ट्रीय और अन्तराष्ट्रीय प्रश्नों की ओर लगाने का यत्न करो। उनकी बाल्यावस्था में ही उनमें नागरिकता के भाव भरने का उद्योग करो, इसके वह आगामी जीवन में अपने कर्तव्यों का पालन सन्तोषजनक रीति से कर सकेंगे। उनके बढ़ते हुए आत्माओं को परिवारिकवाद की बेड़ियों से छुड़ाओ, तब वह भी सार्वजनिक जीवन के फन्दों और गड्ढों से सुगमता से बच जाया करेंगे। यदि आप अपने बच्चों को इस प्रकार से पालेंगे तो आप मनुष्यजाति और अपने बच्चों के हित के योग्य बन सकेंगे। और उस समय कोर्नीलिया (Cornelia) के समान वृद्धवस्था में उसके मधुर फल चखेंगे। तब आप ऐसे भाग्यशाली व्यक्ति होंगे। जिनके सम्बन्ध में यूरीपाइड्स् (Euripides) ने लिखा है, "सबसे अधिक उसी व्यक्ति से ईष्या की जाती है, जो अपने बच्चों के विषय में भाग्यशाली होता है।

सम्बन्धी लोग

अपने माता, पिता, भाई, बहनों, चाचाओं, ताऊओं, भतीजों, भतीजियों, और चचेरे भाइयों से आप रक्त-सम्बन्ध में बंधे हुये हैं। आपका इस वर्ग के लिये भी एक कर्तव्य है, जैसा कि कहा जाता है, "रक्तजल से गाढ़ा होता है।"

अपने माता पिता अथवा गोद लेने वालों के प्रति आप प्रेम और कृतज्ञता के चरण में बंधे हुए हो। उनके साथ सदा ही सम्मान, कृपा और विनय पूर्वक व्यवहार किया करो। यदि वह

वृद्ध और निर्बल हैं, तो उनके लिये आवश्यक आराम और चिकित्सा का प्रबन्ध करो। यदि आप उनके साथ ही रहते हो तो उनके पास बारबार जाया करो। और उनके पास फल, फूल तथा वस्तुओं को उपहार के रूप में ले जाया करो। इस बात को को स्मरण रक्खो कि वह केवल आपको देखकर ही अत्यन्त प्रसन्न हो जाते हैं। उनके साथ सदा ही शान्ति का व्यवहार किया करो। उनकी बड़बड़ तथा वृद्धावस्था के अन्य छोटे २ दोषों को सहन किया करो। यदि आप उनसे दूर किसी अन्य नगर में रहते हो तो उनको प्रायः पत्र लिखते रहा करो। यह आवश्यक नहीं हैं। कि वह पत्र लम्बे चौड़े ही हों। बृद्ध माता पिता केवल आपका कुशल समाचार ही जानने की इच्छा किया करते हैं। वह यह भी चाहते हैं, कि आप उनको भूल न जाओ। आपको इस बात को समझ लेना चाहिये, कि संसार में केवल आपके माता पिता ही आपके जीवन की सहायता पर अभिमान करेंगे। आपको भाई और बहिनें तक आप से ईष्या कर सकती हैं, किन्तु आपके माता पिता कभी नहीं करते। आपके माता पिता, और विशेषकर आपकी माता आपसे कभी भी स्नेह को नहीं तोड़ सकती, फिर चाहे आपका अधिक से अधिक भी पतन क्यों न हो गया हो। चाहे आप अत्यन्त सम्राट और प्रसिद्ध नागरिक बना, अथवा आप एक अत्यंत निर्धन, पतित और पातकी बनो अथवा आप एक निन्दित अपराधी बनो किन्तु आप कितने ही रुक्ष अथवा निर्दयता पूर्ण शब्द कहने पर अपनी

माता के लिये वही बच्चे हो। वह आपके लिये प्रार्थना करेगी, रोएगी, दूसरों से सिफ़ारिश करेगी, आपको धमकाए और फटकार बतलावेगी, आपके लिये अच्छे दिन आने की आशा करेगी। किन्तु वह आपसे कभी भी घृणा नहीं करेगी और न आपको अपने द्वार से धक्का देगी। ईसामसीह की उपमाओं में एक फ़जूल पुत्र यह कहदेता है "मैं उड़ कर अपनी माता के पास चला जाऊंगा"। यदि आप अपने जीवन में असफल हुए हैं, अथवा आपकी अप्रतिष्ठा हुई है तो आपके लिये रक्षा पाने का केवल एक ही स्थान है, उस स्थान पर आप अनुदार समाज के आक्रमणों और बाणों से सदा ही सुरक्षित रहेंगे और सुरक्षा का वह उत्तम स्थान आपकी माता का स्थान है। अच्छा हो कि आपको उस स्थान की कभी आवश्यकता न पड़े। किन्तु इस बात को सदा स्मरण रखो कि केवल माता का प्रेम ही ऐसा प्रेम है जो बिजली जैसी शीघ्र गति के समान होता रहने पर भी किसी भी परिस्थिति में नहीं बदलता। यह प्रेम कभी असफल नहीं होता, समय और अन्तर उसको कम नहीं कर सकते, यहां तक कि वह आपकी अयोग्यता और कृतघ्नता से भी निर्बल नहीं पड़ता। आप अपनी माता को भले ही भूल जावें, किन्तु वह आपको कभी नहीं भूलेगी। माता का प्रेम ही मानवी प्रेम का वह वास्तविक प्रकार है, जो आपका नैतिक आदर्श होना चाहिये। गौतम-बुद्ध का अनुकरण करते हुए आप को यही कहना चाहिये "जिस प्रकार मेरी माता मुझ से प्रेम करती है उसी प्रकार मैं सभी

स्त्री पुरुषों और बच्चों को—जो उस समय जीवित हैं अथवा उत्पन्न नहीं हुए हैं—प्रेम करता हूं।"

आपको अपने माता पिता का सम्मान करना, उनको सहायता तथा आराम देना और उनको प्रसन्न रखना चाहिये। किन्तु आपको उनसे अपने कर्तव्य के अनुसार ही प्रेम करना चाहिये, न अधिक न कम। उनसे अत्यधिक प्रेम करने से उत्पन्न होने वाली दो भयंकर गलतियों से सावधान रहे। आपको अपने माता पिता के साथ एक ही मकान में नहीं रहना चाहिये, और न आप धर्म और राजनीति में उनकी आज्ञा पालन करने के लिये बाध्य हैं। आप पर उनका प्रेम का ऋण है, आज्ञापालन का नहीं। जब आप पूरे स्त्री अथवा पुरुष हो जाते हो तो आपका घर आपका हो जाता है, न कि आपके माता पिता का। आपका अन्तःकरण भी आपका ही रहता है न कि आपके माता अथवा पिता का, अनेक नवयुवक इन दो सिद्धान्तों पर ध्यान न देने के कारण अपने जीवन को नष्ट कर लेते हैं।

विवाह बन्धन में बन्धे हुए नवयुवकों का अपना प्रथक घर होना चाहिये। उनको अपने प्राचीन माता पिता के मकान में नहीं रहना चाहिये। पंख निकल आने पर पक्षि घोसलों को छोड़ देते हैं। सम्मिलित कुटुम्ब की प्राचीन प्रथा का पूर्णतया निन्दा करनी चाहिये। इससे माता पिता और बच्चों दोनों को ही शांति और प्रसन्नता नष्ट हो जाती है। जिस प्रकार तेल और पानी अच्छी तरह नहीं मिलते उसी प्रकार बृद्ध और युवा अच्छी

तरह नहीं मिल सकते। जैसा कि शेक्सपियर का कहना है, "वृद्धावस्था और युवावस्था एक साथ नहीं रह सकतीं"।

विवाहित नवयुवक दम्पतियों और उनके बच्चों के लिये घर में सभी प्रकार का शोर शराबा करना आवश्यक होता है, किन्तु इससे वृद्ध माता पिताको कष्ट होता है। यदि नवयुवक लोग किवाड़ों को ज़ोर से बन्द करते अथवा घर में देर से आते अथवा अपने मित्रों के साथ ज़ोर २ से वादविवाद करते अथवा गाते और खेलते हैं तो उससे घर में रहने वाले वृद्ध जनों को प्रतिदिन कष्ट होता रहता है। ज़ोर पड़ने के कारण उनके स्वास्थय को हानि पहुँचती है। वृद्धों को विशेष भोजन, नियमित विश्राम और निन्द्रा तथा अधिक शांति और मौन की आवश्यकता होती है। वृद्धावस्था की यह सब आवश्यकताएं उस घर में पूर्ण नहीं हो सकतीं, जिस में बृद्ध और नवयुवक एक साथ रहते हों। सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा का परिणाम स्वरूप केवल माता पिता को कष्ट, दिक़्क़त और अस्वास्थ्य सहन करना पड़ता है, उससे प्रायः माता पिता और बच्चों में अवाहनीय मतभेद और झगड़े भी हो जाया करते हैं, जिससे उनका पारस्परिक प्रेम कम हो जाता है। सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा परिवार को प्रेम और एक रसता के बंधन में नहीं बांधती वरन् उसका उससे ठीक उलटा प्रभाव पड़ता है।

अमरीका वाले प्राचीन काल के सम्मिलित कुटुम्ब को जानते भी नहीं; किन्तु यहां अनेक नवयुवक स्त्री और पुरुष,

जो आर्थिक रुप से स्वतंत्र होते हैं, केवल विवाह न होने के कारण अपने माता पिता के साथ रहा करते हैं। इस बुरी प्रथा में कोई भी औचित्य नहीं है । इससे नवयुवक लोग अपने जीवन को प्राय: अपने विचारों के समान नहीं ढाल पाते। उनको अधिकार प्रेम और निकटता के सूक्ष्म प्रभाव के सामने दबना पड़ता है । कभी तो उनका विवाह करके 'घर' बनाने में वर्षों नष्ट हो जाते हैं। यह बड़ी भद्दी बात है कि अविवाहित स्त्री और पुरुष को प्रथक् घर बनाने का अधिकार न दिया जावे । एक स्वावलम्बी मनुष्य को, चाहे वह कुआरा अथवा विवाहित हो, इक्कीस वर्ष की अवस्था हो जाने पर अवश्य ही अपना प्रथक् मकान बना लेना चाहिये। फिर चाहे वह किसी मकान की छत पर एक छोटा सा कमरा ही क्यों न हो। उस व्यक्ति का वही घर होगा। यह आवश्यक नहीं है, घर में दम्पति ही रहते हों। विवाह का इस प्रश्न से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। इस प्रकार का घर आपके व्यक्तित्व का आपके कार्य अथवा व्यापार, आपकी पुस्तकों, आपके वस्त्रों, आपके मित्रों, आपके व्यसनों, और आपके धार्मिक और राजनीतिक कार्यों का वाह्य चिन्ह है । आपका व्यक्तित्व बिना आपके छोटे से घर के, जिसमें आप अकेले अथवा अपनी पत्नी के साथ रहते हो, उन्नति नहीं कर सकता। यूरोप और अमरीका के अविवाहित नवयुवकों को इस प्रकार अपने 'प्रथक्' घर बना कर पूर्ण नैतिक स्वतन्त्रता को प्राप्त करना चाहिये।

स्वास्थ्यविज्ञान को मनोविज्ञान की दृष्टि से भी नवयुवक और वृद्धो को पृथक् २ रहना चाहिये । किन्तु विवाहित अथवा अविवाहित नवयुवकों और वृद्धों के एक ही मकान में रहने की वर्तमान प्रथा से कुछ बड़ी २ हानियां भी होती हैं। इस से नवयुवक पुरुष और स्त्रियां अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर पाते। इससे उनको सभी नैतिक प्रश्नों में वृद्ध माता पिता के लिये आवश्यकता से अधिक भाग देना पड़ता है । इससे वृद्धों को ही सब से बड़ा अधिकार मिल जाता है; क्यों कि कुटुम्ब की एकता के लिये इस बात की अनिवार्य आवश्यकता है कि उन्हीं विचारों, रीतियों, रुचियों, आदर्शों को समस्त कुटुम्बीजन भी स्वीकार करें। सभी विषयों में समानता की आशा की जाती है, यह सम्भव नहीं है कि कुटुम्ब में दो धर्म अथवा तीन राजनीतिक दल हों। एकरसता तभी उत्पन्न की जा सकती है जब सभी प्राचीन बातों और विश्वासों का पूर्णतया अनुसरण किया जाये। नवयुवक लोग जो कभी भी स्वतन्त्रता पूर्वक विचार करना नहीं सीखते बत्तक के बच्चों के समान अपने माता पिता का अनुसरण करते हैं अथवा वह अपने पर शासन करके समझौते की भावना में कपट और धोखे का जीवन व्यतीत करते हैं । इन दोनों ही दशाओं में आत्मा का पतन होता है । सारी प्रणाली आत्मिक हत्या पर निर्भर है। नवयुवक लोग विवाहित हों अथवा अविवाहित उनको सभी बातों में अपने माता पिता, चाचाओं और चाचियों का अन्धानुसरण नहीं करना चाहिये । पितृ आज्ञा के

सिद्धान्त की (जिसका विकास चीन में सब से निकृष्ट रूप में हुआ था) निन्दा करनी चाहिये और उसको अतीत काल की उन्नति विरोधी प्रथा समझ कर छोड़ देना चाहिये। यह पहिले ही इतिहास के एक ऐसे रूप की कल्पना कर लेता है कि बच्चों को ठीक उसी प्रकार अपने माता पिता के समान विचार करना और उनकी आज्ञा पालन करनी चाहिये, जिस प्रकार मूसा, कनफ्यूसिअस और मनु के समय में माता पिता की आज्ञा का पालन किया जाता था। इस प्रकार के भाव समाज की सारीं उन्नति को रोक कर उसको स्थिर तालाब के समान बना देते हैं। इस परिस्थिति में परिवर्तन और नये प्रयोजनों का करना असम्भव हो जाता है, किन्तु अब हम समाज की शीघ्रता पूर्वक उन्नति करना चाहते हैं। प्रत्येक नयी पीढ़ी को अपनी पिछली पीढ़ी की अपेक्षा अधिक बुद्धिमता तथा ज्ञान के साथ विचार करना चाहिये। हमारा लगातार उन्नति होते रहने में विश्वास है। हम अध्यात्मिक पहाड़ी हैं। हमको दिखलाई देने वाली पहाड़ियों की चोटियों से आगे और ऊँची २ चोटियां हैं जो बहुत धुंधली दिखलाई दे रही हैं। कोई भी आदर्श अन्तिम और पूर्ण नहीं होता। मनुष्य जाति प्राचीन बातों का अनुकरण करके कभी भी यह नहीं कहेगी, 'ठहर, तू इतनी अच्छी है'। मनुष्य जाति सदा ही उसी प्रकार नये उद्देश्य बनाती और नये सन्देश का प्रचार करती रहेगी, जिस प्रचार कितने ही पास पहुंच जाने पर भी अन्तरिक्ष हमसे दूर ही होता जाता है। हमारी इस पीढ़ी को चले

ही कोई आदर्श उच्च कोटि की बुद्धि अथवा पूर्ण उन्नति का परिचायक जान पड़े; किन्तु जब हमारे उत्तराधिकारी उस आदर्श का अध्ययन करेंगे तो वह अपने भाग्य से उतने ही असन्तुष्ट होंगे, जितने हम अपने भाग्य से आज हैं। चकाचौंध हुई आंखों के सामने नई २ सम्भावनाएं और नये २ पूर्ण कार्य आया करेंगे। नये नये तारे उनको आगे उड़ने के लिये संकेत करते रहेंगे, इस कारण माता पिता और बच्चों को सभी बातों में समान नहीं होना चाहिये, प्रत्येक कुटुम्ब में कुछ लाभदायक भेद होना ही चाहिये। बच्चों को अपने माता पिता के उन्हीं विचारों को उत्तराधिकार रूप में लेना चाहियें, जिनकी ठीक समय पर परीक्षा कर ली गई हो। उनको अपने मस्तिष्कों से स्वतन्त्रता पूर्वक काम लेकर भविष्य के लिये नये नये विचारों का निर्माण करना चाहिये। यदि सभी बच्चे अपने माता पिता की आज्ञा का ही पालन और अनुकरण करें तो मनुष्यजाति ही नष्ट हो जावे। वृद्धों के पास पहिले से ही पर्याप्त शक्ति और अधिकार होते हैं, क्यों कि बच्चों की शिक्षा का शासन तथा संचालन उन्हीं के अधिकार में होता है। अब उनको उन्नति करते हुए नागरिकों को बन्धन में नहीं बांधने देना चाहिये, अन्यथा मनुष्यजाति वृद्धावस्था और परम्परा के बोझ के नीचे दब कर उसी प्रकार नष्ट हो जावेगी, जिस प्रकार यात्री बरफ के टुकड़ों के नीचे दब कर मर जाते हैं।

मैं एक वृद्ध स्त्री को जानता हूं जो सदा इस बात पर शोक प्रगट करती रहती थी कि उसके नातियों का बपतिस्मा नहीं

हुआ, वह अपने पुत्र से बराबर उनका बपतिस्मा कराने का अनुरोध करती रहती थी। पुत्र बुद्धिवादी था, अतएव वह उसके अनुनय विनय पर कोई ध्यान नहीं देता था, किन्तु उसके शोक से उसकी शान्ति प्रतिदिन भंग होती रहती थी।

मेरे परिचय की एक नवयुवक जर्मन महिला ने अपनी प्यारी पत्नी को केवल इसलिये भेज दिया कि उसकी माता उसका एक प्रौढ़ अवस्था वाले धनी व्यापारी से लोभ के कारण विवाह करना चाहती थी। वृद्ध लोग प्रायः केवल रुपये में ही विश्वास करते हैं।

आक्सफोर्ड के एक नवयुवक विद्यार्थी ने अपने जीवन को सामाजिक आन्दोलन में व्यतीत करने का निश्चय किया; किन्तु अपने पिता का यह पत्र पाने पर कि उसके इस कार्य से उसके हृदय के टुकड़े टुकड़े हो जावेंगे उसने अपनी प्रतिज्ञा को तोड़ दिया और वह अपने साथियों को छोड़ कर चल दिया।

अनेक महान पुरुषों ने अपने माता पिता की आज्ञा का उलंघन करके उनको निराश किया है। गौतम बुद्ध, सेंट फ्रांसिस, पेट्रार्च और कार्ल मार्क्स ने अपने पिताओं की विनतियों और और अनेक अनुरोधों पर लेश मात्र भी ध्यान नहीं दिया। पेट्रार्च के पिता ने उसकी कविता की प्रतिलिपि को आग में जला दिया और उसको वकालत की परीक्षा पास करने का आदेश दिया; किन्तु पेट्रार्च ने कविता को ही पसन्द किया और पुनर्जाग्रति (Renaissance) के महान् आन्दोलन को आरम्भ किया,

कार्ल मार्क्स ने भी व्यवसायिक अध्ययन की उपेक्षा की, यह सब उसने अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध किया, क्यों कि उसका पिता जानता था कि हेगल के सिद्धान्त और समाजवाद में पैसा नहीं मिल सकता था।

युवावस्था उत्पादिका, नये कार्य करने वाली और विषम होती है; जब कि वृद्ध लकीर के फ़कीर, सावधान और शान्त होते हैं। युवा लोग आगे को और जीवन के भावी कार्यों की ओर देखते हैं, जब कि वृद्ध लोग अतीत को देखते हुए उसके लिये खेद प्रकट करते रहते हैं। युवा लोग बड़ी आपत्तियों का सामना करते और ग़लतियों के होने की कोई चिन्ता नहीं करते, जब कि वृद्ध लोग फूंक मार मार कर पैर रखते और कष्ट से बहुत घबराते हैं। अतएव युवकों और वृद्धों को एक ही मकान में नहीं रखना चाहिये। जीवित के गले में मृतक को तम बांधो।

सभी अवसरों पर वृद्धों से सम्मति लेने और उनकी सम्मति का अत्यधिक मान करने की प्रकृति अच्छी नहीं है, यह समाज के स्वार्थ के लिये अत्यन्त हानिप्रद है। वृद्ध होना कोई विशेष गुण नहीं है। समय मनुष्यों को सदा पहिले से उत्तम ही नहीं बनाता। कमर का दर्द और गठिया वृद्धावस्था के उपहार हो सकते हैं; किन्तु बुद्धि और गुण का होना आवश्यक नहीं है। प्राचीन काल में यह भले ही सत्य हो कि वृद्ध लोग नवयुवकों से अधिक बुद्धिमान होते हों, जैसा कि ओडीसियस ने एचिलीज़

से शेखी मारते हुए कहा था, "मैं तुम से कहीं अधिक बुद्धिमान हूं, क्योंकि मैं तुझ से पहले उत्पन्न हुआ और तुम से अधिक जानता हूं।" किन्तु वर्तमान काल के वृद्ध माता पिता और पितामह पितामही की अवस्था अत्यन्त खेदजनक होती है। इस समय के वृद्ध स्त्री पुरुष प्राचीनता के उन्नति विरोधी सिद्धान्तों के पूरे के पूरे पुलिन्दे हैं, वह जीवित प्रस्तरावशेष केवल समाज-विज्ञान के प्रदर्शनालय की ही शोभा बढ़ाने योग्य हैं। वह उन तीस, चालीस अथवा पचास वर्ष पूर्व के उन विचारों का ही प्रतिनिधित्व करते हैं, जो उन्होंने अपनी बाल्यावस्था से सीखे थे। विलियम जेम्स का कहना है कि पच्चीस वर्ष की अवस्था के पश्चात किसी के दृष्टिकोण को बिलकुल बदल देना प्रायः असम्भव है। मस्तिष्क अपनी स्थितिस्थापकता (Elasticity) और उन्नति तथा ग्रहण करने की शक्ति को इतनी शीघ्र खो बैठता है। इस प्रकार मनोविज्ञान युवकों की अपेक्षा वृद्धों के अधिक बुद्धिमान होने के दावे को स्वीकार नहीं करता। कभी २ यह भी कहा जाता है, वृद्धों को अधिक "अनुभव" होता है, किन्तु जिसको अधिकांश व्यक्ति अपना अनुभव कहते हैं, वह उनके बुरे कार्यों, ग़लतियों और दुर्भाग्य का लेखा होता है। वह अशिक्षित प्राणियों को एक दिशा को ही ले जाते हैं, उनका व्यक्तिगत 'अनुभव' समस्त संसार के लिये योग्य नहीं होता। युवावस्था का मार्ग आशावाद, साहस और प्रेम की धूप से प्रकाशित और भरा हुआ होता है। उसको ऐसे निर्बल और

टिमटिमाते हुए दीपक के प्रकाश की आवश्यकता नहीं है, जो पचास या साठ वर्ष के तमाच्छन्न वृद्धों का अत्यन्त पुराना और असामयिक अनुभव हो। बेकन ने कितनी अधिक विद्वत्ता की बात लिखी है, "वृद्ध पुरुष आपत्ति अत्यधिक उठाते, बहुत देर तक विचार करते, बहुत कम काम करते, अत्यन्त शीघ्र पछताते और कभी २ ही पूरे समय पर काम को निबाहते हैं।" कुछ वृद्ध पुरुष अपने और नवयुवकों के विषय में कितनी सच्ची बात कहते हैं—"उनका भविष्य उनके सामने है, जब कि खेद है! कि हमारा भविष्य हमारे पीछे होना है।"

इतिहास हम को क्या शिक्षा देता है? वह निस्सन्देह यही सिद्ध करता है कि वृद्ध पुरुष सदा ही सुधार और नवीनता के विरोधी होते हैं। इसके लिये उनको दोष नहीं देना चाहिये। वह नवीन कार्यों में बाधा दिये बिना रह ही नहीं सकते, क्योंकि वह नवीन ढङ्ग और रीतियों को कभी पसन्द नहींक र सकते। अपनी धमनियों में नवीन रक्त वाले अज्ञात प्रदेशों में साहस-पूर्ण नये २ कार्य किया करते हैं। जिस बात के लिये वृद्धों ने कभी उद्योग ही नहीं किया उसकी वह किस प्रकार कदर कर सकते हैं? वह मृत्यु की प्रतीक्षा किया करते हैं, न कि व्यस्त जीवन की। उनको शान्ति में मरने दो, किन्तु उनके साथ नवयुवकों को भी क़ब्र में जीवित ही मत गाड़ो। गत महायुद्ध ने सदा के लिये इस सिद्धान्त को मिथ्या कर दिखलाया कि वृद्ध पुरुष नवयुवकों से अधिक बुद्धिमान होते हैं। वृद्धो ने मानव

इतिहास की उस सब से भयङ्कर आपत्ति को क्यों नहीं टाला ? उन्होंने ऐसी भारी मूर्खता और शरारत का अपराध क्यों किया ? उन्होंने सहस्रों और लाखों नवयुवकों को लज्जा असत्य और दिखावटी शान के लिये कट जाने को क्यों भेजा ? मारे हुए नवयुवकों का रक्त उन वृद्ध राजनीतिज्ञों से प्रतिशोध लेने के लिये चिल्ला रहा है जिनको राज्य में केवल इस लिये शक्ति और अधिकार सौंप दिया गया है कि वह इस समय अन्य कुछ कार्य करने योग्य नहीं है। युवकों को इस समय साहसपूर्वक अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर देनी चाहिये। तीस वर्ष की अवस्था वाले प्रत्येक नवयुवक को शिलर के शब्दों में घोषणा कर देनी चाहिये कि

"नया समय चला आता है, एक ऐसी जाति उत्पन्न हो रही है,
जो अपने प्राचीन काल के पूर्वजों के समान विचार नहीं करती।"

प्रत्येक मध्य अवस्था वाले अथवा वृद्ध समालोचक से युवकों को दृढ़ता तथा विनयपूर्वक कह देना चाहिये, "अपने भयङ्कर युद्ध को स्मरण कर लो, और कृपा कर चुप हो जाओ। आप अपने जीवन का आनन्द ले चुके, आप अपनी शक्ति भर अच्छी से अच्छी तरह रह चुके। अब हमारी बारी है; हम अपने विचारों के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करेंगे। आपसे हमने उत्तराधिकार रूप में अनेक गुण और दोष पाये हैं किन्तु हम उन दोषों को केवल इस लिये सहन नहीं करेंगे कि

आप उनसे नहीं बच सके। संसार शासन और संगठन करने के लिये हमारा है, न कि आपका। हम उस खेद जनक कार्यक्रम के टुकड़े २ करदेंगे जो आप हमको देना चाहते हैं, और हम उसको "अपनी इच्छा के अनुसार दोबारा फिर ढालेंगे"। आप बृद्ध हो गये हो। अपनी चिरसंचित निद्रा को ले लो और अपने बच्चों से प्रेम करने और उनका सम्मान करने में ही आनन्द मनाओ। किन्तु इस समय आपको जीवन के महान् खेल में दर्शक ही बने रहना चाहिये न कि फुर्तीले खिलाड़ी। हमारा भविष्य खतरे में है। हमको उन नये ढंगों पर सफलता और आनन्द प्राप्त करने दो, जिनका आपको पता नहीं है। एलेजेबेथ बैरेट ब्राउनिंग ने पहिले ही हमारे दावे को निम्न शब्दों में प्रगट किया है—

"नवयुवक आगे २ दौड़ते हैं, और आने वाली वस्तु को
देखते हैं, मैं नवयुवकों को प्रति उच्च स्वर में सम्मान प्रगट
करती हूं।
उस नये धर्म में जिस के लिये पृथ्वी का निकट भविष्य पक रहा है
आप वृद्धों की कुर्सियों पर नवयुवकों को बैठे हुए,
आशापूर्ण अपने हाथी दांत जैसी सफेद आकृतियों से सभापतित्व
करते हुए पावेंगे"
पर जीवन के अनुभव के
मुरदार मांस के खाने वाले उनके मस्तक में पंजे मारकर खरोंचते
होगे।"

आप अपने भाई और बहिनों का प्रेम और सहानुभूति के ऋणी हैं। आप उन के साथ बाल्यावस्था की उस मधुर स्मृति की कड़ी में बंधे हुए हैं, जब आप सब घर और अपने माता पिता के प्रेम के भागीदार थे, आपका कर्तव्य है कि आप उनसे मिलते रहें, उनको पत्र लिखते रहें, उनको त्योहारों और जन्मदिवस जैसे अवसरों पर उपहार भेजते रहें और आवश्यकता के समय उनकी धन से सहायता करते रहें। भ्रातृ प्रेम को प्रायः नागरिक एकता का चिन्ह समझा जाता है। फ्रांस की राज्यक्रांति के तीन प्रमुख शब्दों में एक 'भाईचारा' था, अनेक मित्र संस्थाओं के सदस्य आपस में एक दूसरे को भाई कह कर सम्बोधन करते हैं तथा पत्रों पर हस्ताक्षर करते हैं। अतएव आपको भाई चारे के सम्बन्ध को पुष्ट करने और उसको अविफल प्रेम और कृपापूर्ण शब्दों तथा कार्यों से परिपूर्ण करने के लिये सदा यत्न शील रहना चाहिये।

बुद्ध महान् आत्माओं के कार्य में सेंट-स्कोलास्टिका, डरौथी वर्डस्वर्थ, कैरोलाइन हर्शेल, और हेनराइटे रेमन जैसी प्रेमी बहिनों ने भी भाग लिया है। बहिन का प्रेम वास्तव में ही एक अमूल्य उपहार होता है। एक कष्टपीड़ित बेरोजगार खानकुली ने कहा था, "मेरी बहिनें मुझे संसार में अकेले होने का अनुभव होने ही नहीं देतीं। ....मैं नहीं जानता कि उनके बिना क्या बन जाता। कई २ बार मेरी इच्छा दुकानों

से कुछ फल चुराने की हुई। यदि मेरी बहिनें न होतीं तो मैं एक चोर बन गया होता।"

आपको अपने चाचा, ताऊ, चाचियों, ताइयों, भतीजों और भतीजियों के साथ भी प्रेम पूर्ण व्यवहार करना चाहिये। आपको उनके लिये भेंट, पत्र, निमंत्रण, और यदि आवश्यक हो तो आर्थिक सहायता में भी संकोच नहीं करना चाहिये। यदि आपका कोई भतीजा अथवा भतीजी अनाथ हो जावे तो आपका यह कर्तव्य है कि आप उसका अपने बच्चे के समान लालन पालन करें।

इस प्रकार आप अपने सम्बन्धियों में प्रेम तथा सदभिलाषा को उत्पन्न कर सकेंगे।

म्यूनिसिपैलिटी

आपके परिवार और सम्बन्धियों का आपके साथ प्राणिविज्ञान सम्बन्धी रक्त का सम्बन्ध है. परन्तु उससे अगली संस्था—जिससे आपका सम्बन्ध है—बिल्कुल ही भिन्न प्रकार की है। वह अपने रूप और कार्यक्षेत्र में देशीय तथा राजनीतिक है। आप एक गांव अथवा नगर में रहते हो, और वह गाँव अथवा नगर एक देशीय इकाई है। उसके उत्तर, दक्षिण, पूर्व तथा पश्चिम में अन्य गाँव अथवा नगर हैं। उसका एक नाम—सम्भवत: अत्यन्त प्राचीन नाम—है और उसकी कुछ ऐतिहासिक कथा भी है। वह आपके परिवारिक घर से प्रथक आपका 'राजनीतिक घर' होता है। इस राजनीतिक घर में आप पिता,

माता, पति अथवा पत्नी न होकर नागरिक होते हो। आप उस नगर अथवा ग्राम के अन्य निवासियों के साथ सार्वसाधारण राजनीतिक संगटन के नागरिक बंधन में बंधे हुए हो। नागरिकता का यह पवित्र बंधन ही आपको वास्तव में 'सभ्य' पुरुष के आसन पर आसीन करता है। बर्बर जातियां और सदा घूमने वाले दल भी रक्त सम्बन्ध को मानते हैं, किन्तु नागरिकता के अधिकार का उनको कोई ज्ञान नहीं है। 'सभ्यता' शब्द का अर्थ भी 'नागरिक' से बहुत दूर नहीं है। एक नगर में रहने वाले समाज के सदस्य होने के नाते आप अपने को 'सभ्य' व्यक्ति कहते हो। नीतिशास्त्र में भी 'अच्छा मनुष्य' एक भाववाचक शब्द है। आपको एक 'अच्छा नागरिक' बनना चाहिये। बिना नागरिकता के कोई वास्तविक नीतिशास्त्र नहीं हो सकता। आपके कार्य का वास्तविक क्षेत्र नगर अथवा ग्राम है। आप पृथ्वी के उस छोटे से भाग से प्रेम करते हो। आप अपने राजनीतिक घर को बनाने वाली सभी सड़कों, खेतों, चरागाहों, पहाड़ियों और नदियों को जानते हो। उस पृथ्वी में आप की जड़ जमी हुई है। आपके व्यक्तित्व की उन्नति के लिये यह आवश्यक है कि आपका उस नगर से इस प्रकार का विशेष सम्बन्ध हो, जिसमें आप रहते तथा काम करते हैं। संभवतः वही आपकी जन्मभूमि भी है, उस दशा में उससे आपको दुगना प्रेम होगा। प्रत्येक पुरुष और स्त्री के व्यक्तित्व के लिये म्यूनिसिपैलिटी की सदस्यता राजनीतिक संगठन रूप में आवश्यक देशीय आधार होती है। वृक्ष की जड़

पृथ्वी में कहीं न कहीं होनी ही चाहिये; वह आकाश में लटक कर नहीं उग सकता। मनुष्य के विषय में भी यही बात है। अब हम आरंभिक युग के फलाहार, शिकार. और पशुपालन की श्रेणियों को बहुत पीछे छोड़ चुके हैं। कृषि का आविष्कार होने पर मनुष्य स्थायी आर्थिक आधार पर ग्रामों तथा नगरों में बस गया। सभ्य राष्ट्रों को यूनानी लोग 'अन्न खाने वाले लोग' कहा करते थे, हम अब्राहम और लौट (Lot) के समान सदा घूमते नहीं रहते। हमने अपने आपको चावल, गेहूं, जौ, राई, मक्का, और जई के दृढ़ आधार पर स्थायी समाज में संगठित कर लिया है। अतएव आपका इस म्यूनिसिपल भावना को, अपने अन्दर उत्पन्न करना अत्यन्त महत्त्व पूर्ण हैं। आप बायरन (Byron) के साथ यह कह सकें—

"मैं अपने अन्दर नहीं रहता, किन्तु मैं
अपने चारों ओर की वस्तु का भाग बन जाता। हूं"

जिन अभागे पुरुषों को प्रति एक दो वर्ष में अपने स्थान को छोड़ कर कहीं और बसना पड़ता है वह निर्मूल प्राणी हैं। मौलिक सार्वजनिक भावना की उन्नति करना उनके लिये अत्यन्त कठिन है। संयुक्त राज्य अमरीका जैसे नये देशों में जनसंख्या की अत्यधिक वृद्धि नागरिकता के उच्च आदर्श की उन्नति में बड़ी भारी बाधक है। जिन लोगों को अपने देशीय आधार को प्रायः बदलते रहना पड़ता है उनकी प्रायः तितली जैसी मनोवृत्ति, अस्थिरता, मन की चञ्चलता और अस्वच्छता का स्वभाव पड़

जाता है। काम की तलाश में विभिन्न स्थानों में जाने की आवश्यकता आधुनिक औद्योगिक मजदूर को सभी देशों में ऐसा लुढ़कने वाले पत्थर के जैसा बना देती है कि वह कभी भी मौलिक नागरिकता को प्राप्त नहीं कर सकता। हमको आधुनिक समाज में अनेक स्त्री और पुरुषों की बढ़ती हुई निर्मूलता को दूर करने का उद्योग करना चाहिये।

अपने आपको धोखा मत दो। आप यह कल्पना कर सकते हैं कि आप ग्रेट ब्रिटेन जैसे एक देश अथवा फ्रेञ्च और जर्मन जैसे 'राष्ट्र' के नागरिक हैं। आप यह विश्वास कर सकते हैं कि इंगलैण्ड अथवा फ्रांस आपके राजनीतिक घर हैं न कि आप का छोटासा ग्राम। यह विचार धोखा और फन्दा है। सच्ची सार्वजनिक भावना केवल आपकी म्यूनिसिपैलिटी में ही विकसित हो सकती है; नागरिकता का हिंडोला वही है। इंगलैण्ड के अंदर आप घर का सा अनुभव नहीं कर सकते। आपके नागरिक व्यक्तित्व के लिये 'राष्ट्र' और 'देश' अत्यन्त अस्थिर, दूरके और व्यापक हैं, 'राष्ट्र' और 'देश' की स्थिति वास्तव में भावनामय और कृत्रिम है, जिसको कुछ निश्चित उद्देश्यों के लिये विकसित किया जाता है। वह आपको उसी प्रकार से शिक्षित, भावनामय और विनयानुशासन युक्त नहीं कर सकते, जिस प्रकार म्यूनिसिपैलिटी कर सकती है, आप अपने 'राष्ट्र' के साथ हाथ नहीं मिला सकते। आप अपने देश की सभी सड़कों खेतों और गोचर भूमियों को न तो देख सकते हैं और न प्रेम

ही कर सकते हैं। पेरिकिल्स (Periciles) अपनी जन्मभूमि ऐथेन्स के विषय में जैसा प्रेम और उत्साह प्रगट किया करता था, वैसा कोई भी आधुनिक फ्रेञ्च राजनीतिज्ञ फ्रांस के विषय में नहीं कर सकता। यह कोई विचित्र बात नहीं है। पेरिकिल्स ऐथेन्स और लगभग सभी एथेन्स वासियों को अच्छी तरह जानता था, गम्बेटा (Gambetta) अथवा क्लेमैशू उसी प्रकार फ्रांस को कदापि नहीं जान सकते थे। जब आप अपने 'देश' अथवा 'राष्ट्र' के विषय में वार्तालाप करते और उसके लिये कृत्रिम उत्साह में भर जाते हो, तो आप उसके भूगोल और इतिहास के विषय में विचार करने का कठिन उद्योग करते और यह बहाना करते हो कि उन्होंने आर्थिक और राज-नीतिक अंको की शुष्क अस्थियों में जीवन फूंक दिया है। आप चाहे जो करें, किन्तु कल्पित १जानबुल (John Bull) अथवा अंकिल साम२ (Uncle Sam) आपके लिये उतने वास्तविक और रुचिपूर्ण कदापि नहीं हो सकते, जितने लिंकन३ (Lincoln), कंसाज४ (Kansas) अथवा काऐन५ (Caen) की म्यूनिसि-

---

१ इङ्गलैण्ड अथवा अङ्गरेजों का घरेलू नाम।

२ संयुक्त राज्य अमरीका का व्यक्तिगत नाम।

३ इङ्गलैण्ड का एक नगर

४ संयुक्त राज्य अमरीका की एक रियासत

५ फ्राँस का एक नगर

पैलिटियों के आपके पड़ौसी हो सकते हैं। अतएक अपनी म्यूनिसिपैलिटी में नागरिकता के प्राथमिक उद्देश्यों की शिक्षा ग्रहण करो; आपको उनका प्रयोग राष्ट्रीयता और मनुष्यजाति के अधिक विस्तृत राजनीतिक संगठनों में लागू करने के अनेक अवसर मिलेंगे।

म्यूनिसिपैलिटी के विश्व-राज्य का एकमात्र स्थानीय अंग होने के कारण, उसकी सर्वसामान्य राजनीतिक और आर्थिक संस्थाओं के विषय में वादविवाद विश्व-राज्य के विषय में किया जावेगा। यहां कुछ अन्य महत्वपूर्ण बातों का वर्णन किया जाता है।

म्यूनिसिपैलिटियां दो प्रकार की होती हैं—कृषि सम्बन्धी म्यूनिसिपैलिटियां (जिनको 'ग्राम' भी कहते हैं) और उद्योग धन्दों तथा व्यापार वाली म्यूनिसिपैलिटियाँ (जिनको 'नगर' कहते हैं)। प्रत्येक प्रकार की म्यूनिसिपैलिटी का योग्य परिमाण होता है। इस समय अनेक ग्राम अत्यन्त छोटे होते हैं। कम जनसंख्या होने के कारण वह सभ्य जीवन की सभी आवश्यकताओं का प्रबन्ध नहीं कर सकते। उसमें प्राय: सार्वजनिक सफ़ाई, शुद्ध जल, पुस्तकालयों, संगीत हाल, नाटकशालाओं और हाई स्कूलों का अभाव होता है, पहिले किसानों के अपने २ खेत में काम पर चले जाने से गाँव छोटे ही होते थे। आज हम बाईसिकलों, मोटर साइकिलों, ट्राम गाड़ियों और किराये की मोटरों के द्वारा आधुनिक ग्रामों को तीन या चार गुना बड़ा

कर सकते है, विज्ञान ने हम को इस योग्य बना दिया है कि हम अपनी कृषिसम्बन्धी इकाई का आकार अपनी अधिक से अधिक सुविधा के अनुसार बना कर बढ़ाले और गाँव में शिक्षा की सुविधा तथा अन्य ऐसी संस्थाओं को बना लें, जो अब तक केवल नगरों में ही होती थीं। नगरों का भी एक विशेष परिमाण है, जिसमें व्यापार और उद्योगधन्दे हो सकते हैं और बने हुए सामान के बदले में भोजन तथा ग्राम में उत्पन्न हुई अन्य सामग्री लाई जा सकती है। नगर न तो बहुत बड़ा और न बहुत छोटा हीं होना चाहिये। वर्तमान म्यूनिसिपैलिटी इस प्रकार की होनी चाहिये कि एक नागरिक मोटर में घूमने से उसकी सब सड़कों से परिचित हो सके। उसकी जनसंख्या उतनी परिमित होनी चाहिये कि सभी विषयों में सभी नागरिक भाग ले सकें, वह सभी सार्वजनिक सभाओं में जा सकें, सभी नेताओं को जान सकें और उनके व्याख्यान सुन सकें और नगर की एकता को प्राप्त करके उसके प्रति अपने कर्तव्य का पालन कर सकें। यह सब बातें आधुनिक उन बड़े २ नगरों में पूर्ण नहीं हो सकती, जो गत शताब्दी में त्रुटिपूर्ण उद्योग धन्दों के संगठन फल स्वरूप बन गये हैं। इस प्रकार के नगर म्यूनिसि-पैलिटी नहीं होते, वरन् अस्वाभाविक जनसंख्या वाले नगर होते हैं। वास्तव में तो उनमें म्यूनिसिपल भावना को तभी जाग्रत रखा जा सकता है जब उनको कई २ भागों में विभाजित कर दिया जावे। व्यवहारिक कार्यों के लिये उक्त भाग ही

वास्तविक म्यूनिसिपैलिटियां होंगे। इस प्रकार यदि आप लन्दन वासी हैं तो आपका राजनीतिक घर 'लंदन' नाम का विशाल नगर नहीं, वरन् उसके हैम्पस्टेड, बैटर्सी अथवा पाप्लर नाम के भाग होंगे, प्रजातन्त्र सदा ही म्यूनिसिपैलिटियों के परिमाण की सीमा व्यवहारिक तथा प्रभावपूर्ण चाहता है यदि नगर को उस बड़े भारी रूप में ही अविभक्त रक्खा जावेगा तो उसको शीघ्र ही स्वेच्छाचारिता और नौकरशाही का दास बनना पड़ेगा। मेरा प्रस्ताव तो यह है कि किसी भी आधुनिक म्यूनिसिपैलिटी में एक लाख से अधिक निवासी न हों। बड़े २ भारी नगर गर्दन तक भरे हुए पेट के समान रोग और गड़बड़ी के चिन्ह होते हैं।

आवश्यकता से अधिक जनसंख्या वाले नगरों में वास्तविक प्रजातंत्र नहीं हो सकता किन्तु स्वास्थ्य विज्ञान की दृष्टि से भी यही सम्मति बनानी पड़ती है कि नगर में बहुत बड़ी जनसंख्या को एकत्रित करने से जनता के हित के लिये भी घातक है। वह नगर नहीं वरन् क़बरिस्तान बन जाते हैं । प्रत्येक नगर की रचना इस प्रकार करनी चाहिये कि उनके नागरिक सुगमता से देहाती खेतों और गोचरभूमियों में जा सकें । यह प्रत्येक बच्चे का जन्म सिद्ध अधिकार है कि वह पाले की बूंदों, लाल गुलाब के फूलों, कमल के फूलों, और जंगली गुलाब के फूलों को देख सके (किन्तु तोड़े नहीं); पक्षियों के कलरव और कोयल के 'कूहू' स्वर को सुन सकें, जंगल के बेरों आदि को

छोड़ सकें और अपने शरीर की प्रत्येक नस में पृथ्वी माता के आकर्षक स्पर्श का अनुभव कर सके। इसी प्रकार प्रत्येक वयस्क पुरुष अथवा स्त्री को वसन्त ऋतु वर्षा और शरद् ऋतु का आनन्द जंगलों में प्राप्त करने का अधिकार है। यदि नगर बहुत बड़ा है तो मनुष्य प्रकृति से कोई सम्पर्क नहीं रख सकेगा और उसको संकोच के साथ पतन का जीवन विताना पड़ेगा। जिस नगर को पृथ्वी के नीचे रेलों को बनाने की आवश्यकता पड़ती है। वह तो स्वयं ही अपने को गाली देता है। वहां की जनता जीवन दायक ऊपजाऊ पृथ्वी के ऊपर कभी भी पांव नहीं रख सकती। वरन् उससे सदा प्रथक ही रहती हैं उनमें स्वास्थ्य और जीवनशक्ति की धीरे धीरे २ कमी होती जाती है। प्रकृति के पौष्टिक भोजन को दैनिक लेने की अपेक्षा उनको प्रति सप्ताह ही बाहिर जाकर समय और धन की बचत करनी पड़ती है। उनमें से अनेक तो प्रतिसप्ताह भी बाहिर नहीं जा सकते उनको एक बार भी जंगली फूलों को बिना देखे अथवा पक्षियों के मधुर कलरव को सुने कई कई सप्ताह और कभी कभी तो कई २ माह बीत जाते हैं; प्रकृति के साथ दैनिक सम्बन्ध न रख सकने वालों को हमारी अधिक जनसंख्या वाले नगरों की सभ्यता का दण्ड भोगना पड़ता है। यदि वर्तमान नगरों को लगा तार ग्रामों से सम्बन्धित नहीं किया जावेगा तो वह नष्ट हो जायेंगे, क्योंकि उनके निवासियों का स्वास्थ्य प्रतिदिन गिरता जाता है। इस प्रकार यह कृत्रिम 'सभ्यता' स्वंय ही आत्मघात कर रही है।

प्रकृति का अध्ययन भी शिक्षा का एक आवश्यक भाग है। किन्तु यदि आप उसके पास पहुंच ही नहीं सकते तो आप प्रकृति का अध्ययन किस प्रकार कर सकते हैं ? हमारे बड़े २ नगरों की जनता प्रकृति के सौन्दर्य और रहस्यों को न जान कर सौन्दर्य फी भड़कीली वस्तुओं और शराब के विज्ञापनों को देखती है।

स्वास्थ्य के योग्य मान को और शारीरिक योग्यता को बनाये रखने के लिये भी नगरों की जन संख्या का परिमित होना आवश्यक है, क्योंकि प्रत्येक नागरिक को ताजा दूध फल और शाक अवश्य ही नियमित रूप से मिलने चाहियें। कोई भी नगर इतना बड़ा नहीं होना चाहिये कि उसमें पास के गांव से उसी दिन का ताजा दूध, फल और शाक न पहुँच सकें। इस समय सब चिकित्साप्रणालियों के चिक्तिसकों की यही शिक्षा है कि उत्तम स्वास्थ्य के लिये ताजा दूध, फल और शाकों का सेवन अनिवार्य है। उनके स्थान में कोई अन्य वस्तु काम नहीं दे सकती। उनका प्रति दिन ताजा होना आवश्यक है। यदि अपने प्राकृतिक घर से चलने के पश्चात् उनको चौबीस घन्टे से अधिक हो जावें तो उनकी स्वास्थ्य और बल देने की शक्ति बहुत कुछ कम हो जाती है। इस समय संसार के अनेक नगरों की जनसंख्या तो इतनी अधिक है कि लंदन और न्यूयार्क को तो कभी भी प्रातःकाल के समय ताजा दूध नहीं मिलता। हम खेतों और गोचर भूमियों पर अधिकार करके

उनपर सड़कें बनाते हैं, और पृथ्वी के दूसरे कोने तक से फलों शाकोंको मंगवाते हैं। तब जनसंख्या में इतने अधिक परिमाण में रोग के घर किये होने पर क्या आश्चर्य है।

आपको निःस्वार्थता और व्यवहारिक सेवा की नागरिक भावना को अपने में उत्पन्न करना चाहिये। पेरिकिल्स ने अपने ग्रन्थ में बतलाया है कि ऐथेन्सवासी सार्वजनिक कार्यों में भाग न लेने वाले नागरिक की निन्दा किया करते थे। वास्तव में वह उसको निरा मूर्ख समझते थे। अंग्रेजी भाषा में 'सिड़ी' उसीको कहते हैं, जो केवल अपने में ही केन्द्रित हो और सार्वजनिक कार्यों में कोई भाग न ले, अतएव यदि आप 'सिड़ी' कहलाना नहीं चाहते तो आपको म्यूनिसिपैलिटी के सभी मामलों में अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिये। आपको सब निर्वाचनों में अपनी वोट (सम्मति) देनी चाहिये। वोट आपका का केवल अधिकार ही नहीं है, वरन् उससे काम लेना आपका कर्तव्य है। यदि आप आलस्यवश वोट नहीं देते अथवा तटस्थ रहते हैं तो आप कर्तव्य की अवहेलना करने के अपराधी हैं। गत शताब्दी में जनता ने वोट के अधिकार के लिये आन्दोलन किया और विद्रोह किये। किन्तु आज वोट का अधिकार पाकर भी उनमें से अनेक पोलिंग स्टेशन पर नहीं जाते। पाश्चात्य देशों में भी कुछ निर्वाचनों में तो ५० प्रतिशक व्यक्ति भी वोट नहीं देते। यह उदासीनता एक भारी अपराध है, यह अपनी उस राजनीतिक शक्ति का

आत्मघातपूर्ण त्याग है, जिसको हमारे पूर्वजों ने बड़े २ भारी झगड़ों और बलिदानों से जीता था। आपको नगर के शासन में अपने सिद्धान्तों को लागू करने और अपने स्वत्वों की रक्षा करने के अवसर से क्यों चूकना चाहिये ? आपको अपने हाथ में आए हुए अधिकार से काम लेने में क्यों चूकना चाहिये ? जो नागरिक इस कर्तव्य का कई २ बार प्रयोग न करे उस को कठोरता से चेतावनी देकर उसके कान खोल देने चाहिये। कुछ यूनानी नगरों में कायर अथवा निष्पक्षपात नागरिकों को, जो नागरिक झगड़ों में तटस्थ रहा करते थे, घोर निंदा की जाती थी। प्लूटार्च, अपने ग्रन्थ "सोलन के जीवन चरित्र" में कहता है, "उसके शेष नियमों में सब से विचित्र वह नियम है, जो किसी दल के झगड़े में किसी ओर भी भाग न लेने वाले के मताधिकार को छीन लेता है, स्पष्टतः इस का उद्देश्य यही था कि घरेलू राजनीति में प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण भाग ले।" वास्तव में एक म्यूनिसिपैलिटी के लिये यह बड़ी भारी आपत्ति है कि उसके मतदाताओं की एक बड़ी भारी संख्या वोट न दे। यदि किसी नगर के बुद्धिमान् व्यवहारिक मनुष्य घर पर ही बैठे रहें और राजनीति में कोई भाग न लें तो उस नगर का शीघ्र ही राजनीतिक पतन हो जाता है। कुछ नागरिक सदा ही महत्त्वाकांक्षी, असहिष्णु, अथवा झगड़ालू होते हैं; उनको सदा ही तीक्ष्ण बुद्धिवाले और निष्पक्षपात बहुमत से ही रोका जा सकता है। किन्तु यदि अनेक

बुद्धिमान् नागरिक वोट न दे, तो नागरिक जीवन केवल मूर्ख और विनाशात्मक अल्पसंख्यकों का युद्ध स्थल बन जावे और राज्य पूर्णतया नष्ट हो जावे। जैसा कि वालटेयर कहता है, "ईमानदारों की कायरता से ही बदमाशों को सफलता मिला करती है।" इसी कारण टामैनी (Tammany) न्यूयार्क पर शासन कर सका था। अपने वोट के उपयोग की चिन्ता न करने वाला नागरिक उस सैनिक के समान है, जो अपने स्थान से भाग जाता है। अतएव, यदि आपको प्रति सप्ताह भी एक बार वोट देनी पड़े तो आपको अवश्य ही वोट देनी चाहिये।

आपको ईमानदार और विश्वासप्राप्त नागरिक के रूप में नागरिकता के अन्य सभी कर्तव्यों का भी पालन करना चाहिये। अपने विरोधियों को कभी गाली मत दो और न उनसे बुरा बोलो। राजनीतिक झगड़ों के कड़वे पन को विनय से मधुर बना देना चाहिये। अपनी सम्मति समाचार पत्रों अथवा नेताओं से मत लो; प्रत्येक प्रश्न का पूर्णतया स्वतन्त्र रूप से अध्ययन किया करो। दूसरे दलों की सभाओं में झगड़ा अथवा गड़बड़ी मत करो। सभी नागरिकों के भाषण स्वातन्त्र्य और सभा स्वातन्त्र्य के अधिकार का मान करो। किसी विशेष दल अथवा उम्मेदवार को वोट देने के लिये घूंस स्वीकार मत करो; अपने आत्मा के ही समान वोट को बेचना नहीं चाहिये। अन्य वोटरों को घूंस मत दो अपने नगर निवासियों के अन्तःकरण को दूषित मत करो। अपनी वोट के मूल्य स्वरूप मोटर में बैठकर मुफ्त मत जाओ।

पालिंग स्टेशन तक अपने दोनों ईमानदार पैरों से जाओ धनी गवांरों के मोटरों से घृणा करो । अयोग्य अथवा निन्दात्मक व्यक्तिगत आक्रमणों में मत पड़ो । पहिले उद्देश्यों और राजनीति पर वादविवाद करो । असत्य अथवा अर्द्ध सत्य बातों को मत कहो । आपको पता लगेगा कि असत्य टूटी हुई बेत पर झूकने के समान है । अपनी नीति के गुणों अथवा अपने विरोधी की स्कीम के दोषों के विषय में अतिशयोक्ति से काम मत लो । खाली अलंकारिक भाषा सभी नागरिकों को कोरे बातूनी बना देती है । नीच मनोवृत्ति अथवा नीच वासनाओं को मत भड़काओ; इस प्रकार के नीच हथियारों से मोल ली हुई विजय बड़ी महंगी होती है । प्रत्येक समय स्वतन्त्र, आत्मनिर्भर, बुद्धिमान्, ईमानदार और विनयी नागरिक के समान कार्य करो । यदि आपके मित्र आपको किसी सार्वजनिक पद के लिये निर्वाचित करना चाहते हैं तो व्यर्थ और महत्त्वाकाँक्षी राजनीतिज्ञ के समान व्यवहार मत करो। सदा नम्र और शुद्ध अन्तःकरण वाले बने रहो । यदि आपका विश्वास है कि आपके पास उस सार्वजनिक पद के कर्तव्य के पूर्ण करने योग्य समय अथवा योग्यता नहीं है तो उस पद की स्वीकृति से नम्रता किन्तु दृढ़ता पूर्वक निषेध कर दो । जो आपको नहीं जानते उनके अथवा अपनी पत्नी के द्वारा, जो उच्च कोटि की ख्याति प्राप्त करना चाहती हो, अपने प्रति आवश्यकता से अधिक आग्रह मत करने दो । यदि आप अपने को योग्य समझते हैं, तो आप नाम चढ़ाये जाने (नामिनेशन) को स्वीकार

कर लें; किन्तु आपको सार्वजनिक उत्तरदायित्व के इस प्रकार के पदों के लिये कभी भी स्वयं ही बीच में नहीं कूदना चाहिये। अपने व्यक्तिगत गुणों का (जो अधिकतर काल्पनिक ही हो सकते हैं) विज्ञापन मत करो; अपने निर्वाचन में सफलता प्राप्त करने के लिये दलबन्दी मत करो। आज प्रजातन्त्र शासन प्रणाली ऐसे निरुद्देश्य वाले, और आत्मश्लाघी व्यक्तियों के हाथों में पड़ कर कष्ट पा रही है, जिनकी जीवन में एक मात्र अभिलाषा किसी कौंसिल, बोर्ड अथवा कमैटी में निर्वाचित हो जाने की है। वह धन, सम्मान और दोनों का ही लाभ करते हैं। वह नियमानुसार उद्यमी, फुर्तीले, और मिष्टभाषी स्त्री और पुरुष होते हैं, जो अपने भोले भाले नागरिकों की पीठ पर चढ़ कर अधिकारासीन होना चाहते हैं। वह अधम लोगों का दल बनाने की भारी कला में दक्ष होते हैं, और प्राय: शक्ति और प्रभाव को बनाये रखने के लिये झगड़े करा देते हैं। यदि वह एक बार निर्वाचित हो जाते हैं वह दोबारा निर्वाचित किये जाने के लिये कोई बात उठा नहीं रखते। वह व्यवसायिक राजनीतिज्ञ, घृणा करने योग्य पिछलग्गू और चापलूस होते हैं, वह राज्य के लिये खलिहान में चूहों अथवा बागों में रहने वाले नाग के समान ही भयङ्कर होते हैं। इन व्यवसायिक राजनीतिज्ञों में सम्मिलित मत होओ; वरन् उनका भेद खोल कर उनसे मुकाबला करो। यदि आपके नगर-वासी आपको कोई सब से बड़ा सार्वजनिक पद दें तो उसको अत्यन्त नम्रता पूर्वक स्वीकार कर लो, और अत्यन्त सावधानी

तथा अनवरत परिश्रम पूर्वक अपने कर्तव्य का पालन करो। ऐरिस्टाइड्स (Aristides) के समान न्यायप्रिय और न बिगड़ने योग्य बनो; लेनिन (Lenin) के समान सरल और सच्चे बनो; और पेरीकिल्स (Pericles) के समान सन्तोषी और मनस्वी बनो। परिवारिक—अभिमान से सावधान रहो। अपने पद से अपने पुत्रों और भतीजों को काम दिला कर अथवा स्वयं धनी बन कर अनुचित लाभ मत उठाओ । अपने पद को उसी प्रकार निर्धन बने हुए रिक्त करो, जैसे आप पद को लेने के समय थे व्यक्तिगत विद्वेष और अभिमान पूर्ण भाषण और ढंगों का त्याग कर दो। बिना सहिष्णुता और संयम के प्रजातन्त्र सफल नहीं हो सकता। यदि आप किसी कौंसिल अथता कमेटी के सदस्य हो तो अत्यन्त अधिक मत बोलो; अपने आपसे बाहिर मत हो; अपनी बात पर ज़िद मत करो; इस प्रकार बातचीत मत करो जैसे अन्य सभी सदस्य अज्ञानी मूर्ख हों; अपनी प्रखर वाक्तृत्व शक्ति के प्रभाव से अपने साथियों पर अपनी सम्मति को लादने का यत्न मत करो; वादविवाद और सहमत बनाने की विधि को छोड़ने में विश्वास रखो, सभा में एकतन्त्राधिकार को को कोई पसन्द नहीं करता । प्रजातन्त्र को चलाना चाहिये, हांकना नहीं चाहिये।

आपको अपनी म्यूनिसिपैलिटी और उसके इतिहास पर अत्यन्त अभिमान होना चाहिये । आपका नगर केवल सड़कों और घरों का संग्रह ही नहीं होना चाहिये, यह एक भूतकाल वाला

समाज है, जिसको कभी नहीं भूलना चाहिये। भिन्न २ प्रकार के पूर्ण वर्णन का अध्यन करो। यह पता लगाओ कि उसकी स्थापना कब हुई थी, सुन्दर टाउनहाल कब बना था, उसका वास्तु शिल्पी कौन था, उसमें क्या लागत लगी थी; नागरिकों ने उस मूर्ति और फव्वारे को कब खड़ा किया, प्रदर्शनालय के लिये चित्र कब मोल लिये, पार्क कब लगाया, अमुक स्कूल और अमुक अस्पताल कब बनाया गया, उस समारोह और उस संगति प्रतियोगिता को कब से चलाया गया। अपने नगर के इतिहास से सम्बन्धित प्रतापी नागरिकों और बड़ी २ घटनाओं के स्मृति दिवस मनाने में व्यवहारिक भाग लिया करो। मूर्तियां और सड़कें ही पर्याप्त नहीं होतीं, प्रत्येक नगर में प्रसन्नता पूर्ण मेले और बड़ी २ प्रदर्शिनियां लगनी चाहियें। इस प्रकार नागरिक भावना की शान्ति और प्रसन्नता पूर्वक उन्नति होगी। नागरिक लोग अपने रहने तथा काम करने के स्थान से ही विश्व राज्य की प्रसन्नता पूर्वक निस्वार्थ सेवा करेंगे। गुण का सब से बड़ा परितोषिक नागरिकता का पूर्ण मुकुट पहिनना है।

अपनी म्यूनिसिपैलिटी से उसी प्रकार अत्यंत अधिक प्रेम करो जिस प्रकार दांते कृतघ्न फ्लारेंस से डेबोएग्ने (de Boigne) [1]चैम्बेरी से, कैले (Calais) के छै पंच अपने नगर से, अथवा पेरीकिल्स ऐथेन्स से प्रेम करता था। ऐथेन्स के विषय में उसने निम्नलिखित विचार प्रगट किये हैं—

1—फ्राँस का एक नगर

"हमारे प्रजातंत्र में कानून के सन्मुख सब बराबर हैं। सार्वजनिक पदों पर प्रत्येक व्यक्ति की नियुक्ति योग्यता के अनुसार की जाती है, न कि प्रशंसापत्र के अनुसार। हमारे नागरिक व्यक्तिगत और सार्वजनिक दोनों प्रकार के कार्यों को अपने शासन में अच्छी तरह रख सकते हैं।.................. ऐथेन्स की कीर्ति को अपना कर्तव्य पालन करने वाले पुरुषों ने विजय कर के सम्पादन किया है।.........यदि हमारा पड़ोसी अपने आनन्द के लिये कोई कार्य करता है तो हम उससे असंतुष्ट नहीं हैं। ....हमने अपने मनबहलाव के भी अनेक साधनों का प्रबन्ध किया हुआ है।..............हमारा नगर सब के लिये खुला हुआ है।... ... ... ऐथेन्स यूनानियों की पाठशाला है।"

इस प्रकार एक वोटर तथा सार्वजनिक प्रतिनिधि दोनों ही रूप में आपको अपने सन्मुख नागरिकता के उच्च आदर्श को रखना तथा उसे कार्य रूप में परिणत करने को प्रति दिन और प्रति वर्ष उद्योग करना चाहिये। सब से उच्च कोटि की नागरिकता भी सब से उच्च कोटि का नीतिशास्त्र है।

वर्तमान् समय की आवश्यकता

ऐसे २ बड़े मनुष्य जिनका प्रबल मस्तिष्क महान् हृदय सत्य विश्वास और तयार हाथ हो:,

वह मनुष्य जिनको पद की वासना नष्ट न करें

वह मनुष्य जिनको पदों का लोभ मोल न ले लें

वह मनुष्य जो सम्मानित हों जो असत्य भाषण न करते हों
धूप में मुकुट वाले ऐसे लम्बे मनुष्य जो पाले से भी ऊपर रहें
जो सार्वजनिक कर्तव्य और व्यक्तिगत विचार में ऐसे हों

राष्ट्र

म्यूनिसिपैलिटी आप के दैनिक कार्य और सेवा का तात्कालिक क्षेत्र है। किन्तु एक दूसरे वर्ग को भी आपकी आधीनता की आवश्यकता है, और वह आपका राष्ट्र है। राष्ट्रीयता भूगोल, भाषा, धर्म, तथा अन्य उन बातों से उत्पन्न होती है। जो निकटता और सामाजिक सजातीयता की स्थापना करती हैं। विभिन्न प्रकार के मनुष्य और जाति से हम पर्वतों, समुद्रों, मरुभूमियों और बनों द्वरा एक दूसरे से प्रथक कर दिये जाते हैं। इस भौगोलिक प्रथकत्व ने ही जाति समूह के भाव और संस्थाओं को उत्पन्न किया है। भाषा की विभिन्नता ने भी इस प्रकार के समूहों में एकता को न होने दिया, इसके कारण अन्य भाषाभाषियों से वार्तालाप करना यदि बिल्कुल असंभव नहीं तो अत्यंत कठिन हो गया। भाषापरस्पर एक दूसरे की बातचीत को समझाने की योग्यता की सीमा है, और एक प्रकार के भाषा समूह वाले एक अथवा अनेक प्रदेशों को ही राष्ट्र कहते हैं। इसी को मातृभूमि, पितृभूमि आदि के आदर्श रूप में उपस्थित किया जाता है। वाल्टरस्काट अपने देश के साथ राष्ट्रीय भावों को विशेष रूप से सम्बन्धित करता है। "यह मेरी अपनी, मेरी जन्मभूमि है," बी-वाइसो ने एक राष्ट्र

को "ऐसे मनुष्यों का स्वाभाविक समाज बतलाया है, जो भूमि, निकास, प्रथाओं और भाषाओं की एकता से एक जीवन तथा सामाजिक अन्तःकरण वाले समाज के रूप में बन जाता है," मैंसिनी (Mancini) मैमिआनी (Mamiani), और पीरैन्टोनी (Pierantoni) जैसे अन्य लेखक जाति, धर्म भाषा, भौगोलिक स्थिति, प्रथाओं, इतिहास और क़ानूनों को राष्ट्रीयता के बनाने वाले तत्व मानते हैं। एफ़ लीबर (F. Lieber) राष्ट्र की परिभाषा इस प्रकार करता है, राष्ट्र शब्द को वर्तमान् समय में पूर्ण आशय, असंख्य और एक जाति वाली ऐसी जन संख्या (अत्यंत प्राचीन काल के शिकारी तथा पशुपालन के जीवन से निकली हुई) हैं। जो स्थायी रूप से ऐसे सटे हुए इलाके में बसती और खेती करती हो, जिसकी भगौलिक रूपरेख पूर्ण निश्चित हो, जिसका अपना स्वतंत्र नाम हो, जिस के निवासी अपनी ही भाषा को बोलते हों, उनका अपना साहित्य तथा सार्वजनिक संस्थाएं हों, एक ही सरकार के नागरिक अथवा प्रजा हों जिनकी एक दूसरे के साथ वास्तविक एकता और उनको अपने एक भाग्य में आबद्ध होने का विश्वास हो।"

राष्ट्रीयता के स्थानीय सजातीयता के आधार पर स्वाभाविक होने के कारण उस की विश्व-राज्य की योग्य आधीनता मानते हुए पुष्टि तथा रक्षा करनी चाहिये। विस्काउंट सेसिल ने राष्ट्रीयता के मूल्य और उसकी जीवन शक्ति पर निम्न

शब्दों में विशेष बल दिया है राष्ट्रीयता मनुष्य जाति का इतना प्रबल और अनेक प्रकार से प्रशंसनीय गुण हैं कि यदि वह वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीयता का विरोधी सिद्धान्त हो तो अंतर्राष्टीयता की सफलता बहुत कुछ असंभव हो जावें। राष्ट्रीयता वास्तव में ही विशेष ध्यान देने योग्य ऐतिहासिक शक्ति है। हम विश्व बन्धुत्व वाद के सिद्धान्तों के बालू में अपने समुन्नत मस्तकों को डुबो कर राष्ट्रीयता के अस्तित्व की उपेक्षा नहीं कर सकते। जे. एम. रोबर्टसन के समान भूल चूक में ही राष्ट्रीय ज्ञान को नष्ट कर देना बुद्धिमता पूर्ण नहीं है। अरबिन्द घोष के निम्न सिद्धांत को खेद पूर्वक स्वीकार करना सत्य के अनुसार अधिक उचित होगा। मानवी उन्नति की वर्तमान अवस्था में मनुष्य जाति के जीवित समूह को ही राष्ट्र कहते हैं। किन्तु राष्टीयता के दो रूप हैं—सामाजिक और असामाजिक इन दोनों ही रूपों को आगे फिर भी राजनीतिक राष्ट्रीयता और सांस्कृतिक राष्ट्रीयता में विभक्त किया जा सकता है।

सामाजिक राष्ट्रीयता

अपने देश, उसके देहात, भोजन, साहित्य, इतिहास, पहिनावे और रीतियों आदि में विशेष अनुरक्ति के भाव को—जब इस प्रकार के भाव को मनुष्यजाति और विश्वबन्धुत्व के आदर्श के अनुसार एक रस कर लिया जावे—सामाजिक राष्ट्रीयता का भाव कहते हैं। जिस प्रकार परिवार के द्वारा

व्यक्तित्व को नहीं दबाया जाता और म्यूनिसिपैलिटी के द्वारा परिवार प्रथा को बन्द करने आवश्यक नहीं, उसी प्रकार राष्ट्रीयता भी एक केन्द्र वाले पांच वृत्तों में से एक वृत्त हो सकती है, इसी से हमारा जीवन स्वयं विकसित होता है। आपको धर्म और उस जनता में विशेष रुचिपूर्वक भाग लेना स्वाभाविक और अनुमोदित है, जिसमें आप भौगोलिक स्थिति और भाषा के समाज के कारण सुगमता पूर्वक कार्य कर सकते हैं। इस भाव में आपका 'देश' आपके लिये अनेक प्रकार से सेवा का स्थानीय क्षेत्र हो सकता है। इस प्रकार एक अंग्रेज मनुष्य जाति के लिये इंगलैण्ड में—जहां उसके साथी देशभक्त उसकी बात को सुगमता से समझ सकते है—अधिक प्रभावपूर्ण ढङ्ग पर काम कर सकता है; और एक टर्की का निवासी विश्व-राज्य के सेवक के रूप में चाइल अथवा जापान की अपेक्षा टर्की में ही अधिक उपयोगी हो सकता है, इन परिस्थितियों में आपके 'देश' और 'राष्ट्र' के लिये उत्पन्न विकसित होने वाला प्रेम और भक्ति का भाव बिलकुल ही अनुचित नहीं है; यह बिलकुल योग्य और प्रशंसनीय है। स्काटलैण्ड, स्वेडेन आदि सभी देशों के निवासी इस प्रकार निर्दोष देशभक्त बन सकते हैं। एस्चाइलस (Aeschylus) ने इस प्रकार की देशभक्ति की प्रशंसा करते ऐथेन्स वासियों को इस प्रकार सम्बोधित किया था—"आपका नगर और राष्ट्र सदा ही न्याय के प्रेमियों और कार्यकर्ताओं तथा अपराधों के शत्रु और निवारण करने वालों के रूप में

संसार में सदा ही चमकता रहेगा।" यूरीपाइड्स (Euripides) ने कहा था, "मेरे पूर्वजों की प्रिय भूमि! क्या यह सब तुझ से उसी प्रकार प्रेम करेंगे जिस प्रकार मैं करता हूं।" दान्ते एक सार्वजनिक प्रतिभाशाली लेखक था, किन्तु उसका महान् आत्मा भी 'अपने जन्म के नगर के प्यारे नाम' से अत्यन्त प्रभावित हो उठता था और उसको 'अपनी जन्मभूमि के प्रेम' से 'रोका गया' था। एच० वान फैलर्स्लेबेन (H. Von Fallersleben) ने कहा है, "मैं आनन्द और संगीत की भूमि—जर्मन शब्दों को फिर सुनता हूं। प्यारी आनन्द दायक पितृभूमि, मैं तेरा स्वागत करता हूँ।" शेंकेनडार्फ (Schenkendorf) ने लिखा है, "हे मातृभाषा, मातृ संगीत! तू कितनी प्यारी और आनन्द से भरी हुई है।" ब्लेंक ने 'इङ्गलैण्ड के हरे और सुहावने देहात' के विषय में अत्यन्त प्रेमपूर्ण शब्द कहे हैं। ब्राउनिंग ने कहा है, "इङ्गलैण्ड में जाना एक त्योहार के आनन्द के समान है।" इस प्रकार इन कवियों ने उस स्वाभाविक देशभक्ति का वर्णन किया है, जो विश्व-बन्धुत्व की नागरिकता के आदर्श की विरोधी नहीं है।

राष्ट्रीयता का स्वाभाविक निर्दोष रूप राजनीतिक और सांस्कृतिक संस्थाओं के विषय में स्पष्ट शब्दों की मांग कर सकता है। इस प्रकार की माँग को अविलम्ब स्वीकार कर लेना चाहिये। इस प्रकार हम प्रोफेसर एच० जे० लास्की के शब्दों में "साधिकार राष्ट्रीयता के समीकरण" को कार्यरूप में परिणत

कर सकते हैं। प्रत्येक राष्ट्र अपने साहित्य का निर्माण कर सकता है, उसको अपने साहित्य का निर्माण करना ही चाहिये। उसको अपने उन कवियों से प्रेम करना चाहिये, जिनके ग्रन्थों को वह मूल रूप में अध्ययन कर सकता हो। उसको अपने ही गीतों और प्रार्थनाओं को गाना चाहिये। कविता जलवायु के समान विशेष रूप से उसी भूमि से उत्पन्न होती है। अनुवाद की हुई विदेशी कविताएं राष्ट्रीय कविताओं का स्थान कभी नहीं ले सकतीं। सांस्कृतिक राष्ट्रीयता अस्थायी रूप से वेल्श की ईस्टेडफाड (Eisteddfod) और भारतीय हिन्दी भाषा भाषियों की "हिन्दी साहित्य सम्मेलन" जैसी संस्थाओं की स्थापना कर सकती है। यदि किसी राष्ट्र को अपने साहित्य का (विश्व-साहित्य की बिना उपेक्षा किये हुए) अभिमान है तो वह मनुष्यजाति के विचार को न तो निर्बल करता है और न उसको नीचा ही कर सकता है। यहाँ तक कि एक राष्ट्र को ऐतिहासिक स्मृतिदिवसों के लिये अपने स्थानीय वीर स्त्री और पुरुषों को—यदि वह विश्व भर में प्रसिद्ध होने योग्य महत्वपूर्ण नहीं है—निर्वाचित करने की अनुमति देनी चाहिये; किन्तु उन्होंने रचनात्मक और प्रशंसनीय कार्यों के द्वारा मनुष्यजाति की सराहनीय सेवा की हो। इस प्रकार प्रत्येक देश के निवासी अपने २ राष्ट्रीय वीरों के स्मृति-दिवसों को मना सकते हैं। इस प्रकार स्वाभाविक राष्ट्रीयता विश्व इतिहास के अन्दर २ ही अपनी ऐतिहासिक परम्परा को जीवित रख सकता है।

राजनीति के क्षेत्र में राष्ट्रीय प्रदेशों को आरम्भ में विश्व-राज्य के शासन सम्बन्धी स्थानीय विभागों के रूप में उसी प्रकार मानना चाहिये, जिस प्रकार बंगाल और गुजरात भारतवर्ष के प्रान्त हैं। हमको समय और रीति रूपी दो वास्तुशिल्पियों के द्वारा पहिले ही रखी हुई नींव पर ही निर्माण करना चाहिये। कुछ समय के लिये अल्बेनिया, हालैण्ड और पेरू को विश्व-राज्य के शासन सम्बन्धी विभाग बने रहने दो। बाद में इन राष्ट्रीय प्रदेशों की उपेक्षा करके पृथ्वी को शासन सम्बन्धी कार्य के लिये नये सुविधाजनक विभागों में नये सिरे से विभक्त करना उसी प्रकार सम्भव हो जावेगा जिस प्रकार फ्रांस में प्रान्त तोड़ दिये गये और विभाग स्थापित कर दिये गये। मनुष्यजाति के झण्डे के नीचे पुराने नामों और संगठनों को बने रहने दिया जा सकता है, किन्तु वह स्वतन्त्र राज्य न होंगे। वेल्स और स्काटलैण्ड धार्मिक तथा सांस्कृतिक उद्देश्यों से अपने राष्ट्रीय रूप को धारण किये हुए हैं किन्तु वह अब स्वतन्त्र राज्य नहीं हैं। 'पितृभूमियां' अथवा 'मातृभूमियां' विश्व-राज्य में सम्मलित होने पर पूर्णतया नष्ट नहीं की जावेगी। उनके नाम, रूप और रूपरेखा बने रहेंगे; किन्तु वह विश्व-राज्य और उनकी नीति के पूर्णतया आधीन होंगे। राष्ट्र कुछ समय के लिये एच० जे० लस्की के शब्दों में 'अप्रधान राज्यावस्था का आनन्द ले सकते हैं; वह अपनी 'राज्यावस्था' को पूर्णतया नष्ट करने के लिये भी तयार रहेंगे। तब उस समय किसी को भी 'मैं फ्रांसीसी हूं', अथवा

'मैं अंग्रेज़ हूं', अथवा 'मैं भारतवासी हूं', न कहने दिया जावेगा। उस को इस प्रकार सोचने और कहने का अभ्यास कराया जावेगा, "मैं एक मनुष्य, विश्व-राज्य का नागरिक तथा एक फ्रांसीसी, अंग्रेज़ और भारतवासी हूं; इस प्रकार वह एक महान् सम्पूर्ण न तो नष्ट होगा और न उन टुकड़ों में ही विभक्त होगा, जिनसे वह बना है, वह केवल उनको संगठित और एकरूप बनावेगा। बिश्वराज्य नष्ट करने के लिये नहीं, वरन् पूर्ण करने के लिये आया है।

असामाजिक राष्ट्रीयता

स्वाभाविक और सामाजिक राष्ट्रीयता इस प्रकार की होती हैं, और इसी प्रकार वह अपने को साहित्य, इतिहास और राजनीति में प्रगट कर सकती है। यह विश्वराज्य की शत्रु नहीं, वरन् उसकी सच्ची और नम्र सहायक होती है। किन्तु देशभक्ति अस्वाभाविक असामाजिक भी होती है। ऐसी देशभक्ति विनाशत्मक और पैशाचिक शक्ति होती है। वह मनुष्य जाति को आचरण-हीन और पतित बनाती है! स्वाभाविक राष्ट्रीयता की तुलना ग्रीष्म ऋतु की सायंकालीन शीतल मन्द पवन अथवा शीत ऋतु के सेनाशिविर की अग्नि से की जा सकती है। किन्तु इस अस्वाभाविक राष्ट्रीयता की तुलना मध्य अमरीका की भयङ्कर आंधी अथवा बड़े भारी मैदान की बढ़ती प्रबल अग्नि से की जा सकती है जब यह असामाजिक राष्ट्रीयता का राक्षस साधारण स्त्री और पुरुषों में प्रवेश करता है तो उनकी तर्क शक्ति और अन्तःकरण

नष्ट हो जाते हैं और वह पागल कुत्तों तथा गुर्राने वाले भेड़िये के समान आचरण करते हैं । यह वास्तव में एक प्रकार का मनुष्य सम्बन्धी पागलपन, विदेशियों से भयभीत होने का रोग होता है, जो मनुष्यों को सुमार्ग से भगाता है । इस प्रकार के रोगी, नीच, पागल और मनुष्यता से गिरे हुए रष्ट्रीय लोगों में निम्नलिखित विशेषताएं होती हैं—

(१) वह अपने ही राष्ट्र के विषय में विचार करते और वार्तालाप किया करते हैं, अन्य राष्ट्रों के वह विरोधी अथवा उनसे तटस्थ होते हैं । उनकी दृष्टि इतनी संकुचित होती है कि पृथ्वी के लम्बे चौड़े मानचित्र पर उनको केवल अपना छोटा सा देश ही दिखाई देता है । इस प्रकार उन के मस्तिष्क पुराने ढंग की चीनी स्त्रियों के समान सिकुड़े हुए और बिगड़े हुए आकार के होते हैं । उनकी बुद्धि बौनी ही रह जाती है; क्यों कि वह सदा ही अस्वाभाविक राष्ट्रीयता की तङ्ग जैकेट से घिरी रहती है । एक बार एक प्रसिद्ध मिश्री नेता ने कहा था, 'मेरी रुचि केवल मिश्र में ही है," कभी २ समाचारपत्रों में इस इस प्रकार के बेतुके समाचार आया करते हैं, "समुद्र में तूफान आ गया । जहाज टकरा करा टूट गया । सभी ब्रिटिश यात्री सुरक्षित हैं ।" सम्पादक का स्पष्ट रूप से यह विश्वास कि जनता का अन्य यात्रियों के भाग्य से कोई सम्बन्ध नहीं । इस प्रकार का तंग विचार वाला सामुहिक अभिमान ही अविश्वास और घृणा को उत्पन्न करता है । अस्वाभाविक राष्टीयता साहित्य में घृणा, निन्दा

और ईर्ष्या के कठोर और अप्रिय शब्दों में सुनाई देती है। टेनी-सन ने फ्राँसीसी लोगों के स्वातन्त्रता के प्रेम को 'स्कूल के लड़कों की उष्णता. अथवा केल्ट लोगों का अन्ध प्रलाप" बतलाया है। एच० हीन (H. Heine) ने लिखा है, "प्रकृति ने अंग्रेजों को कोई सुन्दर और प्यारी वस्तु नहीं दी।" शेक्सपीयर इंगलैण्ड की प्रशंसा में उसको "ऐश्वर्य की भूमि, और युद्ध के देवता का प्रधान स्थान बतलाता है, किन्तु वह कम प्रसन्न देशों की ईर्ष्या" का भी उल्लेख करता है। किपलिंग 'बिना कानून की जातियों का' वर्णन करता है। जर्मन लोग एक युद्ध का गीत गाया करते थे कि "ईश्वर इंगलैण्ड को दण्ड दे।"

(२) इस प्रकार के राष्ट्रीय लोग अपने ही राष्ट्र के इतिहास का अध्ययन करते और, विश्व-इतिहास की उपेक्षा करते हैं। उनको स्कूल में उन्हीं के देश के इतिहास की शिक्षा दी जाती है, और वह केवल उसी ऐतिहासिक परम्परा से प्रेम करते हैं। वह एक गाड़ी में जुते हुए घोड़े के समान होते हैं; उसको पूरे देहात को देखने से रोका जा सकता है, कूंचवान उसको केवल अपने सामने की सड़क को ही देखने देता है। इस प्रकार का राष्ट्रीय अपने देश के भूतपूर्व शासकों, योद्धाओं, कवियों और राजनीतिज्ञों के विषय में सब कुछ जानता है। किन्तु वह अन्य देशों के इतिहास के खेदजनक रूप से उपेक्षा करता है। इस प्रकार के राष्ट्रीय व्यक्तियों के ऊपर दया करनी चाहिये। वह उस मूर्ख यात्री के समान होता है, जो इंगलैण्ड

जाकर केवल पवन्दी बेर खाने पर ही जोर दें और झड़बेरी के बेरों, मकोय और सेवों को बिल्कुल न छुवें।

(३) इस प्रकार के राष्ट्रीय व्यक्ति यह भी विश्वास करते (अथवा विश्वास करने का बहाना करते हैं) कि संसार में केवल उनका देश और उनका राष्ट्र ही सब बातों में सब से अच्छा है। यह राष्ट्रीयता के सिद्धान्त की बड़ी विचित्र और भद्दी धारा है। लोवेल ने संयुक्त राज्य अमरीका के विषय में लिखा है। "राष्ट्रों में वह अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा अधिक समुन्नत विचारों का है।" एक स्वेडेन के व्यक्ति ने मुझ से पूछा, "क्या आप स्वेडेन के जलवायु को संसार भर में सब से उत्तम नहीं मानते?" मैं ने उत्तर दिया, "हां और स्वेडेन में भी मैं सब से अच्छी जलवायु गाथेनबर्ग (Gothenburg) नामक उस नगर की समझता हूं। जहां मैं इस समय रहता हूं। और गाथेनबर्ग में भी मैं अपने मुहल्ले का जलवायु सब से अच्छा समझता हूँ।' एक इंगलिश व्याख्याता ने इंगलैण्ड के जलवायु के सम्बन्ध में यही दावा किया था। सेसिल रोड्स (Cecil Rhodes) ने अपने वसीयत-नामे में घोषणा की है, "मेरी सम्मति में ब्रिटिश जाति इतिहास की अब तक की उत्पन्न हुई जातियों में सब से अच्छी है। कारनर (Korner) कहता है, "हे जर्मन राष्ट्र! तू सब से उत्तम और प्रतापी है।" डैनिएल वेस्टर ने कहा है, "परमात्मा को धन्यवाद है कि मैं—मैं भी एक अमरीकन हूं" डबल्यु ई, हेनरी इंगलैंड को "परमात्मा की निर्वाचित पुत्री और प्राचीन तलवार

की मुख्य धनी" बतलाया है, जब कि शेक्सपीयर अपने देश को, 'दूसरा अदन, अथवा स्वर्ग बतलाता है। सिलविओ पेलिको ने कहा है, 'हे इटली; क्या तू सब देशों से अधिक नम्र नहीं है ? क्यातू प्रत्येक ललित कला की माता नहीं है ?"

एक बुद्धिमान् राष्ट्रीय अपने देश से उसी प्रकार प्रेम करता है, जिस प्रकार एक कर्तव्यशील पुत्र अपनी माता से प्रेम करता है। उससे इस बात की आशा नहीं की जाती कि वह अपनी माता को संसार की अन्य सब स्त्रियों से उच्च होने की युक्ति दे। किन्तु अस्वाभाविक राष्ट्रीय व्यक्ति आपनी मातृभूमि से उस मूर्ख प्रेमी के समान प्रेम कता है, जिसको अपनी प्रेमिका में कोई त्रुटि दिखलाई नहीं देती और वह उसको अपने इस मोह में अमूल्य आदर्श समझता है। तथ्य यह है कि प्रत्येक में उसी प्रकार अपने गुण और दोष दोनों ही होते हैं जिस प्रकार उसके जलवायु से हानि और लाभ दोनों होते हैं। किन्तु उतावले मूर्ख तथ्य और सत्य की कब चिन्ता करते हैं ? और आत्म प्रशंसा पारस्परिक प्रशंसा से कब सन्तुष्ट हो सकती है ? राष्ट्रीयता संगठित पाखण्ड है।

(४) असामाजिक राष्ट्रयता का दावा है कि उनके राष्ट्र का इतिहास में एक विशेष और अनूठा उद्देश्य है और इसी कारण उनका देश अन्य देशों की अपेक्षा उच्च है। उन अन्य देशों को वह निन्दित नामों से पुकारते हें। इबरानी (Hebrews) लोगों का विचार था कि वह ईश्वर के विशेष रूप से निर्वाचित

मनुष्य थे; अन्य राष्ट्र को वह नास्तिक (Gentiles) अथवा गैरयहूदी कहा करते थे। यूनानी लोग बर्बर लोगों की निंदा किया करते थे। हिंदू लोग म्लेच्छों को नीच समझते थे। विक्टर ह्यूगों ने कहा था हे फ्रांस! यह संसार की आवश्यकता है किंतू जीता रहे मैं फिर कहता हूं कि मनुष्य जाति के लिये फ्रांस का अस्तित्व आवश्यक है। मैज़िनी ने इस असत्य विचार का प्रचार किया था कि प्रत्येक राष्ट्र का एक 'उद्देश्य' है। उसने लिखा है, "हम ·······राष्ट्रीयता में विश्वास रखते हैं जो जनता का अन्तःकरण है, और जो, सहयोग के कार्य में उनको उनका भाग बांट कर मनुष्य जाति में उनका काम देकर पृथ्वी पर उनके अर्थात् उनके व्यक्तित्व के उद्देश्य को पूर्ण करता है। मैज़िनी 'राष्ट्र' का एक आध्यत्मिक अस्तित्व मानता है जो शेष सभी राष्टों से प्रत्येक समय प्रथक् और भिन्न रहना चाहिये। जी० फेरेरो ने भी 'राष्ट्रीय उद्देश्य' के विषय में कहा है, यह सिद्ध नहीं किया जा सकता है कि किसी राष्ट्र का विशेष 'उद्देश्य' है। 'राष्ट्रीयता' केवल भूगर्भविज्ञान सम्बन्धी तथा ऐतिहासक आकस्मिक घटना है। राष्ट्र धीरे २ मनुष्य जाति की एकता में डूबते जावेंगे। यह एक को बड़ा और शक्तिशाली समझने की भूल एक पागलखाने के अन्दर रहने वाले उन व्यक्तियों के विचित्र मनोविज्ञान को भी धोखा देती है, जिनमें से प्रत्येक अपने को सीज़र, नेपोलियन, ईसा मसीह अथवा स्वयं सर्वशक्तिमान परमात्मा समझता है। यह सारा संसार पागल है।

(५) असामाजिक राष्ट्रीय लोग ऐसे पूर्ण और अप्रतिबद्ध राष्ट्रीय अधिकार का दावा करते, जो एक स्वतन्त्र राष्ट्रीय राज्य को सुशोभित करता है। सैविगिनी (Sawigny) राज्य को 'राष्ट्र का विकसित रूप' मानता है। जे० एस० मिल की शिक्षा है कि "स्वतन्त्र संस्था के लिये यह एक साधारणतया आवश्यक शर्त है कि सरकारों की सीमाएं राष्ट्रीय सीमाओं से बिल्कुल मिलती जुलती हों।" ओलीवर वेंडेल होम्स (Oliver Wendell Holmes) बड़े भारी आनन्द में विभोर हो कर गाता है। "सदा ही एक झंडा एक देश, एक हृदय, एक हाथ और एक राष्ट्र" विश्वबन्धुत्व का एक सच्चा पुजारी सब से बड़ा अधिकार केवल एक विश्व राज्य को देना चाहता है। वह अपने देश को उस राज्य का केवल एक शासन सम्बन्धी विभाग मानता है। वह तो केवल यही जानता है कि जिस प्रकार पृथ्वी और मनुष्य जाति एक है उसी प्रकार सब से बड़ी शक्ति वाला राज्य भी केवल एक ही होना चाहिये। वह किसी झंडे अथवा राष्ट्रीय गान पर मोहित नहीं होता। उसका यह विश्वास नहीं है कि राष्ट्रीय राज्य आवश्यक अथवा लाभदायक संस्था है, किन्तु असामाजिक राष्ट्रीय व्यक्ति अपने छोटे से राष्ट्रीय-राज्य और उसके विशेष चिन्हों पर लट्टू रहता है। वह एक रंगीन चिथड़े से 'झण्डे' के नाम पर प्रेम करता है। वह अत्यन्त भावुकता के साथ कुछ शेखी भरी असत्यपूर्ण तुकबन्दियों को गाता है और उनको 'राष्ट्रीय गान' कहता है। वह एक क्षण-

मात्र की सूचना पर हीं राष्ट्रीय-राज्य के लिये मर मिटने के लिये तयार है; और वह उसके वास्ते दूसरे की हत्या करने के लिये भी बिल्कुल तयार है। होमर ने अत्यन्त प्राचीन काल में कहा था, "मनुष्य के लिये सब से उत्तम शकुन अपने देश के लिये युद्ध करना है।" जो कुछ एफ्रीका के आदिम निवासियों के लिये जादूगिरी और फिलिस्तीन वालों के लिये उनका आधे मनुष्य और आधे मछली के आकार का देवता है वही देशभक्त के लिये राष्ट्रीय-राज्य है, एच० हीन (H. Heine) ने कहा है, "पितृभूमि के लिये जीना अथवा मरना कितना आनन्ददायक है।" (होरेस ने केवल मरने का ही उल्लेख किया है)। ब्राउनिंग पूछता है, "इङ्गलैंड ने मुझे यहाँ सहायता की है, बतलाओ, मैं इङ्गलैंड की किस प्रकार सहायता करूँ।" शिलर पूछता है, "यदि पितृभूमि के लिये युद्ध नहीं करना है तो फिर बतलाओ कि पवित्र, निर्दोष और अच्छा कार्य कौनसा है।" मुटैस्टैसिओ (Metastasio) ने कहा है, "हमारा देश. जिसके लिये हम प्रत्येक वस्तु न्योछावर कर सकते हैं।

(६) असामाजिक राष्ट्रीय लोग शिक्षा देते हैं कि राष्ट्रीयता ही मनुष्य समाज में सङ्गठन का सब से उच्च सिद्धान्त है। बर्नहार्डी (Bernhardi) ने लिखा है, "राज्य और राष्ट्रीयता की सीमा से बाहिर सामूहिक मनुष्य जाति के लिये किसी कार्य का हो सकना असम्भव है। इस प्रकार के प्रचार कल्पनाशीलों के विशाल साम्राज्य से सम्बन्ध रखते हैं।" शिलर ने भी, जो

एक संकुचित विचारों वाला राष्ट्रीय व्यक्ति था, घोषणा की है कि देशभक्ति का भाव सब भावों से अधिक मूल्यवान है। इस प्रकार के सिद्धान्त वाले सभी बातों में अन्तर्राष्ट्रीयता का विरोध किया करते हैं। वह धार्मिक और वैज्ञानिक संस्थाओं को भी राष्ट्रीय जामा पहिनाना चाहते हैं। वह खेलों और कला का भी विशुद्ध राष्ट्रीय ढङ्ग पर संगठन करना चाहते हैं। वह इस बात को भूल कर कि ईसाइयत एक ऐसा विश्व सामान्य उपदेश है जिसमें कोई यहूदी, अथवा यूनानी, ट्यूटोन, अथवा सेल्ट नहीं हो सकता "राष्ट्रीय" ईसाई गिर्जों की स्थापना करते हैं। 'राष्टीय' गिर्जा तो स्वयं ही अपना खंडन करने वाला शब्द है। प्रत्येक विश्व-आन्दोलन शीघ्र ही राष्ट्रीयता के जाल में फँस जाता है और तब उसको 'राष्ट्रीय' हथकड़ियों और बेड़ियों में जकड़ दिया जाता है। अब क्रास (Cross) का स्थान झंडे ने ले लिया है। उसी प्रकार समाजवाद भी अनेक 'राष्ट्रीय' भागों में बँट गया है, जिनको सर्वभक्षी राक्षस राष्ट्रीय-राज्य खा गया है। इस प्रकार इस समय प्रत्येक देश में प्रत्येक संस्था धीरे २ किन्तु निश्चय से ही राष्ट्रीयता में उसी प्रकार घुलती जा रही है, जिस प्रकार सब पौदे और प्राणी चट्टानों के रूप में पत्थर हो जाते हैं।

(७) असामाजिक राष्ट्रीयवाद राष्ट्रीय-राज्य की ही प्रशंसा करता और उसको ईश्वर के समान पूजता है। इस नीच सिद्धान्त के परिणाम स्वरूप यह राष्ट्र की सैनिक विजयों, राजनीतिक

अधिकार और आर्थिक सफलता को उसके धर्म, कला, विज्ञान और साहित्य के कार्यों की अपेक्षा कहीं अधिक महत्वपूर्ण समझता है। यह पशुबल और अर्थ-शक्ति का खुला सिद्धान्त है, यह राष्ट्रीय-राज्य के दोनों संरक्षकों, युद्ध के देवता और कुवेर का गन्दा पूजन है। इस प्रकार के राष्ट्रीय लोग नेपोलियन नेल्सन और फ्रेडेरिक के लिये गोएथे, विक्टर ह्यूगों, शेक्सपीयर, सेंट मार्टिन, सेंट बोनीफेस, पस्टयोर अथवा लिस्टर की अपेक्षा कहीं अधिक समृद्धि स्मृतिचिन्ह बनाते हैं। इन आधुनिक देश-भक्तों की अपेक्षा क्रूर मंगोल और असीरियन विजेता कहीं अधिक ईमानदार थे। वह अपनी विजय की स्मृति में नरमुण्डों के बड़े२ ऊँचे ढेर (मीनारें) बनाते थे, किन्तु यह 'सभ्य' पाखण्डी लोग ट्रैफ़लगर स्क्वाएर और प्लेस वेनडोम में धातु और पत्थर की मीनारें बनाते हैं। मस्तिष्क के नेत्र इस प्रकार समारोह पूर्वक बनाये हुए उस पत्थर और धातु को अचानक ही युद्धस्थल में नरमुण्डों और अस्थियों के रूप में बदलते हुए देख सकते हैं। इस प्रकार की राष्ट्रीयता सभी बच्चों को आचरण-हीन और निर्दय बनाती है, क्योंकि वह सिकन्दर, जूलियस सीज़र, ग़ज़नी के महमूद, कोर्टेस, पीज़ैरो, नेपोलियन, वेलेस्ली और किचनर जैसे निर्दय नर-संहारकों का सदा सम्मान करती है, और अनेक सन्तों, साधुओं तथा विद्वानों की तो एक सामान्य मूर्ति बनवा कर उनको पूतछी भी नहीं। ब्रिटिश जनता २४ मई को साम्राज्य-दिवस मनाया करती है, एक अध्यापक को इस

अवसर पर होने वाले झण्डाभिवादन समारोह में सम्मिलित होने से निषेध करने पर नौकरी से पृथक् कर दिया गया था। इंगलैण्ड का वास्तविक धर्म आज साम्राज्यवाद है, ईसाइयत नहीं, आज एक नास्तिक अथवा ईसाइयत को ईश्वर का धर्म ना मानने वाले को इतनी निर्दयतापूर्वक दण्ड नहीं दिया जाता, जितना शुद्ध अन्तःकरण से युद्ध पर आपत्ति करने वाले को दिया जाता है. फ्रांस वालों ने अलजीरिया के विजय की शताब्दी को अत्यन्त समारोहपूर्वक मनाया था। लन्दन और पैरिस के कुछ प्राचीन स्मृतिचिन्हों में से रक्त की गन्ध आती हैं। यूरोप की राजधानियों की सड़कों और स्टेशनों में सैनिकवाद का धुआँ उड़ रहा है। ट्रैफलगर स्क्वायर, एवेन्यू वैग्राम, ऐवेन्यू फ्रीडलैण्ड और सीजेसैली आदि इनमें मुख्य हैं। कविता भी सैनिकवाद की सेवा करने के लिये वेश्या के समान बन गई है। किपलिंग के लिये 'हमारी दूर तक फैली हुई युद्ध पंक्ति ही अधीश्वर' है। टेनीसन ने वेलिंगटन और वाटरलू की प्रशंसा के खूब गीत गाए है। शेक्सपीयर ने हेनरी पंचम की एक योधा रूप में प्रशंसा की है। बाल्मीकि ने राम की लङ्का और उसके दुष्ट शासक को जीतने के लिये प्रशंसा की है। कैमोज़ (Camoes) ने अपने 'युद्ध प्रिय राष्ट्र' और 'नवीन साम्राज्य के संस्थापक अजेय वीरों' को अमर बनाने की अपनी अभिलाषा को स्वीकार किया है। हम को लैमरटांइन के शब्दों में ही फिर कहना पड़ेगा, "राष्ट्रों! यह एक शब्द है जिस का अर्थ बर्बरता है।

हम इस बात को अत्यन्त भय के साथ पढ़ा करते हैं कि कार्थेज और मेक्सिको में देवताओं के सन्मुख नर बलि दी जाती थी। किन्तु राष्ट्रीयवाद के इस आधुनिक धर्म के रक्त के प्यासे पुजारियों के द्वारा चढ़ाये जाने वाले आहुति बनने वालों के लिये यह तुच्छ बलिदान क्या है ? राष्ट्रीय-राज्य की तुलना मध्य जीवन कल्प (Mesczoic Age) के डाइनोसारस (Dinosaurus) और टैरनोसारस (Tyrannosaurus) नाम के लुप्त प्राणियों से सत्य ही की जा सकती है । उन विशाल काय सरीसृपो के समान स्वतन्त्र राष्ट्रीय-राज्य के भी सोचने और विचारने के लिये मस्तिष्क अत्यन्त छोटा, किन्तु चीरने, फाड़ने और नष्ट करने के लिये दांत और पंजे अत्यन्त तेज़ होते हैं। हमको आशा करनी चाहिये कि उनके समान ही यह भी शीघ्र ही लुप्त हो जावेगा।

इसके विरुद्ध स्वाभाविक और साँस्कृतिक राष्ट्रीयवाद युद्धों और विजयों से सच्चे हृदय से लज्जित होता है। वह सैनिक स्मृतिचिन्हों को पृथ्वी से मिला देना चाहता है । वह कवियों, वैज्ञानिकों, कलाकारों, लेखकों तथा अन्य वास्तविक महान् स्त्री पुरुषों के जिनके नाम राष्ट्र को प्रकाशित करते हैं, की स्मृति में उसी प्रकार सुन्दर २ स्मृतिचिन्ह बनाना चाहता है, जिस प्रकार स्कोटलैण्ड वालों ने एडिनबरा में वालटर स्काट का सम्मान किया है। जब इस प्रकार के प्रशंसनीय राष्ट्रीयवाद का शासन होगा तो वह इतिहास से रक्त के रंग को उड़ा देगा।

राष्ट्रीयता और युद्ध

राष्ट्रीय राज्य राष्ट्रों में युद्ध को प्रोत्साहित करता है। वास्तव में उसका मुख्य उद्देश्य और कार्य ही युद्ध होता है। स्थल सेनाएं, जल सेनाएं और हवाई बेड़े एकाधिकार के चिन्ह होते हैं। बिना स्कूलों और सफ़ाई, बिना अस्पतालों और शुद्ध जल राज्य भले ही हों, किन्तु बिना सेना का राज्य किसने सुना है? जिस प्रकार प्रत्येक राष्ट्र को अन्य राष्ट्रों की भलाई का ध्यान न रखने की शिक्षा दी जाती है उसी प्रकार प्रत्येक राज्य के नागरिक भी अपना यह कर्तव्य समझते हैं कि वह उन सब राज्यों का मुकाबला केवल शान्तपूर्ण ढङ्गों से ही न करके, घातक युद्धों से भी करें। इस प्रकार नीति शास्त्र को नष्ट करके उसको भिन्न भिन्न किया जाता है। क्यों कि सब से प्रथम और सब से अधिक सार्वजनिक नैतिक सिद्धान्त यही है कि 'हत्या मत करो।' जब इस प्रकार हत्या का समर्थन करके उसकी प्रशंसा की जाती है तो युद्ध में अन्य छोटे २ पाप भी हृदय को बिना ठेस पहुँचाये ही कर लिये जाते हैं। नागरिक को अपने राष्ट्र के 'सम्मान' और लाभ के लिये चोरी करना और असत्य भाषण करना सिखलाया जाता है।

राष्ट्रों के अन्दर युद्ध लोभ और घृणा से उत्पन्न होने वाली बड़ी भारी बुराई है। राष्ट्र किसी न किसी रूप में धन के लिये युद्ध करते हैं। मित्रता तथा भाईचारे की भावना में धन को आपस में न बांट कर प्रत्येक राष्ट्र एक दूसरे से अधिक

छीनने और निर्बल राष्ट्रों के श्रमिकों पर अत्याचार करने का यत्न करता है। यह लोभ यह भयानक और हिंसक लोभ ही युद्ध का मूल कारण है। और इस युद्ध में उसका एक मात्र ध्यान और अग्रभाग पूंजीवाद में है। राष्ट्र पृथ्वी, दासों, कर, ट्रेडमार्क (व्यापारिक चिन्ह) पूंजी लगाने के लिये क्षेत्र कच्चे माल, शासन सम्बन्धी कार्य और पदों तथा अन्य आर्थिक सुविधाओं के लिये युद्ध किया करते हैं। मार्कस कैटो ने रोम के सीनेट भवन में कार्थेज के भूमि के अंजीरों को फेंक कर युद्ध के वास्तविक उद्देश्य को अत्यन्त प्राचीन काल में ही स्पष्ट कर दिया था। प्लूटार्च कहता है जब सीनेटरों ने उनके आकार और सौन्दर्य की प्रशंसा की तो उसने कहा जिस देश में यह अंजीर उत्पन्न होते हैं वह रोम से केवल तीन दिन के समुद्री मार्ग पर ही है। ट्यूटोन लोगों ने पृथ्वी के लिये रोम के विरुद्ध युद्ध किये। आधुनिक युग में भी स्पेन वालों ने अमरीका के सोने और चांदी के अपने एकाधिकार की रक्षा के लिये इंगलैण्ड से युद्ध किया था। अंग्रेजों ने डच और फ्रांसीसी लोगों से युद्ध किया डचों ने पुर्तगालवालों से पूर्व व्यापार और कर के लिये युद्ध किया था। जर्मनों ने इंगलैंड, फ्रांस और पुर्तगाल में बांटे हुए उपनिवेशों को प्राप्त करने के लिये एक बड़ा जहाजी बेड़ा बना कर गत महायुद्ध में भाग लिया। अङ्गरेज भी जर्मनी के व्यापारिक तथा औद्योगिक विरोध को युद्ध के द्वारा समाप्त कर देना चाहते थे। इस प्रकार प्रत्येक राष्ट्र के सामूहिक अभिमान

के कारण गत चार शताब्दियों में अनेक युद्ध हुए।

युद्ध से होने वाली हानियां

इस प्रकार युद्ध मनुष्य जाति के राजनीतिक शरीर में अत्यन्त प्राचीन और ऐसा संक्रामक रोग है, जिस से उसका मांस अन्दर २ ही बहुत गहराई तक सड़ गया है और जो ऐतिहासिक समय के आरंभ से ही उसके जीवन शक्ति युक्त अंगों को खाता रहा है। इसके भयंकर परिणाम निम्न लिखित हैं—

(१) इसके कारण बहुत से प्राणी मरते हैं। अत्यन्त प्राचीन काल से युद्ध में मरे हुए प्राणियों की गिनती कौन कर सकता है? लाखों मनुष्य युद्ध में मारे गये और लाखों ही युद्ध के परिणाम स्वरूप पड़ने वाले अकाल और महामारी में मर गये। जीवन अत्यन्त पवित्र और बहुमूल्य उपहार है; तो भी हम मनुष्यों को एक दूसरे के साथ इतनी भयंकरता से युद्ध करते हुए पाते हैं कि जितना चीते और भेड़िये भी नही लड़ते। हम युद्ध को 'पाशविक' कहते हैं, किन्तु पशु भी मनुष्य जैसा निर्दय और झगड़ालू नहीं होता। यदि जंगली भी बोल और लिख सकते तो वह भी युद्ध से विशेष कर उसी जाति में होने वाले युद्ध से यह कह कर भय प्रगट करते कि "इस प्रकार का युद्ध मानव युद्ध होता है। हम पशु तो उसकी अत्यंत निन्दा करते हैं।" प्लूटार्च जूलियस सीज़र के विषय में कहता है, "गॉल प्रदेश के अपने दस वर्ष से कुछ कम समय में उसने तूफानी ढंग से ८०० नगरों पर कब्जा किया, ३०० राष्ट्रों का

दमन किया और विभिन्न समय में तीस लाख पुरुषों से युद्ध किया, जिन में से उसने दस लाख को युद्ध में मार दिया और और दस लाख को बन्दी बनाया'। केवल एक फ्रांस जर्मन युद्ध में ही ग्रेवैलोट नामक स्थान में १८ अगस्त सन् १८७० को ६०६ फ्रेंच अफसर, ८०६ जर्मन अफ़सर, ११,७०५ फ्रेंच सैनिक और १६२६० जर्मनी सैनिक हताहत हुए थे। सन् १६१४—१८ तक के गत महायुद्ध में ८,५३८,३१५ मनुष्य मारे गये और २१,२१६,४५२ जख्मी हुए। इन चार वर्षों में संसार के कितने नवयुवक कवि वैज्ञानिक, साधु, महात्मा, आविष्कारक, उपन्यास-कार नाट्यकार, संगीतज्ञ, चिकित्सक, अध्यापक और प्रोफेसर नष्ट हो गये।

(२) युद्ध से धन हानि भी बड़ी भारी होती है। युद्ध खेतों को मटियामेट करता और कारखानों को नष्ट करता हुआ अपने पीछे केवल खण्डहर ही छोड़ा करता है। यह जनता की शक्ति को काम से हटा कर हत्या करने में लगाता और इस प्रकार उत्पत्ति में बाधा डालता है। यह राष्ट्रों के आर्थिक साधनों को पूर्णतया अनुत्पादक और न खपने योग्य सामग्री—अस्त्र शस्त्र और गोले बारूद में नष्ट करता है, जिनका आर्थिक परिणाम न गण्य और शून्य होता है। गत महायुद्ध में ५५ अरब ४८ करोड़ ६० लाख पौंड और खर्च हुए थे। इस समय संसार के राष्ट्र प्रतिवर्ष ६० करोड़ पौंड शस्त्रास्त्रों पर व्यय करते हैं। जे. नोविकाऊ (J. Novikow) के अनुसार यूरोपीय राष्ट्र सन्

१६४८ से १६१२ तक युद्ध में १६ अरब पौंड खर्च कर चुके हैं' उक्त लेखक आगे चल कर कहता है, 'यह कहना अतिशयोक्ति पूर्ण न होगा कि सन् १६१२ तक के पूरे समय में युद्ध का खर्चा उक्त रकम का कम से कम दस गुना हुगा होगा। इस प्रकार कम से कम अनुमान लगाने पर युद्ध में कुल मिला कर एक खरब ६० अरब पौंड खर्चा हुआ; प्रोफेसर ई. क्रेहबील (E. Krehbiel) ने हिसाब लगाया है कि सन् १७६३ से १६१० तक के सब युद्ध का व्यय २३,३२,३५,४६,२४० डालर १था। युद्ध ने अनेक सुन्दर इमारतों, मन्दिरों, गिर्जे, पुस्कालयें मूर्तियों चित्रों और कलामय कोषों को भी नष्ट कर दिया। पार्थेनन २ अभी तक युद्ध के जंगलीपन की भयंकर चेतावनी दे रही है।

(३) युद्ध निर्दयता को बढ़ाता तथा उसको स्थायी रूप दे देता है। वह केवल पाशविकता और निर्दयता का ही दूसरा नाम है। असीरियन योद्धा ने एक राजसी लेख में अपनी वीरता के सम्बन्ध में इस प्रकार शेखी बघारी है, "उनके युवा और वृद्ध पुरुषों को मैंने कैद कर लिया। कुछ के मैंने हाथ पैर कटवा दिये;

---

१ यह संयुक्त राज्य अमरीका का सिक्का है। इसका मूल्य ४ शिलिंग २ पेंस अथवा लगभग तीन रुपये होता है।

२ पार्थेनन होर्थेन्स में मिनिर्वा के प्रसिद्ध मन्दिर का थाम हैं। सन् १४४२ ईस्वी पूर्व में इसको फीडियस ने बनवाया था। यह मन्दिर २२७ फुट लम्बा और १४५ फुट चौड़ा था। युद्ध के कारण अब इस मन्दिर के ध्वंसावशेष ही मिलते हैं।

कुछ के नाक, कान और ओठ कटवा दिये; नवयुवकों के कानों का तो मैंने ढेर लगवा दिया; वृद्धों के सिरों की मैंने एक मीनार बनवाई, मैंने उसके सिरों को उनके नगर के सन्मुख विभीषिका के लिये खुला छोड़ दिया। बच्चों और बच्चियों को मैंने आग में जला दिया।" असीरिया के राजमहलों की संगमरमर की आलेख्यकला कैदियों पर किये हुए भयानक अत्याचारों को प्रदर्शित करती है; कुछ की तो जीवितावस्था में ही खाल खिंचवा दी गई; कुछ के नेत्र भाले की नोक से फोड़ दिये गये हैं; और कुछ की जिव्हाएं काट ली गई। क्रामवेल ने आइर्लैण्ड के सैनिकों ड्रौघेडा (Drogheda) के सिविलयनों के बध का इस प्रकार वर्णन किया है, "मैंने अपने मनुष्यों को आज्ञा दे दी कि नगर के किसी सशस्त्र पुरुष को जीवित न छोड़ो, मैं समझता हूं कि उस रात्रि में उन्होंने लगभग दो सहस्त्र मनुष्यों को जान से मार डाला। सेंट पीटर के गिर्जे की मीनार के ऊपर से उनमें से एक को यह कहते हुए सुना गया था, 'ईश्वर मुझे नरक में भेज, मैं जलता हूँ, मैं जलता हूं मैंने उस मीनार को जलाने की आज्ञा देदी। स्वयं गिर्जे में ही लगभग एक सहस्त्र मनुष्य तलवार के घाट उतार दिये गये। मेरा विश्वास है कि वहां के प्राय: सभी साधु मार डाले गये।"

आमबोईना १ (Amboyna) और ओमडुरमन २ की

---

१. पूर्वीय द्वीप समूह के मोलकस्स अथवा स्पाइस द्वीप का एक उच्च नगर और द्वीप।

२ यह नगर सूडान में नील नदी के किनारे पर है। यहाँ पर सन्

हत्याएं वेक्सफोर्ड ३ (Wexford) और हेरात ४ के क़साई जैसे निर्भय बधकार्य और आरमीनिया वासियों तथा तस्मानिया वासियों का बध युद्ध के ही दृश्य हैं। इस समय नवीन यूरोपीय सैनिकों को निम्नलिखित शिक्षाएं दी जातीं हैं, "जब हाथों की गुत्थमगुत्था हो तो शत्रु के नेत्रों में दोनों उङ्गलियें घुसेड़ कर दिमाग़ तक पार कर दो; ज़ख्म को बन्द करने के लिये संगीन को घुसेड़ कर वहीं लपेट दो। पेट को छुरे से ऊपर से नीचे तक चीर दो। पृथ्वी पर पड़े हुए ज़ख्मी की छाती पर एक घुटना रख कर सिर पकड़ कर इतने ज़ोर से झटका दो कि जिससे उसका सिर उसके मेरुदण्ढ से प्रथक हो जावे और वह मर जावे।"

(४) युद्ध जाति का पतन करता है। जैसा कि प्रोफेसर डैविड स्टार जार्डन ने दिखलाया है, युद्ध प्राणिविज्ञान का विरोधी और जनसंख्या पर अत्यन्त हानिप्रद प्रभाव डालता है। युद्ध में सब से प्रबल और वीर पुरुष मारे जाते और सन्तानोत्पत्ति के लिये निर्बल पुरुष ही बच जाते हैं। युद्धप्रिय राष्ट्र उस मनुष्य के समान होता है। जिसका बहुमूल्य रक्त लगातार कम होता रहता है। यह विश्वास किया जाता है कि फ्रेंच जनता की अगली पीढ़ी उसकी राज्यक्रांति और नेपोलियन के युद्धों में अधिक वीरों के मारे जाने के कारण अधिक निर्बल हुई। युद्ध

१८९८ में किचनर के दुरवेशों को पराजित किया था।

३ इंगलैण्ड का एक नगर,

४ अफ़गानिस्तान का एक नगर.

प्रत्येक राष्ट्र के लिये धीरे २ किया जाने वाला आत्मघात है।

(५) युद्ध प्रजातन्त्र और स्वतन्त्रता का विरोधी होता है, इससे राज्य में स्वेच्छाचारिता और नौकरशाही प्रणाली की स्थापना होती है, युद्ध सेनाओं से किया जाता है, सेना को स्पार्टा और प्राचीन प्रथा के नागरिकों के समान ड्रिल करा कर विनयानुशासन सिखाया जाता है। सेना एक यन्त्र के समान होती है, वह स्वतन्त्र और बुद्धिमान् मनुष्यों का समूह नहीं होती। सैनिक का सब से बड़ा कर्तव्य आज्ञापालन है, "उनका काम कारण पूछना नहीं, वरन् कार्य करना और मरना है।" युद्ध में विजय होने से शक्ति प्रायः एक स्वेच्छाचारी व्यक्ति अथवा एक छोटे से दल के हाथ में आ जाती है। रोमन लोग आपत्ति के समय एक डिक्टेटर बना दिया करते थे। उनके युद्धों से प्रजातन्त्र का पतन होकर सम्राटों के एकतन्त्र शासन की स्थापना हुई। पेरिस में विदेशी युद्ध के कारण शासन की बागडोर एक रक्षक कमेटी को दी गई, जिसका अन्त नेपोलियन की स्वेच्छाचारिता के रूप में हुआ। फ्रांसीसियों ने सैनिक सफलता के लिये अपनी स्वतन्त्रता का बलिदान कर दिया युद्ध के समय समाचार-पत्रों पर सेंसर बिठला दिया जाता है और स्वतन्त्र भाषण तथा सार्वजनिक सभा के अधिकार पर भी कुठाराघात किया जाता है। उस समय सरकार ही सब कुछ हो जाती है, व्यक्ति कुछ नहीं रहता। 'स्वतन्त्र' इंगलैण्ड में भी सन् १९१६ का सार्वजनिक निर्वाचन नहीं हुआ और पार्लमेन्ट ने स्वयं ही अपने जीवनकाल

को बढ़ा लिया। मन्त्री मण्डल युद्ध चलाने के लिये बहुत भारी था, अधिकार थोड़े से व्यक्तियों के हाथ में आ गया था। सफल सैनिक नेता प्राय: प्रजातन्त्र सभाओं को बन्द करके स्वेच्छाचार-पूर्ण शासनप्रणाली की स्थापना करता है। उसके शासन में प्रत्येक नागरिक को अपनी इच्छा के विरुद्ध भी युद्ध करना पड़ता है। विरोधी व्यक्तियों के दमन, समालोचकों के दण्ड और सरकार के शत्रुओं को नष्ट कर के राष्ट्र की एकता का सम्पादन किया जाता है। युद्ध वास्तव में स्वतन्त्रता का पूर्णतया विरोधी है। सैनिक समाज में व्यक्तित्व कभी विकसित नहीं हो सकता, क्योंकि उसमें सैनिक एक स्वतन्त्र मनुष्य न रह कर बध करने वाला स्वयं कार्य करने वाला यन्त्र बन जाता है। वह तो हत्या करने के उस बड़े भारी यन्त्र का केवल पहिये का एक दान्ता मात्र होता है। आप सैनिकवाद और स्वतन्त्रता दोनों को नहीं ले सकते।

(६) युद्ध स्त्रियों के पद को घटाता है। युद्ध के जीतने वाले गुण पाशविकता और साहस हैं। शान्ति के समय के नम्र गुणों की युद्ध प्रिय राष्ट्रों में निन्दा की जाती है। सैनिकवाद का वीर अभिनेता अचेत और अपने अन्दर मस्त रहने वाला योद्धा होता है। वह मांस, मद्य और स्त्रियों का प्रेमी होता है। यदि वह युद्ध में विजय प्राप्त करता है। तो उसके दुर्गुणों पर दृष्टि नहीं दी जाती है। इस प्रकार के समाज में स्त्रियां सैनिकों की केवल माताएं और पत्नियां ही गिनी जाती हैं; उनका

उच्च कार्यों के लिये कोई क्षेत्र नहीं मिलता। राज्य का पतन होने और युद्ध के आधार पर निर्माण होने से स्त्रियों को निम्न पद ही लेना पड़ता है, क्यों कि वह युद्ध नहीं कर सकती। स्त्रियों के मताधिकार के विरुद्ध इस अयोग्यता का तर्क विशेष रूप से दिया जाया करता है। स्त्री के प्रेम, आत्म, त्याग, शुद्धता, संयम, बुद्धि, अनुभव, नम्रता, ललिकलाओं की वृद्धि, और नैतिक उत्साह को युद्ध के द्वारा दबाया तथा घोंट डाला जाता है। मनुष्य जाति की कितनी हानि होती है। युद्ध के विरुद्ध सब स्त्रियों को ही कठोर युद्ध करना चाहिये। युद्ध ने ही उनको पतित बनाया, इसने उनको नष्ट करके दास बना लिया। स्त्रियां केवल शान्ति में ही मनुष्यों के साथ समानता के साथ कार्य तथा शासन कर सकती हैं।

(७) युद्ध राज्य के अन्दर आर्थिक असमानता को बढ़ाता है। यह आगे चल कर धनियों को अधिक धनी और निर्धनों को अधिक निर्धन बना देता है। यह प्रत्येक समय साधारण जनता से सम्बन्धित परिस्थिति को और खराब करता है। रोमन सरदार अपने इटली वासी शत्रुओं की भूमि को छीन लेते थे और साधारण पुरुषों को केवल लूट का माल ही मिलता था। यद्यपि दोनों को ही कुछ न कुछ मिल जाता था, किन्तु विशेष सुविधा वाले वर्ग को मजदूर वर्ग की अपेक्षा कहीं अधिक मिलता था। ग्रेट ब्रिटेन ने अनेक युद्ध करके साम्राज्य की स्थापना की; किन्तु लंदन में बड़े २ राजमहल और गन्दे मुहल्ले

दोनों ही है। युद्ध ने अङ्गरेज़ी समाज में असीम धन सम्पति को उत्पन्न कर दिया। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ जे० आर० ग्रीन इंगलैण्ड और फ्रांस के युद्ध (१७९३-१८१५) के विषय में कहता है, "युद्ध ने ज़मीदारों, किसानों, व्यपारियों और मिलमालिकों को धनी बिना दिया, किन्तु निर्धनों को उसने और भी भयंकरता से निर्धनता में पीस दिया। लूनेवील (Lunville) और वाटरलू के युद्धों के भयानक वर्षों से ही वर्ग युद्ध हो रहे हैं, जो अब भी अंग्रेज़ी राजनीति की मुख्य कठिनाई बने हुए हैं।" रोम अथवा लंदन सभी स्थानों में युद्ध निम्नतम मनुष्यों का पतन करता और उनके लिये आपत्ति, कष्ट और नैतिक हीनता को लाता है।

(८) युद्ध सामाजिक और राजनीतिक सुधारों को रोकता और उनमें देरी लगाता है। शस्त्रों, उद्दण्ड सेना और जल सेना पर राष्ट्रीय बजट का इतना बड़ा भाग खर्च दिया जाता है कि स्कूलों. घरों, वृद्धावस्था की पेंशनों, विधवाओं की पेंशनों, और चिकित्सा आदि के लिये बहुत कम भाग बचता है। एक आधुनिक जंगी जहाज़ की लागत से कितने स्कूल बन सकते थे। कितने अनाथों को भोजन तथा वस्त्र मिल सकते थे, और कितने रोगी स्त्री, पुरुष, और बच्चों की चिकित्सा की जा सकती थी? आजकल के राष्ट्र अग्निमय तथा विनाशक कार्यो में इतना अधिक व्यय कर रहे हैं कि उनके देश की भोजन तथा पेय सामग्री कम हो रही है। उससे उनको पागल ही कहना पड़ता

है । यदि सरकार किसी अन्य राष्ट्र के साथ युद्ध करके देश-भक्तों से देश के लिये युद्ध करने की अपील करे तो मज़दूरों का आर्थिक और राजनीतिक सुधारों का आन्दोलन मन्द पड़ कर बिल्कुल सकुंचित हो जाता है । देशभक्ति के लिये अपील जंगली दल बन्दी की भावना को उकसाता है, और उन्नति करने वाले वर्ग युद्ध को भूलने और रोकने की प्रेरणा करता है। जब कभी युद्ध के लिये सन्नद्ध सामाजिकवाद की शक्तियां पूंजीवाद की वेदी को नष्टभ्रष्ट करने की धमकी दें तो राष्ट्रीयता के भयंकर नरसिंहों को बजाकर उनके ध्यान को सदा ही उनके मुख्य कार्य की ओर से हटाकर उनको किसी अन्य देश के श्रमिकों के गला काटने के काम में उसी प्रकार लगाया जा सकता है, जिस प्रकार साइबेरिया के यात्री अपने कपड़ों आदि को भेड़ियों के चबाने के लिये फेंक कर उनके पंजों से बच जाया करते थे । क्रान्तिकारी फ्रांस और इंगलैण्ड के युद्ध ने इंगलैण्ड के सुधारों को पूरी एक शताब्दी के लिये टाल दिया था; सन् १७६२ के उत्साही प्रजातन्त्र वादी ही सन् १८०० में राजभक्त तथा देशभक्त बन गये। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ जे० एच० रोज़ का कहना है, "सन् १७६२ में इंगलैंड का जनमत फ्रांस के जनमत से कम क्रान्तिकारी नहीं था। ....किन्तु इस शताब्दी के समाप्त होने पर प्रजातंत्र के भाव सन् १७८० की अपेक्षा अत्यन्त कम हो गये।" जर्मन सामाजिक प्रजातंत्र की बढ़ती हुई शक्ति को सन् १६१४ में पहिली पहल हत्या के आत्म बलिदान के लिये तयार किया गया और

फिर दीवाने 'राष्ट्रीय' भाव से उसको नष्ट कर दिया गया ! राष्ट्रीयवाद को सामाजवाद की विजय में बड़ी भारी शक्तिशाली बाधा समझना चाहिये । यह मनुष्यजाति को स्थायीरूप से युद्ध करने वाले राष्ट्रों' में विभक्त कर देता है और मजदूरों के वर्ग भाव को निर्बल तथा नष्ट करने का उद्योग करता है । इसके विरुद्ध सामाजवाद मनुष्यजाति को स्थायी रूप से दो युद्ध करने वाले वर्गों में विभक्त करता और निम्नश्रेणी वालों की वर्ग भावना को पुष्ट करता और भड़काता है । जिस प्रकार इंगलैंड में समुद्र वहां के तट को और जापान में भूकम्प मकानों को नष्ट करता रहता है, उसी प्रकार राष्ट्रीय-राज्यों के युद्ध बारबार समाजवादी दलों और संगठनों को नष्ट करते रहते हैं । श्रामिकों को किसी भी अन्तराष्ट्रीय युद्ध में भाग न लेने की शपथ कर लेनी चाहिये. भले ही वह 'राज्य और देश' अथवा 'स्वतन्त्रता,' अथवा 'न्याय,' अथवा 'सम्मान,' अथवा 'साम्राज्य,' अथवा 'धर्म,' अथवा 'राष्ट्रीय स्वतन्त्रता' के लिये युद्ध कर रहे हों । इस प्रकार के आन्दोलन से पूंजीपति लोग उनका सर्वनाश करने का उद्योग करेंगे। यदि वह इस साधारण सत्य को न समझें तो वह सदा के लिये दास ही बने रहने योग्य हैं । समाजवाद गधों और उल्लुओं के लिये नहीं हैं. यह बुद्धिमान् स्त्री और पुरुषों के लिये है ।

युद्ध इस प्रकार ऐसा अपरिमेय मूर्खता, प्रायश्चित न करने योग्य अपराध, पूरी न होने योग्य हानि, क्षमा न करने योग्य

पाप, मनुष्यों की हत्या करने का पागलपन, जङ्गली क्रोध का अविर्भाव, और एक बारबार आने वाली आपत्ति है जो मानव सभ्यता को रोकती तथा नष्ट कर देती है। उसको केवल स्वतन्त्र राष्ट्रीय-राज्यों को बन्द कर स्वतन्त्र विश्व-राज्य की स्थापना करने से ही रोका जा सकता है। इस युगों से चले आए समाज में घुन की तरह लगे हुए रोग से कोई अच्छा नहीं कर सकता। राष्ट्रीय-राज्यों के समझौते, सन्धियां और मित्रता सदा ही मायापूर्ण और प्रभाव हीन सिद्ध होते रहेंगे। जैसा कि एम० वैल्बर्ट ने कहा है, "ईसा पूर्व १५०० से लगातार सन् १८६० ईस्वी तक आठ सहस्र से भी अधिक संधियां हो चुकी हैं। किन्तु उनमें से औसतन दो वर्ष ही स्थायी रही हैं।" राष्ट्रीय राज्य स्वार्थी राष्ट्रीयवाद की उस मनोवृत्ति को पुष्ट करता है, जो सदा ही दूसरे राष्ट्रों को नष्ट करने और लूटने से धन और शक्ति प्राप्त करती है, क्यों कि यह नैतिकता और मनुष्यता की सीमा से आगे गिनी जाती है। यह सिद्ध करने से कि विजेता और विजित की समान रूप से हानि होगी युद्ध को नहीं रोका जा सकता। जे० नाविकाऊ और एन० ऐंजेल (N. Angell) का यह सुन्दर सिद्धान्त सुनने में बड़ा अच्छा जान पड़ता है, किन्तु यह सत्य नहीं है। धन आज विजय, लूट और उपनिवेशों से उसी प्रकार प्राप्त किया जाता है जिस प्रकार पहिले प्राप्त किया जाता था। स्वार्थ कभी भी राष्ट्रों को युद्ध से प्रथक् न होने देगा। युद्ध विरोधी आन्दोलन को नैतिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक आधार पर चलाना

चाहिये। नीति शास्त्र की दृष्टि से आपको और सब किसी को युद्ध से पाप के समान उसी प्रकार बचना चाहिये, जिस प्रकार हम अपने दैनिक जीवन में हत्या करने अथवा चोरी करने से मना कर देते हैं। व्यक्तिगत हत्या के समान ही सामूहिक हत्या भी पाप है। विश्व-इतिहास, विश्व-साहित्य, और विश्व-भाषा के अध्ययन से विश्वबन्धुत्व की मनोवृति को सांस्कृतिक रूप से उत्पन्न करना चाहिये। म्यूनिसिपैलिटी वाद और विश्व बन्धुत्व वाद को विकसित तथा प्रभावपूर्ण करके राष्ट्रीयवाद को राज-नीतिक रूप से दबाना चाहिये। आर्थिक रूप से पूंजीवाद को प्रजातन्त्रीय समाज वाद के रूप में परिवर्तित कर देना चाहिये। विश्वराज्य का निर्माण नीतिशास्त्र, संस्कृति राजनीति और अर्थशास्त्र की इस ठोस नींव पर ही किया जा सकता है। केवल विश्व-राज्य ही युद्ध को सदा के लिये बन्द कर सकता है। अब हम शान्ति के संरक्षक देवता एक और अविभक्त विश्व-राज्य के सम्बन्ध में विचार करते हैं।

विश्व-राज्य

नगर राज्य और राष्ट्रीय राज्य भावी-विश्व राज्य में नियम पूर्वक घुल मिल जावेंगे। मनुष्यजाति सदा ही पचास या अधिक राज्यों में बंटी नहीं रहेगी। यह समस्त पृथ्वी भर में एक राज-नीतिक समाज के रूप में संगठित होगी। हमारा उद्देश्य एक राज्य, एक झन्डा, एक भाषा, एक नीति शास्त्र, एक आदर्श, एक प्रेम और एक जीवन है।

यह आदर्श स्वतन्त्र राष्ट्रीय राज्यों की सन्धियों अथवा उनमें कभी २ होने वाले समझौतों अथवा वर्तमान राष्ट्रसंघ (League of Nations) से भी नहीं होगा । हमने स्वतन्त्र राष्ट्रीय-राज्यों को सदा के लिये बन्द करने का निश्चय कर लिया है । हम सबके झन्डों की होली मनावेंगे, वह प्रज्वलित तथा सुन्दर होली युद्ध-परिक्लान्त संसार की आत्मा को आनन्द में विभोर कर देगी। राष्ट्रसंघ अनमेल और विपरीत तत्त्वों के मिश्रण के एक मन्त्रीय संगठन के समान है। विश्व-राज्य अनेक पदार्थों से निकाले हुए तत्त्वों के रसायनिक मिश्रण के समान होगा, किन्तु उसकी रचना एक रस और एक सी होगी। हम सदा के लिये बर्बर शब्द 'राष्ट्र' से उसी प्रकार काम लेना नहीं चाहते, जिस प्रकार कोई लड़का बड़ा हो जाने पर अपने बचपन के खिलौनों को फेंक देता है। राष्ट्रसंघ हालैण्ड और स्याम जैसे छोटे २ 'राष्ट्रों' और जर्मनी तथा चीन जैसे बड़े २ विशाल राष्ट्रों को सम्मति देने का अधिकार एक सा देता है। यह प्रबन्ध बड़ा भद्दा है। विश्व-पार्लमेंट का प्रतिनिधित्व जनसंख्या के अनुपात पर होना चाहिये । 'राष्ट्रसंघ' वास्तव में अशुद्ध नाम है। उसमें अल्जीरिया और ऐनाम जैसे विजित राष्ट्रों को सम्मिलित नहीं किया जाता । उसमें आन्तरिक एकता, एक सार्वजनिक भावना, और न बुझने योग्य जीवन शक्ति नहीं है । उसके पास अपना काम चलाने के लिये एक सार्वजनिक भाषा तक नहीं है। वह ताश के पत्तों के उस मकान के समान है जो हवाई राष्ट्रीय-

वाद के तनिक से झोके से भी उड़ सकता है। इसकी तुलना उस मकान से की जा सकती है। जिसके सब भाग एक क्षण मात्र के नोटिस में ही प्रथक् २ किये जा सकते हैं। देखने वाले को वह ईफेल टावर (Eiffel Tower) के समान ठोस, एक रूप, और सुदृढ़ रचना का दिखलाई नहीं देता है। उसका उद्देश्य केवल स्वतन्त्र राष्ट्रों का निकटतम सम्बन्ध स्थापित करना है। वह राष्ट्रों को एक स्वतन्त्र विश्व-राज्य के उच्च आदर्श में एक नहीं करता। विश्व बन्धुत्त्व की बाल्यावस्था वाली बच्चों की गाड़ी के समान यह अवश्य ही मूल्यवान् और अनिवार्य सिद्ध हुआ है, किन्तु उसकी उन्नति करके इसका यहां तक पुनःसंगठन करना चाहिये कि वह उन्नति करती हुई मनुष्यजाति की आवश्यकताओं और अभिलाषाओं को पूर्ण कर सके। हम उससे युद्ध में मरे हुए लाखों व्यक्तियों के 'युध्द के स्मृति चिन्ह' के रूप में प्रेम करते हैं! यह हमारे लिये उन राष्ट्रीय स्मृति मन्दिरों और कुछ बड़े २ नगरों के जलते हुए अंगारों से कहीं अधिक कीमती तथा भावपूर्ण है। हम राष्ट्रसंघ से प्रेम करते हैं, किन्तु उसी रूप में, जिस प्रकार एक पिता अपने बच्चे से करता है। हमारी यह बड़ी भारी अभिलाषा है कि वह अपनी बौनेपन की निर्बलता और आकृतिविकलता में न रह कर उन्नति करता हुआ पूर्ण युवक हो जावे।

विश्व राज्य को ऐसे थम्भों की बड़ी भारी तली के ऊपर खड़ा किया जावेगा, जो राष्ट्रीय अथवा धार्मिक घृणा के किसी तूफान से न हिलेंगे। अब उन थम्भों का वर्णन प्रथम

प्रथक् किया जाता है।

१—विश्व-इतिहास

वर्तमान राष्ट्रीय-राज्य का आधार विश्व-इतिहास की विकृति ही है। जिस प्रकार यह अधम राष्ट्रीय इतिहास राष्ट्रीय मनोवृत्ति को उत्पन्न करता है, उसी प्रकार हमारा विश्व-इतिहास एच. जी. वेल्स के शब्दों में 'अन्तर्राष्ट्रीय मनोवृत्ति' को उत्पन्न करेगा। जैसा कि एच. जी. लस्की का कहना है राष्ट्रीयता न्याय्य सिद्धान्त की अपेक्षा मनोवैज्ञानिक कार्य अधिक हैं। ऐसिहासिक परम्परा और जनता की मनोंवृत्ति को पूर्णतया और मौलिक रूप में बदल देने की आवश्यकता है। अन्यथा आप विश्व-राज्य को खिसकने वाले बालू पर निर्माण करेंगे। विश्व-सभ्यता का इतिहास उन विश्व-नागरिकों के लिये आवश्यकता मानसिक आहार होगा। जिनको हम शिक्षा देंगे राष्ट्रीय इतिहास मनुष्य जाति को विभक्त तथा विश्रृंखलित करता है। विश्व-इतिहास सभी जातियों और राष्ट्रों को मिला कर एकमएक कर देगा। इतिहास किसी राज्य के स्नायुओं और धमनियों में आवर्त करने वाला जीवनमय रक्त होता है। महान् स्त्री पुरुषों का स्मृति उत्सव, जिन्होंने हमको सभ्यता का अमूल्य उपहार प्रदान किया है हमारे बच्चों और बड़ों में बिश्वबन्धुत्व की भावना को भरेगा। राष्ट्रीय राज्य अनेक निंदय सेनापतियों और हत्यारों के कार्य के स्मृतिदिवस मनाते हैं किन्तु विश्व-राज्य के वीर स्त्री पुरुष संसार के सभी देशों

के प्रसिद्ध वैज्ञानिक, कलाकार, सन्त. साधु, और लेखक होंगे। वाशिंगटन और लिंकन के जन्मदिन, शेक्सपीयर सम्बन्धी उत्सव, बेस्टाइल का पतन, बौद्ध का वैशाखोत्सव, इसाईयों का बड़ा दिन, स्वेडन वालों का ६ नवम्बर का दिन और स्वीजरलैंड का प्रथम अगस्त का दिन जैसे तथा अन्य भी स्थानीय त्योहारों को विश्वत्योहारों के रूप में परिवर्तित कर दिया जावेगा, साथ ही अन्य उन घटनाओं और व्यक्तियों की स्मृति में नये त्योहारों का निर्माण किया जावेगा, जिनकी आज उपेक्षा की जाती है।

२—विश्व राजधानी।

विश्व राज्य की एक राजधानी भी होगी। राष्ट्रसंघ ने इस कार्य के लिये पहिले ही जेनेवा को पसन्द किया है। यह स्वतंत्र नगर सुन्दर है और सब के बीच में भी है। किन्तु संभवतः विश्वराज्य की राजधानी ऐथेन्स को बनाना अधिक उपयुक्त होगा। वर्तमान सभ्यता अन्य किसी एक नगर की अपेक्षा ऐथेन्स की अधिक ऋणी है। ऐथेन्स के सांस्कृतिक दृष्टिकोण की ऐतिहासिक परम्परा सभ्य मनुष्य जाति की अत्यन्त पवित्र मात्रा है। एथेन्स पूर्व और पश्चिम के मध्य में स्थित है और उसका जलवायु भी मृदु है।

३—विश्वसाहित्य और विश्व भाषा।

राष्ट्रीयवाद एक सार्वजनिक भाषा और साहित्य की अनुपेक्षणीय घटना के आधार पर बनता है। विश्व राज्य की एक

विश्व भाषा होनी चाहिये। जिस में सभी देशों के बड़े २ लेखकों के ग्रन्थों का अनुवाद किया जावे। विश्व पार्लियामेंट के सदस्य एक दूसरे की बात को समझ सकें, अन्यथा भिन्न २ भाषाओं की गड़बड़ आवाजें परिस्थिति को एक दम बिगाड़ देंगी। रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय ने अपने अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय की भाषा लैटिन को बनाया हुआ है। अल अज़हर विश्व-विद्यालय के सभी मुसलमान विद्वान् अरबी को पढ़ और बोल सकते हैं। कम से कम उन नेताओं में एक सामान्य भाषा हुए बिना राजनीतिक एकता असंभव है जो अपने देशों अथवा प्रदेशों के प्रतिनिधियों के रूप में कांग्रेसों और कांफ्रेंसों में एकत्रित होंगे। आजकल के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन शोकांत-हास्य जनक नाटक होते हैं। जो प्रतिनिधि एक दूसरे से वर्तालाप नहीं कर सकते उनमें सहयोगिता का कोई मौलिक भाव उत्पन्न नहीं हो सकना। राष्ट्रीयवाद सैकड़ों भाषाओं में अत्यन्त कोलाहलकारी होता है, किन्तु अन्तर्राष्ट्रीयवाद ऐसो सभाओं में दयापूर्ण गूँगा बहरा बन जाता है। विश्वराज्य सूचनाओं और विचारो के विनिमय के लिये अपनी व्यापी बौद्धिक मुद्रा के रूप में एस्पेरैन्टो को स्वीकार करेगा अथवा किसी अन्य उपयुक्त भाषा को ढालेगा।

राष्ट्रीयवाद का सब से बड़ा सहारा राष्ट्रीय साहित्य है। विश्व-साहित्य विश्व-नागरिकों गोएथे की पूर्वदृष्टि के अनुसार विश्व-बन्धुत्व के विचारों की शिक्षा देगा। इस समय बड़े २

कवि, दार्शनिक, उपन्यासकार तथा अन्य लेखक समस्त मनुष्य जाति की सर्वसामान्य सम्पत्ति बन जावेंगे। विक्टर ह्यूगो के अवतरण के एक वाक्य की पोपिंग और पेरिस में शीघ्रतापूर्वक सराहना की जा सकेगी। शेक्सपीयर, कालिदास, यूरीपाइड्स, मौलीयर (Moliere), कार्नीले (Corneille), चिकामत्सु, अलफाइरी, शिलर, चेहो (Chehov), वेडेकिंड (Wedekind) तथा अन्य नाट्यकारों के नाटकों का एस्पेरेंटो भाषा (अथवा जो कोई भी विश्व भाषा बने) में अभिनय बगदाद, बोगोटा, मेलबोर्न, मैड्रिड. टोरोंटो और टिम्बकटू में सामान्य रूप हो सकेगा। जिस प्रकार जेल के कैदियों को प्रथक् २ कोठरियों में रक्खा जाता है उसी प्रकार राष्ट्रीय भाषाओं ने स्त्री पुरुषों के मस्तिष्क और आत्माओं को अबतक तङ्ग नालियों में कैद कर रखा है; किन्तु विश्व भाषा सभी को एक दूसरे से किसी भी उत्सव अथवा त्यौहार के अवसर पर मित्रों तथा एक नगर के नागरिकों के समान मिल सकने योग्य बना देगी।

४. विश्व यात्रा

विश्वराज्य शिक्षाके आवश्यक भाग के रूप में विश्वयात्रा को प्रोत्साहित करेगा। प्रत्येक नागरिक को पृथ्वी और उसके प्रताप को देखने का अवसर दिया जावेगा। विश्व-इतिहास और विश्व-भाषा यात्रा को मस्तिष्क के लिये एक लगातार भोज के समान और आत्मा के लिये एक शान्त उपदेश के समान बना देगा जैसा कि ऐरिओस्टो (Ariosto) कहता है—

विदेशी जलवायु में यात्रा करने वाला ऐसी वस्तु को पाता है, जिसकी पहले उसने कभी अपने मन में भी कल्पना नहीं की थी।"

उस समय प्रत्येक नागरिक के जीवन में विश्व-बन्धुत्व एक प्रबल आत्मिक शक्ति बन जावेगा। इस समय राष्ट्रीयवाद यात्रा के शिक्षा सम्बन्धी मूल्य को कम कर देता है। एक ब्रिटिश सभ्य पुरुष अपने राष्ट्रीयवाद को अपने गठिया रोग के समान समस्त संसार में ले जाता है और उसका अधिक यात्रा किया हुआ मस्तिष्क अभी तक अपनी राष्ट्रीयता में ही लिपटा रहता है। ऐसे राष्ट्रीयवाद के विषय सादी ने कहा है, "यदि ईसा-मसीह गधा मक्का की हज को भी जावे तो वह वहाँ से वापिस घर आने पर भी गधा ही बना रहेगा"।

९. विश्व-समाज

राज्य समाजवाद का ही राजनीतिक सङ्गठन हुआ करता है। वह चोरों के पकड़ने, सड़कों को सुधारने और गन्दगी को साफ करने के लिये केवल जोआएंट स्टॉक कम्पनी ही नहीं है। एक मनुष्य समाज बिना कुछ सामाजिक एकरसता के कभी नहीं चल सकता। भोजन, वस्त्र और आमोद प्रमोद के विषय में पूर्ण समानता की आवश्यकता नहीं है, किन्तु रीतियों और ढङ्गों में अत्यन्त विभिन्नता भी मित्रतापूर्ण सम्बन्ध के मार्ग में बाधा होती है। विश्व-पार्लियामेन्ट के सदस्यों का जेनेवा अथवा एथेन्स में एक सर्वसामान्य क्लब जीवन हो, जो सामाजिक एकता का चिन्ह है। शैलाक ने बैसैनिओ से कहा, "मैं तुम्हारे साथ

वस्तुओं को मोल ले लूंगा, बेचूंगा, तुम से बातचीत करूंगा और तुम्हारे साथ टहलूंगा; किन्तु मैं तुम्हारे साथ खाऊं या पीऊंगा नहीं।'' क्योंकि उसका सम्बन्ध वेनिस के कट्टर यहूदी समाज से था। किन्तु विश्व-नागरिक इस प्रकार के सामाजिक परहेज को सदा के लिये तिलाञ्जलि दे देंगे। विश्व-राज्य केवल मोल लेने, बेचने, बात करने और टहलने के लिये ही न होगा, वरन् वह साथ खाने पीने के लिये भी होगा, जो वास्तव में मित्रता की धार्मिक विधि है। यूरोपवासियों के लिये एक सर्वसामान्य जीवन का प्रबन्ध करना सुगम है, किन्तु यूरोप और एशिया वालों दोनों को एक ही क्लब में लाना अधिक कठिन है। यूरोप तथा एशिया को आधे मार्ग में मिल कर समझौता कर लेना चाहिये। यूरोप वासियों को स्वास्थ्य को हानि पहुँचाने वाले मद्यों का त्याग कर देना चाहिये और एशियावासियों को अपनी स्त्रियों को स्वतन्त्र तथा शिक्षित करना चाहिये। पाश्चात्य देशों का अत्यधिक मद्यपान और प्राच्य लोगों की स्त्रियों की परतन्त्रता एक सामाजिक जीवन की स्थापना के मार्ग में बड़ी भारी बाधा हैं। वस्त्रों में समानता की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है; विभिन्नता सामाजिक जीवन को अधिक चित्रमय बना देती है। मनुष्य जाति के वस्त्र प्राचीन काल में भी बदलते रहे हैं, स्थायी पोशाक अथवा फैशन कोई नहीं है। भविष्य में भी यही प्रणाली चलेगी और विश्व-राज्य सामाजिक ऐक्य की दृष्टि से किसी भेष को निश्चित करने का उद्योग नहीं करेगा। टोप, साफे और

विभिन्न प्रकार की टोपियों को सामाजिक दंगल में सार्वजनिक बनने के लिये मुकाबला करने दो, जीतेगा सब से उत्तम शिरो-वस्त्र ही। आमोद प्रमोद के विषय में यह है कि अनेक घर से बाहिर और घर के अन्दर के खेल विश्व भर में सार्वजनिक हो चुके हैं। उदाहरणार्थ टेनिस, गोल्फ (Golf), फुटबाल, बिलिआर्ड (Billiards), शतरंज, ताश आदि। संगीत की शिक्षा का विश्व भर के लिये एक मान निश्चित कर दिया जावे। इस समय यूरोप, भारत, चीन और फारिस सब के मान प्रथक् २ हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि पाश्चात्य संगीत अनेक प्राच्य लोगों को अच्छा नहीं लगता और प्राच्य संगीत अनेक पाश्चात्य लोगों को अच्छा नहीं लगता। यह वास्तव में बड़े दुर्भाग्य की बात है, क्योंकि संगीत सभी सामाजिक जीवन की धूप है। संगीत शिक्षा की एक समान प्रणाली विश्व-नागरिकों को सभी देशों और युगों के सब से उत्तम संगीत का आनन्द लेने योग्य बना देगी। इस प्रकार सामाजिक ऐक्य की नींव एक रूप में खूब चौड़ी और गहरी रख दी जावेगी।

६. विश्व-दर्शन शास्त्र

राज्य मनुष्य जाति में एकता के आवश्यक तत्वों का प्रतिनिधित्व करता है और दर्शनशास्त्र इन एक करने वाली शक्तियों में से एक है जो व्यक्तियों के समूह को एक सुनियमित समाज के रूप में ढालती हैं। हम को इस बुद्धिमत्तापूर्ण तथा प्राचीन नियम को स्वीकार कर लेना चाहिये, "आवश्यक कार्यों में ऐक्य

और साधारण कार्यों में स्वतन्त्रता (अर्थात् विभिन्नता) और दान सब कुछ हैं।" कुछ लोग यह विश्वास कर सकते हैं कि ठीक दर्शन-शास्त्र और वैज्ञानिक आचार शास्त्र को विश्व-राज्य का अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग न माना जावे। वह इस आधुनिक सिद्धान्त को मान सकते हैं कि दर्शनशास्त्र और आचार शास्त्र भोजन और वस्त्र के समान राजनीतिक विषय नहीं हैं। व्यक्तियों और समाजों के लिये जीवन के सब से उत्तम सिद्धान्त को दर्शन शास्त्र और सिद्धान्तों के अनुसार आचरण करके उनकी सामाजिक रीतियों और संस्थाओं में लागू करने के व्यवहारिक दर्शन शास्त्र को आचार निर्माण कहते हैं। जीवन के सर्वसामान्य दर्शनशास्त्र तथा उसके व्यवहारिक दूसरे भाग आचार शासन की सर्वसामान्य प्रणाली के बिना विश्व-राज्य की न तो स्थापना और न रक्षा ही की जा सकती हैं। राज्य को नागरिकों के लिये शारीरिक, बौद्धिक, ललित रुचि सम्बन्धी और नैतिक जीवन का उच्चतम आदर्श उपस्थित करना चाहिये। अन्यथा वह उन सब से अधिक विद्वान् तथा गुणी स्त्री पुरुषों के पूर्ण हृदय से स्वीकार की हुई आधीनता पर शासन नहीं कर सकेगा, जो उनके आदर्शों का प्रचार करने वाली संस्था की सेवा करना अधिक पसन्द करेंगे। पूर्णराज्य अकेला और एक रूप ही होगा; वह आचार शास्त्र से अर्थशास्त्र और राजनीति को प्रथक् न करेगा। वह रूडोल्फ स्टीनर की इस उक्ति का अनुसरण नहीं करेगा, "एक स्वस्थ समाज में आत्मिक जीवन का अपना प्रथक्

क्षेत्रहोता है. उसको राजनीति और अर्थशास्त्र के क्षेत्रों के साथ २ ही काम करना चाहिये।" यदि नैतिकता को प्रथक् २ अनेक सैनिक सम्प्रदायों में संगठित किया जावेगा तो वह विश्व-राज्य के अन्दर कांटों के समान अत्यन्त कष्टकर सिद्ध होंगे। उस समय राज्य का एक धर्म अथवा अनेक धर्मों से उसी प्रकार सदा ही संक्रामक झगड़ा बना रहेगा जिस प्रकार मध्य युगों में प्रायः सब से अधिक बुद्धिमान् तथा प्रतापी मनुष्यों के राज्य की सेवा में न रख कर धर्म की सेवा में होने से होता था। विश्व-राज्य को अपने में सभी मस्तिष्क और बल सभी प्रकाश और प्रेम, सभी शक्ति और भावुकता को जो समस्त पृथ्वी भर में किसी भी समय मिल सकती है आकर्शित करना चाहिये। उसको एक ईर्ष्यालु गृहिणी बन कर अपने नागरिकों से कहना चाहिये, मैं आपके प्रेम में विरोधियों को सहन नहीं करती, प्रेम मुझ से एक मात्र ही मुझ से ही करो, सेवा केवल मेरी एकमात्र मेरी ही करो। मैं ही आपके लिये प्रथम और अन्तिम हूँ। आपकी मेरे अतिरिक्त दूसरी कोई पूजा योग्य प्रतिमा न होगी।' यदि विश्व-राज्य को बेनथम और स्पेंसर के पुलिस राज्य के आदर्श के अनुसार बनाया गया और वह केवल जान और माल की रक्षा करने के प्रतिषेधात्मक कर्तव्य का ही पालन करे या तो उसमें अत्यधिक गड़बड़ी फैल जावेगी अथवा वह बुद्धि के अभाव के कारण नष्ट हो जावेगा। उसमें न कोई उत्साह होगा और

न आत्मिक शक्ति ही होगी। वह भी उस धन के ही समान मृतक होगी जिस की वह रक्षा करता है, वह पुलिस वालों के डण्डे के समान ही काष्ठमय और निर्जीव होगा। वह जीवन के पूर्ण आदर्श के लिये न होकर केवल शारीरिक अस्तित्व का साधन होगा। वह हमारे शारीरों की रक्षा करेगा किन्तु वह हमारे मस्तिष्का हृदय और आत्माओं के लिये कोई भोजन न देगा। उसके जीवन चिन्हों के पैगम्बर और दार्शनिक न हो कर पुलिसमैन और जेल वार्डर होने से उसका कार्य बहुत ही निम्न कोटि का हो जावेगा। इस प्रकार के बोदे और नष्ट भ्रष्टराज्य को उन शक्तिशाली धर्मों की स्पारङ्गी की कमानी बनना पड़ेगा, जो नागरिकों को सम्मान से जीने और शान्ति से मरने की शिक्षा देते हैं। प्रत्येक मनुष्य का प्रथम और सबसे अधिक मतलब इस प्रश्न से ही होना चाहिये, "मैं इस जीवन को सब से उत्तम किस प्रकार बनाऊं ? विश्वराज्य को इसके दर्शनशास्त्र और आचारशास्त्र की शिक्षा अपने सभी बच्चों को देनी चाहिये; उसको उन्हें अज्ञानी और मूर्ख पुरोहितों और ठगों की दया के ऊपर नहीं छोड़ना चाहिये। इस शिक्षा के ऊपर ही राज्य का जीवन तथा मरण निर्भर करेगा।

इसके अतिरिक्त, नागरिकों को एक उद्देश्य के लिये उद्योग करने और एक भावना में काम करने की शिक्षा देने वाले एक सर्वसामान्य दर्शनशास्त्र के बिना सामाजिक समानता और राजनीतिक एकता संभव नहीं है। जानडेवे आधुनिक सभ्यता की

अध्यात्मिक गड़बड़ी की इन शब्दों में निन्दा करता है, "सामाजिक एकता का ऐसा कोई बन्धन नहीं है, जैसा एक बार मध्यकालीन यूरोप के यूनानियों, रोमनों, इब्रानियों, और कैथोलिक लोगों को एक बन्धन में बांध सकता था। धर्म को एकमात्र बन्धन न बनाने से होने वाली हानि को पहले से बतला कर अनुभव करने वालों की कमी नहीं है।" एक सर्वसामान्य दर्शनशास्त्र के शक्तिशाली सीमेंट के बिना विश्व राज्य बिना चूने के केवल ईंटों स बनी हुई मीनार के समान ही होगा। विभिन्न धर्म उस को उस प्रकार छिन्न-भिन्न कर देंगे, जिस प्रकार जंगली घोड़े रथ को अनेक दिशाओं में लिये हुए भागे २ फिरते हैं। राज्य के पास शक्ति होती है, और प्रत्येक सम्प्रदाय मनुष्य जाति के हित के लिये इस शक्ति से काम लेना चाहेगा। यदि नागरिकों के मस्तिष्क एक समान विचार नहीं करते, उनके हृदय एक समान अनुभव नहीं करते, तो न तो उनके हाथ ही एक समान मिल कर काम करेंगे और न उनके पैर ही एक मार्ग पर चलेंगे। कैथोलिक और प्रोटेस्टैण्ट, मुसलमान और ईसाई, शिया और सुन्नी, मुसलमान और यहूदी, हिन्दू और मुसलमान तथा अन्य इस प्रकार के धर्मों के सैनिक योद्धा कुछ राज्यों को ऐसे अखाड़े बना देंगे, जिनमें किन्हीं सम्मानपूर्ण नियमों पर आचरण न किया जावेगा। कुछ कुन्द विचार करने वाले आधुनिक इंगलैण्ड और अमरीका के दृश्य से धोखा खाते और विश्वास करते हैं कि शान्ति और सहयोग बिना राजनीतिक एकता के ही सम्भव

है। किन्तु इंगलैण्ड प्रोटेस्टैंट वाद के आधार पर एक हुआ है, उसने यह नियम बना दिया है कि वहां रोमन कैथोलिक धर्म का अनुयायी राजमुकुट धारण नहीं कर सकता। संयुक्तराज्य में कैथोलिक सम्प्रदाय पहिले ही झगड़े मचाये हुए हैं, उस देश के राज्य में अर्थलोलुपता, आचरणहीनता की दीमक लग गई है। यदि ग्रेट ब्रिटेन की जनसंख्या में एक करोड़ ज़ोरोस्ट्रियन, एक करोड़ कैथोलिक, एक करोड़ प्रोटेस्टैण्ट, एक करोड़ बाहाई, एक करोड़ मुसलमान और एक करोड़ बौद्ध होते तो ब्रिटेन जैसे देशभक्त राष्ट्र में भी राजनीतिक समानता प्राप्त करना असम्भव हो जाता। एक राज्य उद्देश्य और सिद्धान्त की एकता की कल्पना पहिले से कर लेता है। विश्व-राज्य जनता का घर होगा, न कि होटल अथवा कारवां की सराय। अनेक धर्म एक दूसरे के विरुद्ध अत्यन्त असहिष्णु और आक्रमणशील होते हैं। उनके अनुयायी अपनी जेबों में केवल अपने धर्म से ही मुक्ति होने के विस्फोटक बम को लिये फिरते हैं, जो राज्य की एकता के लिये एक सौ युद्धों से भी अधिक भयंकर है। यदि विश्व-राज्य के नागरिक एक दूसरे से 'अधर्मी', 'नास्तिक', 'मलेच्छ', 'काफिर' और 'पाषाण पूजक' आदि कह कर घृणा करेंगे तथा उनकी निन्दा करेंगे तो राज्य मानव ऐक्य के आदर्श की खेदपूर्ण दिल्लगी होगी। ऐसे पक्षपातियों और धार्मिक उन्मादियों का अपने २ धर्मों और राज्यों में ही रहना अच्छा है क्योंकि वह विश्व-राज्य के लिये योग्य नहीं है। रूसो ने पारस्परिक निन्दा के इस

ईश्वरीय मनबहलाव की बुराइयों को बतलाते हुए कहा है, "मेरा विचार है कि सामाजिक असहिष्णुता और ईश्वरी असहिष्णुता में भेद करने वाले गलती करते हैं। इन दोनों ही प्रकार की असहिष्णुताओं को एक दूसरे से प्रथक् नहीं किया जा सकता। जिन लोगों को कोई 'नीच' समझता है उनके साथ रहना असम्भव है, उनके साथ प्रेम करने का अभिप्राय उस परमात्मा से घृणा करना है जो उनको दण्ड देगा; अतएव या तो उनके विश्वास को पूर्णतया बदलना अथवा उनको दण्ड देना पूर्णतया आवश्यक है। जहां कहीं भी ईश्वरीय असहिष्णुता का प्रवेश होता है वहाँ का शासक शासक नहीं रहने पाता, उसके पश्चात् वहां के शासक पुरोहित लोग हो जाते हैं।" इस चेतावनी के लिये कानों को बन्द नहीं कर लेना चाहिये। विश्व-राज्य के नागरिक अपने २ घरों में तलवारें और पिस्तौलें न रखेंगे। तब वह धार्मिक असहिष्णुता से उत्पन्न होने वाले सामाजिकता विरोधी उन भयंकर विचारों को किस प्रकार रख सकेंगे, जो युद्ध के सभी शस्त्रों और यन्त्रों से अधिक भयंकर और सत्यानाशी हैं? असहिष्णु धर्मों के अत्युत्साही व्यक्ति सदा ही

"भाले और बन्दूक के पवित्र सूत्रों के
आधार पर अपने विश्वास को बचावेंगे.
अजेय तोपखाने से
सभी वादविवादों का निर्णय करेंगे.
और ईश्वर प्रेरणा के आघातों और धक्कों से

अपने कट्टर सिद्धान्तों को सिद्ध करेंगे।''

संसार को नष्ट कर देने वाले विभिन्न धर्मों का आज विश्वास और प्रथाओं से कोई सम्बन्ध नहीं है; वह तो अपने विचित्र सामाजिक और राजनीतिक सिद्धान्तों को पकड़े बैठे हैं। रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय प्रजातन्त्र और विवाहविच्छेद (तलाक) को पसन्द नहीं करता; कैल्विन के अनुयायी लोकसम्मत सरकार चाहते हैं; मुसलमान लोग बहुपत्नी प्रथा की स्वीकृति देते और एक निर्वाचित खलीफ़ा आदि को अनियोचित अधिकार देते हैं, यह युक्ति देना व्यर्थ है कि संसार के आधुनिक धर्मों का कोई राजनीतिक कार्य अथवा विशेषता नहीं है। प्रत्येक धर्म की अपनी प्रथक् राजनीति है।

विश्व-राज्य का न तो कोई अपना धर्म होगा, न उसमें कोई और धर्म ही होंगे[1]। राज्य उसी प्रकार आचार शास्त्र का प्रतिनिधित्व करेगा, जिस प्रकार कनफ़्यूसियन चीन में किया जाता है, उसके मन्त्री लोग साधु और सन्त लोग होंगे; उसके सिविल अधिकारी विद्वान और वैज्ञानिक होंगे। वह केवल शासन का ही नहीं वरन् शिक्षा तथा सुधार का उत्तरदायी भी होगा। वह नागरिकों को सभी गुणों और विद्याओं की शिक्षा देगा। यह अरस्तू की राज्य सम्बन्धी इस परिभाषा के अनुसार

---

१ यह ला० हरदयाल की सम्मति है, हमारी सम्मति में तो भावी विश्वराज्य में सभी धर्मों को सहिष्णुता तथा पारस्परिक सद्भाव का जामा पहिना कर स्थान दिया जावेगा !

होगा, "राज्य कहलाने वाले समाज का उद्देश्य सर्वोच्च हित होता है, वह सब से उत्तम होता है। उसमें अन्य सभी सभा समितियों का अन्तर्भाव होता है।...... उसमें पूर्ण स्वतन्त्रता होगी। आरम्भ में उसकी स्थापना मनुष्य के जीवन के आधार पर होती है, किन्तु बाद में इन सब को सुख से रखने के आधार पर चलाया जाता है। यह पूर्ण स्वतन्त्र जीवन के उद्देश्य से बनाया हुआ परिवारों और ग्रामों का समाज होता है। उसकी स्थापना केवल एक साथ रहने के उद्देश्य से नहीं की जाती, वरन् उस प्रकार रहने के लिये की जाती है, जिस प्रकार मनुष्यों को रहना चाहिये।"

हमारा उद्देश्य इस प्रकार अनेक मुख तथा दिशाओं वाला राज्य है, न कि लिबरलों का पुलिस राज्य और न सामान्य समाजवादियों (सोशिएलिस्टों) और साम्यवादियों (कम्यूनिस्टों) का रोटी और सिनेमा का राज्य है, वह आर० ब्राउनिंग के शब्दों में उस युग का अविर्भाव करेगा, जब

"सब मनुष्य जाति के सब व्यक्ति समान रूप से पूर्ण होंगे,
और पूर्ण प्राप्त शक्ति से समान होंगे।"

इस प्रकार के राज्य की रचना करने वाला दर्शनशास्त्र और आचारशास्त्र विश्वजनीन, वैज्ञानिक और आशाप्रद होना चाहिये। राज्य अपने बच्चों को ईश्वरवाद और निराशावाद के अध्यात्म-शास्त्र की शिक्षा नहीं देगा। वह अन्धविश्वास, अकर्मण्यता, अथवा निराशा और त्याग सिखलाने वाले दार्शनिक 'पराजय

वाद' के साथ कोई समझौता नहीं करेगा । वह विज्ञान का उसी प्रकार सम्मान करेगा, जिस प्रकार ऐथेन्स वासी ऐथेना देवी की पूजा किया करते थे । वह सभी नागरिकों को यथासम्भव उत्तम से उत्तम शिक्षा देकर उनको सम्मति तथा कार्य की पूर्ण स्वतन्त्रता देकर छोड़ देगा। यदि उनको ठीक शिक्षा मिल जावेगी तो वह कभी भी कुमार्गगामी नहीं होंगे। विश्वराज्य सभी समस्याओं पर निशुल्क वैज्ञानिक विचार को प्रोत्साहित करेगा । उसके नागरिक अपनी उत्तम शिक्षा के कारण सभी अन्धविश्वासों से छूट जावेंगे । उस समय "न कोई ईश्वरीय विद्या होगी और न कोई अध्यात्मशास्त्र होगा, किन्तु विज्ञान सब के लिये बहुत होगा।" राज्य शासन की नयी रीति का यह साधारण तथा सर्व सामान्य रूप होगा।

————

चतुर्थ अध्याय

अर्थशास्त्र

विश्वराज्य की स्थापना अर्थशास्त्र की उस ग्रैनाइट चट्टानों की नींव के आधार पर की जावेगी, जिसमें वह संसार भर के उत्पन्न पदार्थ (उत्पत्ति), खपत और विभाग के वैज्ञानिक रूप में होगा।

१. उत्पति

पृथ्वी भर के सब खेत, फलों के बगीचे, चरागाहें, खानें, जङ्गल, मछली मारने के स्थान, कारखाने, फैक्टरियाँ, और उत्पत्ति के सभी साधन और सामग्री उस विश्व राज्य की ही होगी और वह स्वयं ही सब का प्रबन्ध करेगा। उसके पास सभी सम्पत्ति का अधिकार-पत्र होगा। वही हमको हमारे दैनिक जीवन की उस रोटी को देगा, जिसके लिये आज करोड़ों व्यक्ति व्यर्थ ही

'ईश्वर' से प्रार्थना किया करते हैं। वह सब को काफी देगा और उसके सदा मिलते रहने का विश्वास दिलावेगा। वह पृथ्वी भर के प्रत्येक स्त्री, पुरुष और बच्चे के लिये, यहाँ तक कि प्रत्येक उपयोगी पशु और पक्षी के लिये अग्रदर्शी और दूरदर्शी भाग्य होगा। इस समय उत्पत्ति का प्रत्येक स्थान में राष्ट्रों और व्यक्तियों की पारस्परिक प्रतिस्पर्धा में प्रबन्ध बिगड़ा हुआ है और वह विषम हो गई है। प्रत्येक राष्ट्र अपने पड़ौसियों की बिल्कुल भी चिन्ता न करके स्वयं धनी बनना चाहता है; और यदि वह उसका कुछ ध्यान करता भी है तो वह उनको लूटना और निर्धन बना देना चाहता है, प्रत्येक राष्ट्र अपने यहां के व्यवसाय की रक्षा के लिये अपने यहां की आयात तथा निर्यात व्यापारिक वस्तुओं पर चुङ्गी लगाता है, और इस प्रकार व्यापार के जीवन के रक्त के स्वतन्त्र संचार को रोकता है। प्रत्येक राष्ट्र अपने यहां के कर दाताओं के स्वार्थ के लिये अपने मुद्रा के मूल्य की रक्षा करने के उद्देश्य से प्रत्येक देश को अधिक माल बेचने और उससे कम माल लेने की हास्यजनक और असत्य प्राय नीति का अनुसरण करता है। कोई भी एक राष्ट्र एक क्षण के लिये भी ठहर कर अपने मन में यह प्रश्न नहीं करता, "यदि प्रत्येक राष्ट्र बेचना चाहे, तो फिर मोल कौन लेगा ?" राष्ट्रों के नेता यह नहीं समझते कि बेचने और मोल लेने के दोनों ही काम साथ साथ चलने चाहियें। जिस प्रकार एक हाथ से हथेली नहीं बजाई जा सकती, उसी प्रकार बिना मोल लिये बेचा नहीं जा सकता।

किन्तु उनके तो होश गुम हो गए हैं और वह एक पक्षीय व्यापार और आर्थिक आत्म पूर्णता की रक्षा करने के उद्योग को बराबर करते रहना चाहते हैं। यह पागलखाने का पागलपने से भरा हुआ अर्थशास्त्र है। यह माल पैदा करने वाले राष्ट्रों में समझ में न आने योग्य गड़बड़ तथाप्र तियोगिता है। प्रतियोगिता गड़बड़ी का ही लम्बा नाम है। प्रत्येक देश अनेक ऐसी सामग्रियों का निर्माण करना चाहता है, जिनके लिये उसके यहां कोई सुविधाएं और लाभ नहीं हैं। इंगलैण्ड और जापान के अन्दर अथवा उनके असापास कपास का एक दाना भी पैदा नहीं होता, किन्तु वह वस्त्र व्यवसाय को संगठित किये हुए हैं। स्काटलैण्ड जूट के बोरों को बनाता हैं, यद्यपि जूट वहां से बहुत दूर बङ्गाल में उत्पन्न होती है। स्वीजरलैंण्ड चाकोलेट बनाता है, यद्यपि नारियल वहाँ सेसहस्रों मील दूर अफ्रीका से लाया जाता हैं। इस प्रकार धोखे में पड़े हुए राष्ट्र इस बात को भूल कर कि वह अनिवार्य रूप से समुद्र में डूब जाने वाले चूहों के समान अपने सर्वनाश की ओर को जा रहे, प्रकृति के नियमों का उलंघन कर रहे हैं। आज संसार की अर्थनीति में कोई क्रम अथवा युक्ति नहीं हैं। प्रत्येक राष्ट्र उष्णदेशों में उत्पन्न होने वाली कच्ची सामग्री की ओर को झटपता पूंजी लगाने के लिये नये २ बाज़ार और क्षेत्रों को खोजता और इसलिये उपनिवेशों तथा आधीन राज्यों को प्राप्त करता है। कभी तो वहाँ कुछ सामग्री आवश्यकता से अधिक उत्पन्न हो जाती है ओंर भाव गिर जाता है। किसी दूसरे समय

जनता को माल कम मिलता है और दाम चढ़ जाते हैं। अनेक राष्ट्रीय मुद्रा की दरें भी स्थायी रूप से ठीक नहीं रह सकतीं। वह मोरोक्को के पागल दुरवेशों के समान सदा ही इधर उधर ऊपर नीचे कूदते रहेंगे। आजकल का राष्ट्रीय अर्थशास्त्र ऐसा हास्यजनक और इतना अपूर्व है। उसका संगठन करने वाले हमको हिप्पोक्लाइड्स नामी उस तुच्छ नवयुवक का स्मरण कराते हैं, जिसकी पत्नी हेरोडोटस १ के लेखानुसार इस कारण चली गई थी कि उसने एक सामाजिक अवसर पर अपने सिर पर नाच कर अपने को मूर्ख बनाया था। हमारे औद्योगिक और राजनीतिक नेता भी इस अंतर्मुख स्थिति में शैतानी नृत्य कर रहे हैं। वह डेमास के ज्वालामुखी के ढलुवां स्थान पर लम्बी चौड़ी तुच्छ कांफ्रेसों में नाचते, गाते, बाजा बजाते और बकते रहते हैं। इससे बुरी और क्या बात है। उनका विश्वास है कि प्राचीन ज्वालामुखी पूर्णतया जल चुका, वह इसके अन्दर २ होने वाले सांय २ शब्द को नहीं सुन सकते, क्यों कि वह अपने ही उच्च स्वर के व्याख्यानों तथा भोज के सगीत स्वरों के कारण बहरे हो गये हैं। किन्तु विस्फोट शीघ्र होने वाला है। राष्ट्रीय अर्थशास्त्र की आयोजना करने वाले हतबुद्धि लोग सार्वजनिक असन्तोष और घृणापूर्ण क्रोध के जलते हुए लावा में शीघ्र ही दब जावेंगे। यह सब बातें बहुत शीघ्र होने वाली हैं।

राष्ट्रीयतावाद विश्व-अर्थशास्त्र के बुद्धिवादी तथा स्थायी रूप

---

१. हेरोडोरस (ईसापूर्व ४८४-४२४ तक) यूनानी इतिहासज्ञ था।

को असम्भव कर देता है। फिर प्रत्येक राष्ट्र के अन्दर पृथ्वी का निजी स्वामित्व, पूंजी, और उत्पत्ति तथा बटवारे के सभी साधनों ने सभी देशों को निराशापूर्ण आपत्ति में डाल दिया है। उत्पत्ति एकमात्र लाभ के लिये की जाती है। यदि कुछ सामग्रियों पर लाभ नहीं मिलता तो उनको उत्पन्न नहीं किया जावेगा, फिर चाहे उनका असितत्व कितना भी आवश्यक क्यों न हो। इस प्रकार गत महायुद्ध के समय और उसके पश्चात् जनता के लिये आवश्यक मकान व्यक्तिगत उद्योग से कभी न बनते और उनमें राज्य को हस्तक्षेप करना पड़ा। म्यूनिसिपैलिटियों के मकान व्यक्तिगत मकानों की अपेक्षा प्रति सप्ताह दो या तीन शिलिंग प्रति सप्ताह सस्ते मिल सकते हैं। कभी २ दूर देशों में रहने वाले धनी व्यापारी आमोद प्रमोद की सामग्री का निर्माण करते हैं, जब कि निर्धन लोग जीवन की आवश्यक वस्तुओं के लिये ही चिल्लाते रहते हैं। पूंजी की उत्पत्ति के लिये आवश्यकता होने पर वह सदा घर पर ही नहीं रहती। जिस प्रकार गिद्ध को मांस की गंध दूर से ही आ जाती है, उस प्रकार वह लाभ को दूर से ही सूंघ लेती है। वह लाभ के पंख लगाकर अपने देश के दूसरे देश को उड़ जाती है। उसको सस्ते और विसंगठित श्रम से अधिक लाभ होने की आशा रहती है। व्यापार, कुप्रबन्ध और प्रतियोगिता प्रतिवर्ष सहस्रों औद्योगिक धन्दों को नष्ट कर देती है। "प्रातःकाल कभी भी सांयकाल को नष्ट नहीं करता, किन्तु किसी न किसी का दिल तोटूटा ही होगा।" पूंजीवाद के गड़बड़

से संसार में किसी घाटे अथवा दिवाले से कोई दिन खाली नहीं जाता। सन् १९३२ में ग्रेट ब्रिटेन में ४६४५ रिसीवर बनाने की आज्ञाएं दी गईं थी। उस साल दिवालियों की देनदारी १०, १३१, १२६ पौंड थी और उनका तरका कुल २,०७५, ३८८ पौंड का ही था। दस दिवालियों पर धोखे से दिवाला निकालने का मुकदमा चलाया गया था।

इस प्रकार से फैलने वाली विशृङ्खलता से व्यापारिक कल्पना और ठगी को अधिक सुविधा मिलती है, जिससे उसी प्रकार लूट और सन्देह रहित नये २ कार्यों के लिये क्षेत्र तयार होता है, जिस प्रकार उष्ण प्रदेशों के अन्धकारपूर्ण बनों में चीतों और तेंदुओं को संरक्षण मिलता है।

पूंजीवाद विसंगठन का सब से उच्च स्थान है। अनेक कारखाने और कम्पनियां उसी सामग्री का निर्माण करती हैं; इसी कारण प्रबल प्रतियोगिता, अनावश्यक विनाश, अत्यधिक कर भार, आनन्द और वेरोजगारी के समय का बारी २ से आना, अच्छे माल में बुरे माल का मिलना, धक्के और विषम परिस्थियां, मुकदमे और अपघात, दुःख और निराशा हुआ करती हैं, एक लिमिटेड कम्पनी ने जनता से उस समय पचास सहस्र पौंड अपने हिस्सों पर मांगा, जिस समय उसकी निकाली हुई पूंजी केवल ६५ पौंड थी। थोड़ी २ पूंजी वाले निर्धनों को थोड़े २ समय का उधार देकर व्याज खाया करते हैं। किन्हीं २ देशों में तो वह प्रति वर्ष ४८ रुपये सैकड़ा सूद कानूनी अधिकार से

ले सकते हैं। उनमें अनेक पैसा रुपया अथवा आधा आना रुपया महीना तक सूद लेते है। छः दूधवाले एक सड़क पर फेरी लगाया करते हैं, किन्तु उस ठगी जाने योग्य जनता के गले में शराब अथवा सोडा वाटर उतारने के लिये एक कोड़ी निर्माता चक्कर लगाया करते है, उत्पादकों और विक्रेताओं की यह अधिकता ही शक्ति और जीवन का प्रतिदिन और प्रति घन्टे दुरुपयोग कर रही है। प्रत्येक व्यापारी नये आविष्कार को अपने विरोधी से छिपाना चाहता है और प्रकृति के उपहार पर एकाधिकार के लिये पैटेण्ट कराये जाते हैं। प्रतिभाशाली व्यक्ति आविष्कार करता है और पूंजीपति उसको रोक कर कैद कर लेता है। उपयोगी उत्पत्ति को प्रत्येक चरण पर रोक कर उसमें बाधा डाली जाती है, किन्तु पूंजी बड़े उत्साह से हेरोइन (Heroin) और कोकीन जैसे नशों के टन के टन तथा लाभ होने की दशा में बड़े भारी परिमाण में शस्त्रास्त्रों का निर्माण करती है। वह घातक और शत्रु दोनों को ही निष्पक्षपात होकर बन्दूकें और राइफिल बेचता है। उसकी मातृभूमि तो धन है। वह लाभ के लिये दूध अथवा अफीम, रोटी अथवा ब्रांडी, शहद अथवा हाशिश को समान रूप से बेच सकती हैं। पूंजी यह नहीं पूछती "क्या यह सामग्री आवश्यक अथवा उपयोगी है ?" उसका प्रश्न केवल यह रहता है, "मैं उससे कितना प्रति शतक लाभ प्राप्त कर सकता हूं ?" वह सार्वजनिक अनुरोध के द्वारा प्रायः हानिप्रद वस्तुओं की कृत्रिम माँग भी उत्पन्न करने का उद्योग

करती है। वह अत्यन्त आचारहीन भोगविलास और विलासिता की सामग्री को भी उत्पन्न करती है। हमारे पूंजीपतियों में न तो बुद्धि होती है, न नैतिकता। वह तो संकुचित दृष्टि वाले अपरिपक्व बुद्धि वाले लड़कों के उस समूह के समान होते हैं, जिनको यदि किसी रेस्टोरेण्ट में घुस जाने दिया जावे तो वहां के भोजन के लिये सब ओर को भागते दौड़ते हुए एक दूसरे से लड़ते झगड़ते तथा गाली गलौज़ तक करने लगते हैं। हमारी सिविल सर्विस और डाकखानों का सङ्गठन किया जाता है और उनका प्रबन्ध सामाजिकता से किया जाता है; किन्तु हमारे उद्योग धन्दो और कृषि व्यवसाय को व्यक्तिगत सम्पत्ति और अनियन्त्रित प्रतियोगिता की अयोग्यता, अपूर्णता और अनैतिकता के द्वारा हानि पहुंचाई जाती है, यह कैसी मूर्खता है ?

२. खपत

यह बड़ी विचित्र बात है कि सभी राजनीतिक सिद्धान्तों के प्रायः अर्थशास्त्री, समाजवादी तक—खपत के प्रश्न पर पूर्ण वाद-विवाद नहीं करते; तो भी खपत ही निश्चय से उत्पत्ति की समस्या की कुंजी है, क्योंकि समाज उसी को उत्पन्न करता है, जिसको स्त्री और पुरुष खपाना चाहते हैं। सामग्रियां उपयोग तथा उपभोग के लिये उत्पन्न की जातीं तथा बांटी जाती हैं। जनता की आवश्यकताएं, रुचियां और इच्छाएं ही यह निश्चय करती हैं कि क्या उत्पन्न किया जावे। किसान लोग मुसलमानी देशों में सुवर का मांस अधिक उत्पन्न नहीं करते, घोंघे फ्रांस के

बाज़ार में मिलते हैं, इंगलैण्ड में नहीं। जंज़ीबार और लाइबेरिया में बहुत कम पुस्तकें छापी और प्रकाशित की जाती हैं। एशिया भर में ग्रामोफोनों का अच्छा व्यापार है, क्योंकि वहां की अकेली पड़ी और आलसी स्त्रियाँ घर में बड़े प्रेम से बाजा सुनती हैं। इस प्रकार खपत से ही उत्पत्ति को मार्ग मिलता है।

वर्तमान प्रणाली में खपत दो सिद्धान्तों—सुख की इच्छा (सुखवाद) और विलासिता—के अनुसार होती है। सुख धनी और निर्धन सभी भोगते हैं। विलासिता उन धनियों का ही पाप है, जिनकी बड़ी भारी आय होती है। जीवन की आवश्यकताओं और आरामों के पूरा हो जाने पर ही विलासिता में पड़ा जाता है। इस लिये विलासिता प्रत्येक देश में बहुत थोड़े से व्यक्तियों में ही परिमित होती है। किन्तु सुख की इच्छा का अस्तित्व सभी वर्गों में है, क्योंकि सुख कम से कम आवश्यकता वाले निर्धन भी चाहते हैं। एक भिखमङ्गा भी सुखी हो सकता है।

सुखवाद की परिभाषा यही है कि अस्थायी उपभोग और स्नायु उत्तेजक अनुभवों को अधिक प्राप्त किया जावे, भले ही वह उसको सदा न मिले। खपत का वास्तविक सिद्धान्त सुख है, जिसका उद्देश्य व्यक्ति की उन्नति और स्थायी आनन्द और हित है। किन्तु सुखवाद वह मिथ्याभाषी मार्गप्रदर्शक है, जिसका अनुसरण प्रायः लोग किया करते हैं और जिसकी प्रबल अभि-

लाषा के कारण ही कष्ट तथा आपत्तियां आती हैं। इस प्रकार सुखवाद हानिकारक मादक वस्तुओं की अत्युकट अभिलाषा उत्पन्न करता है और उसके परिणाम स्वरूप संसार भर में प्रतिदिन मद्य, तम्बाकू, हाशिश, भंग, चाय, कहवा, अफीम, पान तथा अन्य मादक वस्तुओं की बड़े भारी परिमाण में खपत होती है। उत्पत्ति को माँग पूरी करनी ही चाहिये। नशीले लोग इस प्रकार के सुखवाद के अत्यन्त पतित शिकार होते हैं। इस प्रकार की सामग्री के हानिकारक व्यापार में लाखों एकड़ भूमि, बड़ी भारी सम्पत्ति और बड़े भारी परिश्रम को आवयश्कता होती है। इस प्रकार की सब वस्तुएं कूड़े से भी बुरी हैं, यह बुद्धिवादी अर्थशास्त्र के गणित में ऋण परिमाण हैं, क्यों कि यह जनता के स्वास्थ्य और आचरण दोनों को ही नष्ट करती हैं। इसमूर्खता पूर्ण खपत की दुःखदायी मूर्खता का कारण पूंजीवाद अथवा राष्ट्रीयवाद नहीं, वरन् विशुद्धसुखवाद अथवा आनन्दवाद है। यह पूंजीवाद और राष्ट्रीयवाद के बिना भी हो सकता है।

सभी देशों के सभी वर्ग के स्त्री और पुरुष पकवान, मिठाई, महावर, ओठों के रङ्ग, मेंहदी, मसालों और आभूषणों जैसी सत्यानाशी और व्यर्थ सामग्री का उपयोग करते हैं। इस समय खपत का यह मुख्य भाग है। विलासिता अत्याधिक आनन्दवाद और बेतुके धन की कुरूप सन्तान है। कभी यह अभिमान और धन के ऐक्य से भी उत्पन्न होती है। जब कुछ सामग्रियां-जिसको आनन्दवाद पसंद करता है—अत्यन्त व्ययसाध्य हो

जाती है, तो उनको 'विलास सामग्री' समझा जाता है विलासिता और सार्वजनिक खपत की वस्तु में उसके मूल्य से ही अन्तर आता हैं। जिस प्रकार भारतवर्ष में आमइंगलैण्ड के सेव के समान एक साधारण फल है; किन्तु लंदन में जहां इसके एक टुकड़े का मूल्य एक रुपया होता है—इसको विलासता समझा जाता है। इटली और यूनान में ताजे अंजीर अत्यन्त सस्ते बेचे जाते हैं, किन्तु इंगलैण्ड में वह विलासिता हैं। धनी विलासी लोग खेत की वस्तुओं, बत्तक, तीतर, बटेर आदि अनेक प्रकार के पक्षियों, मुरब्बा जैसे बनाये हुये फलों पुलाव, फलों के रस अनेक प्रकार की मछलियों, शम्पेन व्हिसकी, गुलाबजल, हलुवा कोफता बादाम के लड्डू पकवान, विरयानी, दार्जिलिंग की चाय वल्लोरिया की सिगरेट; केशर पाल के अंगूर तरबूज पिस्ते पिस्ते की मिठाइओं, बाँस के अचार, रेशमीवस्त्र बढिया दुशाले सोना जड़े हुये रत्न बढियाहार, उत्तम इत्र अधिक मूल्य की मोटर गाड़ी, सोने की घड़ियों वालों दुर्लभ पुस्तकें और चित्र ईरानी क़ालीन चीनी के वर्तन, हीरे की अंगूठियों मोती के हार जैसी बहुमूल्य सामग्री का मोल लेने में आनन्द मानते हैं, धनीव्यक्तियों के इस प्रकार मानव श्रम तथा चमक दमक प्रदर्शन करने के लिये, निर्लज्जता तथा मूर्खता पूर्ण धन के अपव्यय का कोई अन्त नहीं है। इसके कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं :—

लंदन के एक स्टोर के पास ३ पौंड १३ शिलिंग और ६ पेंस अथवा लगभग ५३ रुपये की कीमत के एक २ रूमाल हैं।

एक महिला ने अपने वस्त्र पन्द्रह हज़ार रुपये के बनवाये थे,

गत महायुद्ध से पूर्व रूस के एक ज़मींदार के जीवन का वर्णन करते हुए उसके भतीजे ने लिखा है, "वह दिन में छै वार भोजन करता था और उसका प्रत्येक भोजन एक बड़ी भारी दावत के समान होता था। उसके बाग में उसके योग्य सभी वस्तुएं उत्पन्न होती थीं। उसके बगीचे में बड़े २ सुन्दर कांच भवन, सौ सौ वर्ष के प्राचीन ताड़ के वृक्ष, सजाने योग्य उत्तम २ फूल, और सभी ऋतु के फल मिलते थे। बड़ी २ बहुमूल्य मुर्गियों के अंडों को प्रतिदिन गिन कर उनपर तारीख डाली जाती थी। गौ के बछड़ों को केवल दूध का भोजन ही दिया जाता था, जिससे उनका मांस सफेद होता था। जल पशुओं के लिये पांच झीलें थीं, जिनमें विशेष रूप से बने चश्मों से पानी आता था।"

डबल्यू० ई० एच० लेकी अंग्रेज रईसों और "उनके विलासितापूर्ण जीवन' का वर्णन करता हुआ कहता है "वहां उतना अधिक आमोद प्रमोद किया जाता हैं कि वहाँ के लोगो की चींटियों के उस विशेष भेद से उपमा दी जासकती है, जो अपनी सेविका चींटियों के इतना आधीन होती है कि यदि उनके सेवक उनकी चिन्ता न करें तो वह भूखी मर जावे। समय का अत्यन्त अपव्यय, बड़ी भारी टीमटाम और ऊपरी दिखावट, बाल संभारने, वस्त्र पहिनने, गप्प मारने और तुच्छ आमोद का कभी समाप्त न होने वाले कार्यक्रम, इस प्रकार का वातावरण उत्पन्न कर देते हैं कि उसमें उद्देश्य अथवा प्रयोजन का नाम भी नहीं

होता। उनका कार्य केवल जीवन का आनन्द लेना ही रहता है। असंख्य पशुओं और पक्षियों की हत्या इस प्रकार की जाती थी, जैसे उनका कोई अस्तित्व ही न हो। जीवन को एक प्रकार का संगीत भवन बना लिया जाता है, जिसमें गम्भीरता का नाम भी नहीं होता।"

यूरोप से भारतवर्ष तथा चीन को जाने वाले जहाजों के कुछ फर्स्ट क्लास के यात्रियों को यात्रा में दोपहर के जलपान (लंच) और सांयकाल के भोजन (डिनर) में अनेक वस्तुएं दी जाती हैं। लंच दोपहर में एक बजे नियत समय पर होता है। उसमें पचास ‡ वस्तुएं फलों और कहवे के अतिरिक्त दी जाती हैं। डिनर सांयकाल ७ बजे दिया जाता है। इसमें फलों और कहवे के अतिरिक्त चालीस वस्तुएं दी जाती हैं।

लंदन इस समय संसार का सब से अधिक समृद्ध नगर है। वहाँ बड़े २ धनी रहते है। अतएव विलासिता भी वहां सोलह शृँगार किये हुए अपने स्वरूप पूर्ण स्वरूप में सदा नृत्य करती रहती है। वहां विलासिता की सामग्री पृथ्वी के सभी भागों से मगां कर बाज़ार में अधिक से अधिक मूल्य पर बेची जाती है। उदाहरणार्थ दार्जिलिंग की चाय वहां १८ शिलिंग प्रति पौंड बिकती है।

जूतों की समान्य दूकानों पर भी वहां ५५ शिलिंग तथा

‡ भारतीय सभ्यता के लिये उनके वर्णन को व्यर्थ समझ कर विस्तार के साथ नहीं दिया गया है।

उससे भी अधिक मूल्य के, रात्रि को पहिनने के गाउन साढे दस गिनी के, दस्ताने ३० शिलिंग के, हैट (टोप) दो पौंड के, टोपी ४६ शि० ६ पे०, कमीज ३६ शि० ६ पेंस और रोवें के कोट २०० पौंड से ८०० पौंड तक के मिलते हैं। हैटन गार्डन में बहुमूल्य रत्न और मोती के हार बीस सहस्र पौंड और इससे भी अधिक मूल्य के मोल लिये जा सकते हैं। इस प्रकार की बिलासिता आत्म केन्द्रित, बहु व्ययी, इन्द्रिय लोलुपी और आत्म घातक होती है। यह दूसरे के ऊपर आनन्द करने और दूसरों के पैसे को लूटने की चिन्ह है। यह कई लाख चटोरों की टीमटाम में और संसार के मूर्खों के अभिमान में चार चांद लगाने के लिये व्यर्थ और सत्यानाशी वस्तुओं की उत्पत्ति की मांग करती है। यह समाज की नैतिकता को निर्बल करती है, क्योंकि इन आलसी धनिकों के दोष धीरे २ समाज में भी आ सकते हैं। उनको अपने किये पर कभी लज्जा नहीं आती। वह भीड़भाड़ वाली सड़कों में मोर के समान नाचते, होटलों में कुत्तों के समान भोजन करते, और अपने समय को सौन्दर्य निर्माण, सिनेमा और नाटकों में नष्ट करते रहते हैं। वह अपनी मूर्खताओं, ओछेपन, तड़क-भड़क, निर्बुद्धिपूर्ण निरुद्देश्य 'सामाजिक' कार्यों, नृत्यों, पार्टियों, सैर सपाटों, भोजन, दौड़, स्वागत, शिकारी दलों, नृत्य दलों, रात्रि क्लबों और आमोद भवनों का खुले आम विज्ञापन तथा प्रदर्शन करते हैं। पूंजीवाद वास्तव में दुहरी मार है। यह धनी और निर्धन दोनों के ही

लिये अभिशाप है। यह एक वर्ग को अत्यन्त अधिक और दूसरे वर्ग को अत्यन्त कम देता है। इस प्रकार यह दोनों के ही मानव भावों को ठेस पहुँचाता और उनको पाशविकतापूर्ण भावों से भर देता है। यह धनियों को आवश्यकता से अधिक देता और निर्धनों को कष्ट देता है। यह विलासिता, व्यभिचार, नीचता, दासता, भूख की ज्वाला, अज्ञान, अपव्यय, आलस्य, असत्य भाषण, ईर्ष्या, उग्रता, घृणा, रोग, वेश्यावृत्ति, आत्मघात और अकाल मृत्यु जैसे दोषों को उत्पन्न करता है।

३. बंटवारा

इस प्रकार राष्ट्रीयवाद और पूंजीवाद उत्पति को घटाते और गलत मार्ग पर चलाते हैं। बंटवारे में वह न्याय और भाईचारे के नियम का भी उल्लंघन करते हैं। राष्ट्रों में कुछ इंगलैण्ड, फ्रांस और पुर्तगाल जैसे देशों ने एशिया तथा अफ्रीका में बड़े २ उपनिवेश हथिया लिये हैं, जब कि इटली तथा जर्मनी जैसे कुछ अन्य देशों के पास अपने तयार माल के लिये इस प्रकार के साधन और बाजार नहीं हैं। इस असमानता के कारण ही अनेक युद्ध होते हैं। मनुष्य जाति को धनी और बिना साधन वाले राष्ट्रों में नहीं बांटना चाहिये। अरजेंटाइना तथा भारत जैसे कुछ देशों के साथ प्रकृति ने उनकी भूमि को अधिक उपजाऊ बनाने का पक्षपात किया है। वह सुगमता से बड़ी भारी सम्पत्ति को उत्पन्न करके उसको सुगमता से एकत्रित कर सकते और बखेर सकते हैं। अरब, स्कोटलैण्ड तथा अफ़गानिस्तान

जैसे अन्य देशों की जातियों को प्रकृति ने पिछड़ी हुई बनाया है, प्रकृति इन देशों की वास्तव में ही सौतिया मां है। उनकी निर्धनता से भी प्राय: झगड़े होते रहते हैं, जैसा कि रडिरिक डू ने जेम्स फ़िट्ज़ जेम्स को समझाया था—

"हम अब कहाँ रहते हैं ? देखो, ढीठता के साथ
एक टीले के ऊपर दूसरा टीला तथा कठोरता के ऊपर कठोरता की
जा रही है।

क्या इस जंगली पहाड़ी के ऊपर चढ़ते हुए इससे
मोटे मृगों अथवा घर की रोटी के लिये पूछें ?"

जापान तथा स्वेडन जैसे कुछ उन्नत राष्ट्र अपने वैज्ञानिक उद्योग धन्दों तथा सामग्री की उच्चता के द्वारा बड़ा भारी धन कमा लेते हैं, जब कि कुछ चीन और फारिस जैसे अज्ञानी देश अभी तक आधुनिक यन्त्रों की शक्ति को प्राप्त नहीं कर सके हैं। इस प्रकार विभिन्न देशों की प्रति व्यक्ति औसत आय भी अत्यन्त विभिन्न है। यह औसत आय निर्धन से निर्धन देशों में ३ पौंड से अधिक से अधिक धनी देशों में ४० पौंड तक है।

राष्ट्रों में इस प्रकार की अर्थिक असमानता सम्राज्यवाद, भौगोलिक स्थिति, अथवा शिक्षाओं संस्कृति के अन्तर के परिणाम स्वरूप हैं, असमानता का परिणाम सदा युद्ध होता है।

राष्ट्रीयवाद राष्ट्रों में इस असमानता को, तो उनके विशेषाधिकारों और सुविधावों की रक्षा युद्ध से करता है, सदा ही स्थायी बनाने का उद्योग करता रहता है। प्रत्येक राष्ट्र के ऊपर यूमी

और पूंजी का निजी स्वामित्व धन और कार्य के वटबारे में न्याय और भाईचारे का उल्लघंन करता है। इंगलैण्ड, बंगाल अवध, जर्मनी तथा देशों के जो जमींदार भूमि के 'मालिक' समझे जाते हैं, वह खेतों को कभी भी न जोतते हैं, न बोते हैं अथवा काटते हैं, वह परिश्रमी किसानों को उनकी उस फसिल में से लगान के रूप में पृथ्वी का किराया देने को विवश करते हैं, जिसमें वह, उसका परिवार, और उसके नौकर अथवा मज़दूर आदि सभी परिश्रम करते हैं। लूटने की इस भद्दी प्रणाली का जन्म भी युद्ध की विजय से ही हुआ है। लूट मार की तलाश में फिरने वाले योद्धा अपनी विजित भूमि में, बैरन अथवा ज़मीदार के रूप में बस गये, और तब से बराबर उन विजित लोगों से लगान ले रहे हैं। इस प्रकार धनीं ज़मीदार वर्ग की उत्पत्ति हुई। कारखानों के मालिक लोग भी अपने मज़दूरों के श्रम द्वारा उत्पन्न किये हुए धन से ही आनन्द उड़ा रहे हैं। थोक फरोश व्यापारी भी समाज से अपने माल का अधिक मूल्य लेकर जनता को ठग रहे हैं। धनी तथा साहूकार लोग कारखाने के मालिकों, सौदागरों तथा अन्य लोगों को रुपया उधार देते और 'सूद' लेते हैं। पुरोहित लोग दान और दक्षिणा पर निर्वाह करते हैं। उच्च सरकारी पदाधिकारी जनता द्वारा दिये हुए करों में से अपना लम्बे चौड़े वेतन लेते हैं; इन करों से ही 'राष्ट्रीय ऋण' कहलाने वाली रक़म का सूद भी दिया जाता है। इस प्रकार लुटेरों का सारे का सारा वर्ग ही मज़दूरों के परिश्रम पर निर्वाह करता

है। इनमें से किसी २ की तो बड़ी भारी आय है। सन् १६२८ में इंगलैण्ड में समाज को असमान आय के आधार पर कई वर्गों में विभक्त किया गया था। औसत राष्ट्रीय आय से अधिक कमाने वाले सब परिवारों को ही इस लुटेरे वर्ग में-सम्मिलित किया जाता है।

१३६ व्यक्तियों की आय १, ००, ००० पौंड से अधिक थी।
२५० ,, ,, ,, ७५, ००० ,, ,, ,, ,,
५२१ ,, ,, ,, ५०, ००० ,, ,, ,, ,,
२, ६७६,, ,, ,, २०, ००० ,, ,, ,, ,,
६, ८०५ व्यक्तियों की आय १०, ००० पौंड से अधिक थी।
२६, ६५८ ,, ,, ,, ५, ००० ,, ,, ,, ,,
१, ०४, ५१४ ,, ,, ,, २, ००० ,, ,, ,, ,,
१४,८७५,०००,, ,, ,, १५६ ,, के लगभग थी।
७,0,00,000 ,, ,, ,, ७६ पौंड से भी कम थी।

सन् १६३१ में जनसंख्या का ६ प्रतिशतक लगान किराये, लाभ और सूद से १, १३, ८0, 00, ००० पौंड वसूल करता था, जब कि ८० प्रतिशतक (मज़दूर) जनता को मज़दूरी में केवल १, ३७, ६0, 00, ००० पौंड ही मिलते थे।

इस प्रकार के अंको से पता चलता है कि हमारी सभ्यता अन्याय और असमानता, डाके बदमाशी, तथा अत्याचार और नैतिक पतन के आधार पर स्थापित है। सभी देशों में कुछ लोग अत्यन्त धनी हैं; उनकी उपमा स्वतन्त्र रूप से लूटने 'वालों,

डाकुओं और मध्ययुग के समुद्री डाकुओं से की जासकती है।
इस प्रकार लार्ड एन—की वार्षिक आय डेढ़ लाख पौंड है; सर आर० एच०—कीआय एक लाख पौंड से भी कुछ अधिक है, सर डी—की उत्तराधि कारिणी के ट्रस्ट में लगभग एक लाख पौंड वार्षिक की आय हैं; लेडी सी—ने अपनी दस नातिनों में से प्रत्येक के लिए पच्चीस सहस्र पौंड छोड़े। फ्रांस में एक लाख † फ्रैंक से अधिक आय वाले ४६४ व्यक्ति हैं।

इन महान् वैभव वाले धनियों की अपेक्षा खेत पर काम करने वाले उन मज़दूरों की ओर देखिये जो इंगलैंड में दो पौंड प्रति सप्ताह से भी कम और भारत में चार पांच आने रोज़ कमाते हैं। इंगलैण्ड में बेरोज़गारों को प्रति सप्ताह तीस शिलिंग से कुछ ही कम मिलता हैं, जब कि भारतवर्ष में बेरोज़गारी के कारण भूख प्यास से तंग होकर आये दिन आत्मघात की ख़बरें समाचार पत्रों द्वारा मिलती रहती हैं। इंगलैण्ड के क्लर्कों तथा शिल्पियों को तीन पौंड प्रति सप्ताह मिलता है, जब कि भारतवर्ष में प्रत्येक यूनीवर्सिटी वाले नगर में बीस २ रुपये महीने में चाहे जितने बी० ए०, एम० ए० और शिल्पी मिल सकते हैं। भारतवर्ष की जूट की मिलों में पूंजीवाद को २०० और ४०० प्रति शतक लाभ बांटा गया था, जब कि सन् १९२६ में मज़दूरों को पूरे वर्ष

---

† फ्रेंक (Franc) फ्राँस के सिक्के का नाम है। यह बेलजियम और स्वीज़लैण्ड में भी चलता है। यह चाँदी का होता है और इंगलैण्ड के दो पेंस के बराबर होता है।

भर की मज़दूरी बारह पौंड, दस शिलिंग अथवा पन्द्रह रुपये मासिक ही मिली थी। यह हिसाब लगाया गया है कि कारखानों मेंकाम करने वाले प्रत्येक तीस लाख मज़दूरों से एकसो पौंड लाभ प्राप्त किया जाता है। मलाया के रबर व्यवसाय की औसत मज़दूरी प्रतिवर्ष २५ पौंड है, जब कि वहां प्रत्येक दास से १०६ पौंड लाभ कमाया जाता है क्रैबी (Crabbe) ने ठीक ही कहा है—

"जब अधिकता मुस्कराती हैं तो खेद! वह थोडोंसों के लिये ही मुस्कराती है
और वह जो नहीं चखनेतो भी उस के भंडार को देखते हैं,
वह सोने की खान को खोदने वाले दास के समान है—
उनके आसपास का धन उनको दुगना निर्धन बना देता है।"

इस लूट का परिणाम यह हुआ कि मजदूर लोग अत्यन्त निर्धन और दरिद्रता में रहते हैं। अनेक उनमें से आधे पेट खाकर रहते हैं और अनेकों को बहुत से पुरुषों से भरी हुई गन्दी गलियों में कष्टपूर्ण जीवन बिताना पड़ता है। यहां पर अत्यन्त 'उन्नत' राष्ट्रों में पूंजीवाद की आधीनता में मज़दूरों की कुछ प्रामाणिक बातों को दिया जाता है—

१. डाक्टर बोलैंण्ड का कहना है, "लन्दन में ६०.८ प्रतिशतक बच्चे ठीक तौर से वस्त्र तथा जूते पहिने हुए हैं, किन्तु उसी के पास बैथनल ग्रीन नामक नगर में कुल २२.५ प्रतिशतक बच्चे ही ठीक तौर से वस्त्र तथा जूते पहिने हुए हैं। इस परिस्थिति

की विषमता का पता इससे लगता है कि इन दोनों ही स्थानों में वस्त्र और जूतों का व्यवसाय बहुत होता है और इन्हीं नगरों में अधिक बेरोज़गारी है।"

२. डेप्टफोर्ड सार्वजनिक स्वास्थ्य कमेटी ने फर्वरी १६३३ में अपनी रिपोर्ट में कहा है, "इस परिणाम को विवश होकर निकालना पड़ता है कि आज अनेक घरों में किराया, उष्णता और वस्त्रों का खर्चा देकर उत्तम स्वास्थ्य योग्य भोजन पाने योग्य खर्चा बहुत कम बचता है।"

३. लन्दन में तीस सहस्र कोठरियां हैं, यह अँधेरी और नम हैं, इनकी तली में कीड़े लगे हुए है। तो भी इनमें एक लाख मनुष्य रहते हैं। ढाई लाख व्यक्ति गन्दी गलियों में रहते हैं, जब कि पाँच लाख—कुल जनसंख्या का आठवां भाग व्यक्ति—एक एक कमरे में दो से अधिक संख्या में रहते हैं।" (लन्दन व्यापारिक कौंसिल के प्रधान के २८ अक्तूबर १६३३ के वक्तव्य से)।

४. इंगलैण्ड के अनेक परिवारों में भोजन के लिये प्रति व्यक्ति प्रति सप्ताह ४ शिलिंग ही मिलता है, जब कि अत्यन्त साधारण भोजन का चिकित्सा सम्बन्धी अनुमान प्रति सप्ताह प्रति व्यक्ति ११ शिलिंग ६ पेंस है।

५. सेंट पैंक्राज में एक मजदूर की आय तीन पौंड प्रति सप्ताह हैं, किन्तु वह एक कमरे का किराया १५ शिलिंग प्रति सप्ताह देता है और उसमें अपनी पत्नी और छः बच्चों के

साथ रहता है।

६. पांटीपूल में एक सतरह वर्ष की लड़की ने अपने कारखाने के मालिक का एक शिलिंग चुरा लिया। मिस्टर हापकिन्स मॉर्गन ने उसके मुकदमे का फैसला देते हुए कहा कि "इतनी कम मज़दूरी को देख कर मुझको लड़की के चोर बन जाने पर कोई आश्चर्य नहीं है।" चर्च नामक ग्राम की सतरह वर्ष की लड़की ईटा ग्रेस हैक्लेटन ने कहा कि "मुझको ६ शिलिंग ८ पेंस प्रति सप्ताह मिलते हैं, जिनमें से तीन शिलिंग प्रति सप्ताह मुझको मोटर के किराये के देने पड़ते हैं।

७. "खेत पर काम करने वालों की झोंपड़ियां दलदल अथवा ऐसे बुरे स्थानों में बनी हुई हैं कि वर्षा की बूंदें भोजन तक को खराब कर देती हैं, अथवा उनमें दो कमरों में ६ से लेकर ६ व्यक्तियों वाले परिवार रहते हैं, खाद के बाड़ों तथा सुवरों के बाड़ों के पास के मकान भी बहुत असुविधाजनक हैं। अनेक स्थानों में तो अपने पालने वाले सेवकों की अपेक्षा पशु भी बड़े सुन्दर मकानों में रहते हैं, घुड़साल कई २ सहस्र पौंड की लागत से बनवाई जाती हैं। उनमें उन पास की झोंपड़ियों से कहीं अधिक प्रकाश, वायु और उष्णता होती हैं, जो कुछ सैकड़ों में ही बन जाती है।"

८. "वैंकोवर (कनाडा) की भूख से पीड़ित लड़कियों ने कनाडा की सरकार को धमकी दी है कि यदि वह उनकी सहायता न करेगी तो वह सब का ध्यान आकर्षित करने के लिये

सड़कों में नङ्गी हो कर जुलूस निकालेंगी......................स्त्रियां भूखों मर रही हैं और उनको पहिनने के लिये भी उक्त वस्त्रों की आवश्यकता है। वह तीन तीन चार चार मिल कर एक साथ एक कमरे में रहतीं, और बाहिर जाने के समय एक दूसरे के वस्त्र माँग कर पहिन जाती हैं।........... वैकोवर में ६०० लड़कियों को तो बेरोजगारी का ऐलाउन्स मिलता है और सैकड़ों को वह भी नहीं मिलता।"

६. "इस प्रकार विचार में न आने योग्य दशा में लोग न जाने जीते भी कैसे हैं। इस प्रकार के दुःख और कष्टों के सम्बन्ध में विचार करने से भी हृदय को चोट लगती है।" यह टिप्पणी मिस्टर ए० डगलस काऊबर्न नामक कोरोनर ने लैम्बेथ की उस छानबीन के सिलसिले में की थी. जिसमें एक स्त्री को ग्यारह पुरुषों के पूरे परिवार को २ पौंड १८ शिलिंग प्रति सप्ताह में ही पालना पड़ता था। वह स्त्री और उसकी कन्या एक धोबी के कारखाने में नौकरी करती थीं। उसके लड़के का नाम वाल्टर हार्वे था। उसकी अवस्था छप्पन वर्ष की थी। उसके दो लड़के दो वर्ष से बेरोजगार थे। उसके छः बच्चे तेरह वर्ष से भी कम अवस्था के थे। मकान का किराया एक पौंड प्रति सप्ताह देने के पश्चात् उसके पास ग्यारह पुरुषों के पालने के लिये कुल २ पौंड १८ शिलिंग ही बचते थे। उस दशा से दुःखी होकर हार्वे ने गैस से आत्माहत्या करने की चेष्टा की। कोरोनर ने उसको पागल बतला कर आत्मघात के अपराध से

बचाया और उक्त निर्णय में उपरोक्त शब्द कहे, हार्वे ने कोरोनर को एक पत्र लिख कर कहा था, "मुझे पागल मत बतलाओ। मैं बिलकुल होश में हूँ मुझे जीवन अब भारस्वरूप हो रहा हैं।"

१०. "एक साधारण मजदूरनी की आयु ६४ वर्ष की थी। वह विधवा और तेरह बच्चों की माता थी। उसकी कुल आय १० शिलिंग ६ पेंस थी और उसको साढ़े आठ शिलिंग मकान का किराया देना पड़ता था। कभी २ एक दो शिलिंग उसको अपने विवाहित बच्चों से भी मिल जाया करता था। किन्तु यह नियमित रूप से नहीं मिलता था। उसको अपनी मालकिन के यहां से एक पौंड चुराने के अपराध में छै माह नेकचलनी का मुचल्का देना पड़ाथा।"

११. "दक्षिणी वेल्स के खान मालिक इस बात से बड़े परेशान थे कि उनकी ग़्लैमोर्गनशाइर और मनमथशाइर की खानों से कोयला चोरी चला जाता था। केवल इन दोनों गाँवों में ही कोयले की चोरी अथवा अनधिकार प्रवेश के लिये गत वर्ष में पांच सहस्र व्यक्तियों का चालान किया गया था, इस बात का अनुमान लगाया गया था कि कोयले की चोरी के कारण ही खान मालिकों को कम से कम तीन लाख पौंड की हानि हुई थी। बेनयन की कोयले की खान बेरोज़गारों को प्रति सप्ताह पांच टन कोयला बेचती थी, किन्तु तो भी प्रति सप्ताह तीन टन कोयला चोरी जाता था।" (चोर कौन थे ?)

१२. एक मज़दूर का कहना है, "मैं एक ऐसे मकान में

रहता हूँ। जिसमें सात कमरों में छै परिवार—कुल ३१ मनुष्य रहते हैं। मेरा परिवार एक तर कमरे में रहता है। हम सात हैं और सब एक कमरे में ही सोते हैं। चूहों के मारे हम अपने बच्चों को भी अकेला नहीं छोड़ सकते। चूहों की खड़खड़ रात भर होती रहती है। उस मकान का भी हमको १४ शिलिंग ८ पेंस प्रति सप्ताह किराया देना पड़ता है (डेली हेरल्ड लंदन।)

पूंजीवाद के दोष

व्यक्तिगत भूमि और पूंजी के कारण सब देशों में केवल अधिक जन संख्या को ही भयङ्कर कष्ट नहीं है, वरन् पूंजी वाद पर ही निम्नलिखित अपराधों का दोष भी लगाया जाना चाहिये—

१. यह विलासिता और उद्योगहीनता के द्वारा धनिकों का नैतिक पतन और अत्यधिक श्रम और अज्ञान के द्वारा निर्धनों को पशु जैसा बना देता है।

२. यह ऐसे दो वर्गों की स्थापना करता है, जिनकी जीवन चर्या इतनी विभिन्न है कि डिसरेली (Disraeli) ने उनको ठीक ही 'दो राष्ट्र' कहा है। एक वर्ग उच्च शिक्षा प्राप्त करता और कोई शारीरिक काम नहीं करता, जब कि दूसरे वर्ग को नाममात्र की ही शिक्षा मिलती और वह अपने हाथों से काम करता है। इस प्रकार मनुष्यजाति के कृत्रिमता से से दो विभाग कर दिये जाते हैं।

३. वर्ग शासन की सम्पुष्टि बल से ही की जा सकती है।

अधिक सुविधा वाले वर्ग को सदा ही निर्धनों के विद्रोह का भय बना रहता है। इस प्रकार पूंजीवाद का सैनिकवाद से अभिन्न सम्बन्ध स्थापित होता हैं। पुलिस और सेना धनिकों की सम्पत्ति की उस भय से रक्षा करती है, जिसकी उनको पीड़ित वर्ग से आशंका रहती है। श्रमिकों को उनके परिश्रम की पूरी उत्पत्ति को नहीं दिया जाता। इसी कारण अपने देश में उत्पत्ति के अनुसार खपत नहीं होती। परिणाम स्वरूप विदेशी बाज़ारों की-शरण लेनी पड़ती है, जहां विभिन्न राष्ट्रीय दल उनकी सब प्रकार से, युद्ध और हत्या तक से प्रतियोगिता करते हैं।

४ वर्ग शासन धर्म कला और साहित्य को बिगाड़ देता है। वर्ग-समाज में प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक पुरुष को धनिकों की ही सेवा और उनका समर्थन करना, अन्यथा मरना पड़ता है। जिस प्रकार रोमन साम्राज्य में सब सड़कें रोम को ही जाती थीं, उसी प्रकार वर्ग-शासन के स्थायित्व के लिये सभी संस्थाओं पर शासन करके उनको अपनी इच्छानुसार चलाया जाता है। सभी धर्मो, सम्प्रदायों, चित्रशालाओं, विश्व विद्यालयों, विद्यासभाओं, विद्यालयों, प्रकाशकों और मुद्रकों को वर्ग शासन की प्रशंसा करनी, उसको न्यायपूर्ण बतलाना तथा जनता को यह शिक्षा देनी पड़ती है कि उनका कर्तव्य सुविधा देते जाना और और आज्ञा मानना है। व्यक्तियों, सभाओं और संस्थाओं की 'स्वतन्त्रता 'एक नजरबन्दी का खेद जनक दृश्य हो जाती है। यह दृश्य समृद्ध और बुद्धिमान् पूंजीवाद के कुछ अस्थायी कार्यो

से उत्पन्न किया जाता है। किन्तु विषम परिस्थिति होने पर जब वर्ग शासन के जीवन और मरण का प्रश्न आता है तो पूंजी पति लोग सदा यही घोषणा करते हैं, "जो हमारा पक्ष नहीं लेता हमारा शत्रु है।" सभी उत्पादक वर्ग का प्रथम और सब से बड़ा कर्तव्य सम्पति और सुविधाओं की रक्षा करना है। उनका जीवन उन भूमि और रुपये में है, जो उनको आमोद प्रमाद और विलास सामग्री देता है। वह अपने धन को अपने बच्चों को देना अपना कर्तव्य समझते हैं। सम्पति से वह अत्यन्त अधिक भावुकता से निर्बाध प्रेम करते हैं। उनके लिये सब से प्रथम स्थान सम्पति का और दूसरा स्थान फिर किसी अन्य वस्तु का है। निश्चय से ही वह 'ईश्वर' ईसा मसीह, बुद्ध, सत्य, कला, नैतिकता, धर्म, और दर्शन शास्त्र से प्रेम करते हैं, किन्तु सम्पति से वह उनमें से किसी वस्तु से भी अधिक प्रेम करते हैं। वह बहुदेवता वाद, एकेश्वर वाद, अद्वैतवाद अथवा नास्तिक-वाद सभी से प्रेम करते हैं, किन्तु सम्पत्ति से वह इन से भी अधिक प्रेम करते हैं। वह बाईबिल, कुरआन, त्रिपिटक, अथवा वेद से प्रेम करते हैं, किन्तु सम्पति से वह इन से भी अधिक प्रेम करते हैं। वह कैथौलिक चर्च, प्रोटेस्टैंट चर्च, ग्रीक चर्च, इस्लाम, बौद्ध धर्म जैन धर्म, हिन्दू धर्म अथवा ईसाई विज्ञान से प्रेम करते हैं, किन्तु सम्पत्ति से वह उससे भी अधिक प्रेम करते हैं। वह अपने देश इंगलैण्ड फ्रांस, जापान अथवा भारतवर्ष से अच्छे देशभक्तों के समान

प्रेम करते हैं, किन्तु सम्पत्ति से वह उससे भी अधिक प्रेम करते हैं। वह सत्य, गुण और सौन्दर्य से प्रेम करते हैं किन्तु सम्पत्ति से उससे भी अधिक प्रेम करते हैं। जिस प्रकार किसी किले के ऊपर झण्डा सभी दीवारों और मकानों से ऊँचा होता और दूर से दिखलाई देता है, इसी प्रकार उनका सम्पत्ति-प्रेम आत्मा के समान तथा अन्य सब भावों से भी गहरा होता है। वह उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव तक सभी देशों के पूंजीपतियों के विचारों और कार्यों में रमा रहता है। किसी भी ईश्वर अथवा पैग़म्बर, साधु अथवा महात्मा के लिये वह अपनी सम्पत्ति, वर्ग सुविधाओं, अपने शासन वर्ग के रूप में उच्च स्थान का बलिदान नहीं करेंगे। वह धर्म, कला, दर्शनशास्त्र, साहित्य और नैतिकता को स्वीकार करके उसकी उन्नति करने को तभी तयार होते हैं जब यह वर्ग शासन की निन्दा और उसकी अवमाजना न करें। जो सत्य अथवा सिद्धान्त, धर्म अथवा शुभ सन्देश, चिरस्थायी वर्गशासन की न्यायता और योग्यता में सन्देह करे उसका वह कभी समर्थन नहीं करते। और वह कर भी कैसे सकते हैं? वर्ग शासन उनका प्रथम और अत्यन्त महत्वपूर्ण सत्य सिद्धान्त है। वही उनका शुभ सन्देश और पवित्र धर्म है। वही उनकी पूर्ण नैतिकता और दर्शनशास्त्र है। वही उनका उद्देश्य, धर्म, पवित्र कर्तव्य, स्वर्ग और ईश्वर है। इसी प्रकार वर्ग शासन की विरोधी सभी सामाजिक संस्थाओं को नष्ट करने का उसी प्रकार उद्योग करते हैं, जैसे एक स्वतन्त्र और बिना शासन वाली

संस्था सदा ही भय का कारण बनी रहती है। जब तक वर्ग-शासन का अस्तित्व है आप धर्म अथवा सम्प्रदाय, दार्शनिक अथवा कला के सिद्धान्त, विज्ञान अथवा साहित्य सभा की स्थापना नहीं कर सकते। क्योंकि वह वर्ग-शासन और वर्ग-अधिकार के सत्यानाशी प्रभाव से सदा युक्त रहेंगे। जिस समय कोई नई संस्था शक्ति और ख्याति प्राप्त कर लेती है, वर्ग-शासक किसी नेता को घूस देते, दूसरों को उकसाते, आर्थिक सहायता का निमन्त्रण देते, सहानुभूति प्रकट करते, डाइरेक्टरों को मनोनीत करते और संस्थाओं का निरीक्षण आदि करते हैं। अनेक चालाकियों और धमकियों से वह प्रत्येक नये आन्दोलन अथवा संस्था को अपनी प्रणाली से उसी प्रकार सम्बन्धित कर लेते हैं, जिस प्रकार सभी ग्रह अपनी कक्षा पर सूर्य की परिक्रमा देते हैं। ईसाइयत निर्धनों के स्वतन्त्र सम्प्रदाय के रूप में आरम्भ हुई थी किन्तु इंगलैण्ड के 'गिर्जाघरों के पादरियों की नियुक्ति धनी ज़मींदार लोग और इंगलैण्ड के चर्च के नियमों को न मानने वाले नानकनफर्मिस्ट (Nonconfirmist) सम्प्रदाय के पादरियों की नियुक्ति समृद्ध व्यापारी करते हैं। इस्लाम भाईचारे और समानता की शिक्षा देता और ख़लीफा के निर्वाचन में सब को स्वतन्त्रता देता था, किन्तु अफ्रीका और एशिया में इमाम और मुल्ला लोग देशी और विदेशी स्वेच्छाचारियों की चापलूसी तथा सेवा करते हैं। ऐबेलार्ड (Abelard) के समय में विश्वविद्यालय निर्धन छात्रों के लिये निःशुल्क थे, किन्तु आज वह

उच्च तथा मध्यम दुर्गों के बौद्धिक दुर्ग हैं। रोमन कैथोलिक चर्च अपनी सिद्धान्त सम्बन्धी स्वतन्त्रता की बहुत शेख़ी मारा करता है, किन्तु वह प्रत्येक शासक-वर्ग—जमींदार के बदले सैनिक सेवा करने वाले बैरनों, स्वेच्छाचारी सम्राटों, प्रजातन्त्र संस्थाओं और फासिस्ट सरकारों सभी—के सामने झुकता रहा। जिस प्रकार जल, दूध, पारा और सभी तरल पदार्थ उस बर्तन के आकार के हो जाते हैं, जिसमें वह रखे होते हैं, उसी प्रकार सभी धार्मिक शिक्षा सम्बन्धी और सामाजिक संस्थाओं को भी या तो अपने को शासकवर्ग के स्वार्थ और उनकी आवश्यकताओं के अनुसार बनाना पड़ता अथवा अपने जीवन के लिये युद्ध करना पड़ता है। या तो उनको असमानता के औचित्य की शिक्षा देकर उसका प्रचार करना चाहिये अथवा पूंजीवाद को साहसपूर्वक ललकार कर उससे अन्त तक युद्ध करना चाहिये। समानता सभी जगह शासकवर्ग का हव्वा और लूलू है। उनसे हत्या, बलात्कार, मरी, युद्ध, ईश्वरनिन्दा अथवा आत्मघात की बात कर लो, किन्तु समानता के विषय में उनके कान में कोई शब्द मत डालो। उनकी दृष्टि में समानता का सन्देश सब से बड़ा अपराध और अक्षम्य पाप है, वह नास्तिकता और स्वतन्त्रता वाद को सहन कर सकते हैं, किन्तु समाजवाद (सोशिएलिज्म) को कभी—कभी भी सहन नहीं कर सकते। केवल समाजवाद ही इस वर्ग-शासन के मार्ग का कांटा है अतएव वर्ग-समाज में इसका सदा के लिये बहिष्कार करके इसको जब्त किया गया है।

सभी लेखकों, प्रचारकों वैज्ञानिकों, कलाकारों, और प्रोफ़ेसर को धन के लिये पूंजीपतियों पर निर्भर रहना पड़ता है अतएव वह सदा ही उनकी आज्ञा का पालन किया करते हैं। यदि उनमें से कुछ को मजदूर लोग पैसे से अपनी ओर मिला भी लेते हैं तो शीघ्र अथवा देर से उनको भी या तो पूंजीवाद के सामने सिर झुकाने अथवा उसके परिणाम को भोगने को तयार होना पड़ेगा। आज विज्ञान, कला, साहित्य और धर्म में कोई स्वतन्त्रता नहीं है; धन सभी को घूस देकर मोल लेता है और अपनी ओर मिला लेता है, क्योंकि धन केवल शासक वर्ग के पास ही अधिक परिमाण में होता है। धन उन सब को अपने आधीन कर के दास बना लेता है। धन, कला और धर्म को नष्ट कर देता है और अनेक शवों के ऊपर अभिमानपूर्वक नृत्य करता हैं। धन सब कुछ है और सब जगह शासन करता है। यह वर्ग शासन का अभिशाप है।

५. वर्ग-शासन से वर्ग-युद्ध और पाशविक झगड़े होते हैं।

इतिहास वर्ग विप्लवों और वर्ग प्रतिशोध में बहे हुए रक्त से लाल हुआ पड़ा है। स्पार्टैक्स[1] की अध्यक्षता में विप्लव

---

1 स्पोर्टैक्स (Spartacus) का जन्म थ्रेस (यूनान) में हुआ था। रोमनों ने उसको दास बना लिया था, बाद में वह बडा प्रसिद्ध वीर हुआ। ईसा पूर्व सन् ७३ में उसने इटली में एक दास विद्रोह का नेतृत्व किया। उसकी अध्यक्षता मे दासों ने अनेक रोमन सेनाओं को तहस नहस कर दिया। किन्तु सन् ७१ ईसा पूर्व में उसको क्रैसस (Crassus) ने

करने वाले दासों ने अनेक बर्बरतापूर्ण कार्य किये, किन्तु उस विप्लव को शान्त करने वाले रोमन अधिकारियों ने उससे भी अधिक बर्बरतापूर्ण कार्य किये। मध्ययुग में सिर उठाने वाले किसानों को बड़े २ भयंकर दिन देखने पड़े जिसके लिये दोनों ही पक्ष उत्तरदायी थे। इंगलैण्ड में सन् १८३१ में हुए गांव के झगड़ों को अत्यन्त निर्दयता से दबाया गया दास अवश्य ही अपने दमनशील स्वामियों के साथ निर्दयता का व्यवहार करते थे, किन्तु उन स्वामियों ने उन पराजित दासों के साथ उनसे भी कहीं अधिक भयानक निर्दयता की। फ्रांस की फैशनेबिल महिलाओं तथा भद्र पुरुषों ने सन् १८७१ में पराजित कम्यून के समर्थकों२ पर ऐसे २ अत्याचार किये कि उनको पढ़ कर रोंगटा खड़ा हो जाता है। उनसे पता चलता है कि जब किसी पूंजीपति को धन की हानि उठानी पड़ती है तो उससे अधिक निर्दय और रक्त का प्यासा कोई जङ्गली पशु भी नहीं हो सकता। संयुक्तराज्य अमरीका में हड़ताल वाले मजदूरों पर प्रायः पुलिस तथा पूंजीपतियों के नौकरों द्वारा गोली चलाई जाती है। स्काटलैण्ड के धनिकों ने मृगों का उपवन बनाने के लिये उस स्थान की जनता को जबर्दस्ती निकाल दिया था।

पराजित करके जान से मार डाला;

२ फ्रांस मे म्युनिसिपैलिटी को कम्यून कहते हैं। कम्यून स्थापित करने का अधिकार वहाँ की जनता को पूंजीपतियों के साथ अनेक युद्ध करने के पश्चत् मिला है।

आगस्टे कोम्टे ने पूंजीवादियों को 'सदाचारी' बनाने के विषय में कहा हैं। किन्तु यह उद्योग बङ्गाल के चीतों और साइबेरिया के भेडियों को 'सदाचारी' बनाने के जैसा है। वह सदाचारी अवश्य बन सकते हैं, किन्तु केवल पशुशाला में ही।

पूंजीपतियो की धन तृष्णा को शान्त नहीं किया जा सकता। कोई धर्म अथवा दर्शनशास्त्र उनके इस रोगको एक या दो प्रतिशतक से अधिक अच्छा नहीं कर सकता। इनके अतिरिक्त शेष पूंजीपति तो निरे गन्दे है। वह निर्धन विधवाओं और बेरोजगार मज़दूरों से गन्दे २ स्थानों के किराये को बड़ी कठोरता से वसूल करते हैं। वह बीमे की रक़म लेने के लिये अयोग्य जहाजों को—मल्लाहों को मृत्यु के मुख में डाल कर—समुद्र में भेज सकते हैं। वह चाकोलेट में बालू को मिला सकते हैं। वह बकाया किराये के लिये निर्धन परिवारों को मकान से निकाल देते हैं। वह लगान न देने वाले किसानों की फ़सिल और मवेशियों को नीलाम करा सकते हैं। वह धन के वास्ते लाखों मजदूरों को बड़े २ कष्ट देकर मृत्यु के मुख में डाल सकते हैं। जैसा कि कांगों (Congo) और पुटुमायो (Putumayo) प्रदेश में किया जाता था। वह राष्ट्रीय युद्ध के अवसर पर भी अपनी ही राष्ट्रीय सरकार कों सूद पर रुपया उधार देने की निर्लज्जता कर सकते हैं; वह यह कभी नहीं सोचते कि जब दूसरे लोग राष्ट्र के लिये अपने प्राण दे रहे हैं तो हम अपना धन ही क्यो न दे दें। फिर उनको राष्ट्रीय बजट में से एक

बड़ी भारी रकम प्रतिवर्ष देनी पड़ती है। वह ऐसे 'देशभक्त' होते हैं, इस वर्ग के आचरण अथवा विचारों को कोई नहीं बदल सकता। यह मनोवैज्ञानिक असम्भावना है।

६. पूंजीवाद मनुष्य की बुद्धि तथा प्रतिभा को बहुत कुछ नष्ट करके सभ्यता के प्रसार में बाधा पहुँचाता है। इस समय कला तथा विज्ञानों की उच्च कोटि की शिक्षा के लिये धन ही पासपोर्ट (Passport) है, योग्यता अथवा रुचि नहीं। अनेक मूर्ख लोग धनी होने के कारण आक्सफोर्ड (Oxford) और हारवर्ड (Harward) में जा सकते हैं, जब कि सहस्रों चतुर और बुद्धिमान लड़के निर्धन होने के कारण उन अवसरों से लाभ नहीं उठा पाते। अनेक होनहार नवयुवक सड़कों में मारे २ फिरते हैं और अनेक वैज्ञानिकों को बज़ाज की दूकान पर नौकरी करनी पड़ती है। कुछ पूंजीपति सरकारों ने मजदूरों के उन बुद्धिमान् बच्चों के लिये छात्रवृत्ति का प्रबन्ध भी किया हुआ है, जो कालेज में शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। यह देखा गया है कि उनमें से अनेकों ने विभिन्न विद्याओं में अनेक प्रकार से विशेषता प्राप्त की है। भाषाविज्ञान के प्रसिद्ध विद्वान् प्रोफेसर राइट (Wright)। प्रोफेसर मसरीक (Masaryk), लीनो (Linnaeus), वी० रीडबर्ग (V. Rydberg) तथा अन्य अनेक विद्वान् बहुत छोटे २ घरों में पले थे। किन्तु उनके अतिरिक्त अन्य कितने विद्वान् और वैज्ञानिक न बन सके ? और कितने व्यक्ति उस अज्ञान युगमें निराशा और अज्ञान में ही मर गये,

जब छात्रवृतियां नहीं दी जाती थीं। प्रकृति अनेक उत्तम मस्तिष्कों को उत्पन्न करती है, किन्तु पूंजीवाद उनमें से थोड़े से ही काम लेकर उनका उपयोग कर सकता है। अतएव वह आत्मिक और बौद्धिक उन्नति न होने देने का दोषी है।

७. पूंजीवाद समाज की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति कभी भी नहीं कर सकता, न वह सार्वजनिक बेकारी को ही दूर कर सकता है। प्रत्येक अस्वाभाविक और समाज विरोधी प्रजाल को आपति में अन्त हो जाना चाहिये।

जमीदार लोग मनुष्यजाति को अकाल में डाल चुके हैं। पूजीपतियों को भी यही करना चाहिये। मनुष्यजाति को कष्ट से ही शिक्षा मिलती है। भूख प्रकृति की चेतावनी है। हम को भूखे न रहकर उसको बुझाना चाहिये। संयुक्त रज्य को एक कुमार महाद्वीप कहा जाता है, वहां बिना स्वामी वाली बहुत भूमि पड़ी हुई है। वहाँ भूमि और मजदूरी दोनो के पर्याप्त होंने से पर्याप्त रोटी मिल सकती है। किन्तु पूंजीवाद ने प्रकृति के उस स्वर्ग को भी बेरोजगारों को भूखा रखने का कैम्प बना डाला है। सन १६३३ में वहां १ करोड़ ४० लाख मज़दूर बेकार थे। दूसरे देशों में भी पूंजीवाद लाखों नागरिकों को काम सिर नही लगा सकता। पूंजीवाद नपुन्सक और दिवालिया है। इसका कारण है कि इसमें केवल लाभ के लिये ही उत्पत्ति पर अधिकार किया जाता है। इस वैज्ञानिक युग में अनेक मनुष्यों के काम को यन्त्र ही करने लगे है। जिससे पूँजीपति लोग बिना अधिक

मनुष्यों को ठगे भी उतना लाभ प्राप्त कर सकते है । काम के घण्टे घटाने के बजाय; जैसा कि सोशिएलिस्ट समाज में किया जावेगा, पूंजीपति लोग 'आवश्यकता से अधिक मजदूरों' को नौकरी से जवाब देते रहते है, क्योंकि व्यक्तिगत स्वामित्व वाले कारखाने में उन के लिये स्थान नहीं है। मजदूरों की थोड़ी सी मजदूरी उनके जीवन की आवश्यक तथा आराम की वस्तुओं को मोल लेने के लिये पर्याप्त नहीं होती, अतएव खपत कम होती है और उसका परिणाम उत्पत्ति को भुगतना पड़ता है । यह प्रणाली असम्भव और अपने को ही मूर्ख बनाने वाली है । यह ग़लती करने वाली मनुष्य जाति को सीधे भयङ्कर दण्ड-अकाल-की ओर ले जाती है। यह विचार करने की बात है कि जिस कनाडा और संयुक्त राज्य अमरीका में लाखो एकड़ भूमि बिना जुती पड़ी हुई है, वहां लाखों मनुष्य बेकार क्यों है। किन्तु आज भूमि भी व्यक्तिगत सम्पत्ति है। आपके पास किसी कम्पनी से उस भूमि को मोल लेने के लिये—जिसने उसके ऊपर एकाधिकार को स्थापित कर लिया है—कई सौ डालरों का होना आवश्यक है। बैंकों के व्यक्तिगत अधिकार में चले जाने से जनता धनी वर्ग की दया पर आश्रित है, और राष्ट्रीय मुद्रानीति लोभी सूदख़ोरों और उनके अपने ऋणियों के हाथ में है, समाज इस समय उस मूर्ख के समान है जिसको अपने शत्रुओं की आज्ञा बिना अपने हाथ पैरों से काम न लेने को राज़ी होना पड़ता है। गत दशाब्दी की आर्थिक दशा से पूंजीवादी प्रणाली के सभी हाथों में होने

कीं निरुयोगिता और हानि भली प्रकार प्रमाणित हो चुकी हैं। हम ब्रैजिल में कहवे के नष्ट होने और इंगलैण्ड के समुद्रतटवर्ती नगरों में मछलियों और सन्तरों के नष्ट होने के विषय में सुनते हैं। विशेषज्ञों का प्रस्ताव है कि बुभुक्षित संसार में गेहूं की फसिल को कम कर दिया जावे, जिस से गेहूं का भाव फिर चढ़ जावे। मूल्य, मुद्रा नीति, मज़दूरी, और लाभ के विषय में इस सारी बाज़ीगरी का कुछ परिणाम न होगा। साम्पत्तिक दासता अयोग्य, अर्थशास्त्र के विरुद्ध अपूर्ण सिद्ध होने के कारण ही बंद कर दी गई, उसी प्रकार मजदूरी की दासता भी पूंजीवाद के अन्याय और अपूर्णता पर आश्रित होने के कारण बन्द हो जावेगी। मनुष्यजाति लाखों भूखे पेट वालों के शब्दों में कहेगी, "बस, अब इस अत्याचार तथा मूर्ख बनाने के कार्य को बन्द करो। पूंजीवाद विश्वजनींन तूफान में नष्ट हो गया। अब सोशिएलिज्म के ऊपर आचरण करके उसकी आजमाइश करनी है। हमको समस्त संसार के लिए एक पंच वर्षीय योजना बना लेनी चाहिये, इस योजना को मज़दूरी के दासों के स्थान में स्वतन्त्र और समान सहयोगी कार्य रूप में परिणत करेंगे।"

समाजवादी कार्यक्रम बँटवारे का सिद्धाँत

बंटवारे का वास्तविक सिद्धांत समानता और भाईचारा है। 'समानता' का अभिप्राय बर्नर्ड शा के मतानुसार अकं गणित सम्बन्धी तथा यंत्रीय समानता नहीं है। बर्नर्ड शा 'समान आय' का उपदेश देता है। किन्तु सामाजिक 'समानता' का अभिप्राय

यह नहीं है। जो जितना ही सुखी और पूर्ण जीवन व्यतीत करने योग्य है उसको उतना ही और पूर्ण जीवन मिले। इस सर्वोच्च आदर्श के अनुसार व्यक्तित्व को उन्नत करने का सब को समान अवसर मिलना ही सामाजिक 'समानता' है। परिवार में इसी नियम का अनुसरण किया जाता है; प्रत्येक बच्चे को उसकी आवश्यकता के अनुसार भोजन, वस्त्र और शिक्षा मिलती है। उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति को वह सब सामग्री और सेवाएं मिलनी चाहियें। जिनकी उसको पूर्ण उन्नति के लिये आवश्यकता है। यदि उसकी संगीत में रुचि है तो उसको बेला अथवा हारमोनियम आदि मिलना चाहिये। यदि उसकी रुचि कविता में हैं तो उसको उत्तम २ काव्य ग्रन्थ मिलने चाहिये। इत्यादि।

इस उच्च कोटि के कार्य को पूर्ण करने के लिये निम्नलिखित शर्तों को पूर्ण करना चाहिये।

(क) श्रमिकों की आचरण तथा बुद्धि सम्बन्धी उन्नति करनी चाहिये। उनको गम्भीर, उत्साही और न्यायप्रिय बनने की शिक्षा देनी चाहिये। क्यों कि केवल एक न्यायप्रिय व्यक्ति ही न्याय से प्रेम कर सकता है। बर्टैण्ड रसेल ने कहा है कि समाजवाद का मूल्य ईर्ष्या में है। यह व्यर्थ का कलंक है। किन्तु यह निश्चय है कि श्रमिकों के अपने उच्च कार्य को करने योग्य बनने से पूर्व उनके सब से अच्छे भाग में स्वतन्त्र मनुष्य और स्वतन्त्र सहयोगी की भावना भर देनी चाहिये। लैसेल (Lassale) ने कहा है, "दासों के दोषों को दूर करो।" सच्चे ससाजवादी

(सोशिएलिस्ट) को नीच और कमीने आमोद प्रमोद, जुए, मद्य-पान, और घूंसे बाजी आदि से बचना चाहिये।

अर्थशास्त्र, राजनीति, इतिहास, और समाजविज्ञान की योग्य शिक्षा से समाजवाद के भावी नेताओं को तयार करना चाहिये। इस समय श्रमिक वर्ग में आर्थिक अन्तर्दृष्टि तथा राजनीतिक बुद्धि का एक दम अभाव है। धोखे बाज, नया काम करने वाले, देशभक्त और पुरोहित लोग उनको सरलता से मार्गभ्रष्ट कर देते हैं। आजकल के समय के अनुसार हुड (Hood) का निम्न-लिखित उपहास बिल्कुल सत्य है।

"मनुष्य जाति के इतिहास को आरम्भ से टटोलने पर,
सब से पहिले भोले मनुष्यों का पता लगता है, हमारी दण्ड
की आज्ञा उसके गुप्त आशय को प्रगट करती है,
मनुष्य जाति के एक विशेष भाग की
ठगे जाने के लिये निश्चय से ही एक विशेष रुचि होती है।
फिर चाहे वह गउवो कों घास की खूंटियों पर चराना हो,
अथवा समुद्र के बालू की रस्सी बनाना हो,
चाहे छोटे बिगड़े हुए पत्थर से फ्रांस की ईंटें और सुन्दर
रोटी बनाना हो,
अथवा समस्त आकाशीय मार्ग को गैस से प्रकाश करना हो—
अथवा केवल बुलबुले छोड़ने के उद्देश्य से उसमें फूके
मारना हो,
और परमात्मा ! फिर कई सौ मनुष्य साबुन मोल लेंगे !"

(ख) समाजवादी नेताओं को दर्शनशास्त्र और आचारशास्त्र की शिक्षा अवश्य देनी चाहिये, जिससे वह घूस न लें और पूंजीवाद की मीठी बातो में न आवे। वर्तमान लोभी, महत्वाकांक्षी, और कायर नेताओं से, समाजवाद सहयोगी प्रजातन्त्र में पैर नहीं धर सकेगा और उसको ध्यान करने के कैम्पों में जाना पड़ेगा।

(ग) सैनिकवाद के विरुद्ध अत्यन्त प्रबल आन्दोलन करना चाहिये, जिससे श्रमिक वर्ग युद्ध में न मरे। शान्ति और उन्नति साथ २ ही होती है। समाजवाद, केवल शान्ति की उपजाऊ भूमि में ही उग सकता है।

(घ) एक सार्वजनिक अन्तराष्ट्रीय भाषा के आधार पर एक अन्तराष्ट्रीय नियम की स्थापना की जानी चाहिये। ढीली गिरह में बंधे हुए राष्ट्रीय दल युद्ध अथवा फासिस्ट वाद के निवारण के लिये सहयोग नहीं कर सकते, न वह एक होकर काम करने की नीति का ही पालन कर सकते हैं।

(ङ) सभी श्रमिकों को वर्तमान समाजवाद के प्रताप और और ओजपूर्ण इतिहास की शिक्षा देनी चाहिये। भूतकालीन बड़े समाजवादियों के जीवनचरित्रों, कार्यों, उपदेशों और कष्टों पर विशेष बल देना चाहिये। तब नवयुवकों को पता लगेगा कि वह किस उद्देश्य के लिये काम कर रहे हैं, और नेताओं को किस प्रकार जीवन व्यतीत करना और शिक्षा देनी चाहिये। अनेक श्रमिकों का विश्वास है कि समाजवाद की स्थापना किसी सुन्दर

रविवार को मध्यान्होत्तर काल में वेस्टमिनिस्टर में एक प्रकार के बड़े भारी भोज के द्वारा की जावेगी । इतिहास उनको सत्य की शिक्षा देगा। हमको मार्क्सवाद के अर्थशास्त्र को ही नहीं पढ़ना चाहिये। वरन् मार्क्स और उसकी पत्नी के बलिदान और सरलता को भी अध्ययन करना चाहिये । हमको सिद्धान्तिक तथा व्यवहारिक दोनों ही प्रकार के मार्क्सवाद का अध्ययन करना चाहिये।

(च) अच्छे से अच्छे समाजवादी नेताओं को पूंजीवादी कौंसिलों और पार्लियामेंटों में जाना चाहिये । इन संस्थाओं में द्वितीय श्रेणी के प्रतिनिधियों को भेजा जा सकता है । प्रधान नेताओं को शत्रु कैम्पों में जाकर वहां के अनैतिक वायुमण्डल में अपनी सुगन्धि और बुद्धि को नष्ट नहीं करना चाहिये। अतएव अपने प्रधान लेखकों, वक्ताओं, और संस्थाओं को पूंजीवाद के जादूभरे बगीचों से प्रथक् ही रखो, अन्यथा वह मोह और आत्म संतोष में पड़ कर खिचें चले जावेंगे। उच्च कोटि के समाजवाद (सोशिएलिस्ट) नेता को पार्लियामेंट भवन अथवा कौंसिल हाल के एक मील के भीतर २ नहीं जाना चाहिये। यदि आवश्यक हो तो वह वहां अपने सहायकों को भेज सकता है।

पूंजीवाद इस समय रोग के कारण मरणासन्न हो रहा है, किन्तु वह तब तक नहीं मरेगा, जब तक कोई योग्य डाक्टर उसके मृत्यु प्रमाण पत्र पर हस्ताक्षर करके उसको कफ़न में लपेट कर दफ़न नहीं करेगा। आपको उसको मरने में सहायता देनी

चाहिये। उपरोक्त निर्देश के अनुसार कार्य किये जाओ, और यह शीघ्र ही पतझड़ की सूखी पत्तियों के समान सूख कर गिर पड़ेगा, और मर जावेगा।

"यह समुद्रतट पर खड़े लाश के समान
निर्जीव हो जावेगा।"

पंचम अध्याय

राजनीति

संसार का राजनीतिक संगठन इन चार सिद्धान्तों के आधार पर होगा—

जनतन्त्र शासन प्रणाली, स्वतन्त्रता, समानता और भाईचारा

१ जनतन्त्र शासन प्रणाली

जनतन्त्र शासनप्रणाली की स्थापना उस समय होती है, जिस समय राज्य के कार्यों में सभी बालिग स्त्री और पुरुष भाग लेते, अपनी वोटों से सभी प्रश्नों और समस्याओं को तय करते और इस प्रकार अब्राहम लिंकन के इस आदर्श "जनता के द्वारा, जनता के लिये जनता की सरकार" को चरितार्थ करते हैं।

जिस प्रकार सभी नागरिक काम करते और सम्पत्ति का उपार्जन करते हैं, उसी प्रकार शासन में सभी को भाग लेना

चाहिये, शासन की रक्षा के लिये सभी को यत्न करना चाहिये, सभी को ठीक २ शिक्षा दी जानी चाहिये और वह सार्वजनिक विषयों पर वादविवाद कर सकें। कानूनों की पाबन्दी सब के लिये एक सी हो। दुराचरण, अधिक करभार और दमन को सब रोक सकें। आर्थिक समृद्धि और जीवन तथा स्वतन्त्रता की रक्षा का सभी उपभोग कर सकें। उत्तम सरकार से सभी को लाभ हो और कुशासन तथा अन्याय का कष्ट सभी सहें। सब के विषय की बात का निर्णय सभी करें। जनतन्त्र शासन प्रणाली नागरिकों को सभी गुणों की शिक्षा देती है। बुद्धि, स्वतन्त्रता, आत्म-सम्मान, सहनशीलता, सार्वजनिक भावना और राजनीतिक निर्णय की शिक्षा का यह सब से उत्तम स्कूल है। यह जनता की बुद्धि को विकसित करती और उनमें उसी प्रकार सम्मिलित राज्य के लिये बड़े २ बलिदान करने की भावना भरती है जिस प्रकार उनका शासन तथा प्रबन्ध में भाग होता है। भाषण स्वातन्त्र्य और कानून तथा संस्थाओं को ठीक २ समझने के कारण यह शासनप्रणाली राजद्रोह और गड़बड़ी को रोकती है। यह मानसिक चैतन्यता, दयालुता, नम्रता, निस्वार्थता और वीरतापूर्ण आत्म-त्याग के बहुमूल्य गुणों को विकसित करती है। उत्तम सरकार की सच्ची पहचान जनसंख्या तथा सम्पत्ति वृद्धि नहीं है वरन् आचरण और व्यक्तित्व का निर्माण है। सर्वोच्च प्रकार के स्त्री और पुरुषों को उत्पन्न करने वाली सरकार ही सर्वोत्तम सरकार है। आचरण सम्बन्धी परीक्षा करने पर जनतन्त्र शासन

प्रणाली सभी शासन प्रणालियों से अधिक उत्तम सिद्ध होती है। जनतन्त्र शासनप्रणाली उच्चतम गुणों और बुद्धि, वास्तविक दर्शन-शास्त्र और धर्म, स्वतन्त्र और उन्नतिशील मानवता की माता है। उसके बिना मनुष्य जाति बिना अच्छा होने की आशा के पस्त हो कर नष्ट हो जावे, जनतन्त्र शासनप्रणाली चिरञ्जीवी हो!

जनतन्त्र शासनप्रणाली की आवश्यकता बहिष्कार की रेखा-गणित प्रणाली से सिद्ध की जा सकती है। यदि सभी बालिग़ नागरिक वोट न दें और शासन न करें तो क्या हो? क्या एक व्यक्ति को सर्वोच्च अधिकार दे दिया जावेगा? और यह पद भविष्य में निर्वाचन से भरा जावेगा अथवा वंश परम्परा से अथवा क्या कुछ थोड़े से नागरिक ही एक कौंसिल बना कर स्वयं ही नियम बनावें और स्वयं ही शासन करें। यदि राज्य जन-तन्त्र शासनप्रणाली नहीं तो वह या तो राजतन्त्र अथवा अल्प सत्तात्मक शासनप्रणाली होगा।

यदि राजतन्त्र निर्वाचन प्रथा वाला होगा तो यह प्रश्न किया जा सकता है, "शासक का निर्वाचन थोड़े से नागरिक मिल कर करेंगे अथवा उसके लिये सब वोट देंगे?" आरम्भिक मुसल-मानी शासनप्रणाली की ख़लीफात निर्वाचनात्मक शासन प्रणाली थी, जिसमें सभी का मत लिया जाता था। पवित्र रोमन सम्राज्य का प्रधान भी निर्वाचित किया जाता था. किन्तु उसको कुछ थोड़े से प्रमुख व्यक्ति ही निर्वाचित[१] करते थे। यदि समस्त

१ देखो हमारा ग्रन्थ हिटलर महान् पृष्ठ ७ और ८।

जनता शासक का निर्वाचन करे तो वह एक प्रकार का जनतन्त्र शासनप्रणाली का डिक्टेटर होगा; किन्तु यदि उसका निर्वाचन कुछ थोड़े से व्यक्ति ही करें तो इस अल्प सत्तात्मक शासन प्रणाली की समस्या को सुलझाना पड़ेगा ।

नियमित राजतन्त्र प्रणाली

निर्वाचित साम्राज्यवाद कभी २ ही पाया जाता है, अतः इसके ऊपर विस्तार से वादविवाद करने की आवश्यकता नहीं है। यदि लोग एक डिक्टेटर को निर्वाचित कर सकते हैं तो वह उसको रोकने, उस पर शासन करने और उसको हटाने योग्य क्यों नहीं होते ? वह प्रत्येक प्रश्न का निर्णय परिस्थिति के अनुसार क्यों नहीं करते ? इस समय संसार को वंश परम्परा-गत साम्राज्यवाद से कष्ट पहुँच रहा है। यह दो प्रकार का होता है—नियमित और स्वेच्छाचारी। नियमित राजतन्त्र शासन-प्रणाली में बादशाह के शासन सम्बन्धी लगभग सभी अधिकार छीन लिये जाते हैं। यह संस्था राजनीतिक होने की अपेक्षा हास्यजनक अधिक होती है। उस राज्य के उपाधिधारी प्रधान को 'बादशाह' की उपाधि अवश्य होती है, किन्तु उसके कर्तव्य प्रायः सामाजिक होते हैं। उसका राजमुकुट और राजदण्ड भड़कीले खिलौने होते हैं। राज्य-शासन में वह हस्तक्षेप नहीं कर सकता, तो भी उसको अनेक दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करने पड़ते हैं। वह सदा ही काम में लगा रहता है और तिस पर भी कुछ काम नहीं करता। वह बाज़ारों तथा शिशु प्रदर्शिनियों को खोलता है,

प्रदर्शिनियों और भोजों में जाता है, और अदालत तथा स्वागत कार्य करता है। वह मोटरकार पर एक सुन्दर चिन्ह के समान आकर्षक पद वाला प्रधान यात्री ही होता है। नियमित राजतन्त्र की यह संस्था मध्ययुग की स्मारक है, जिसको कुछ पुरातनपन्थी राष्ट्र अभी तक सहन किये जाते हैं। इसको ऐतिहासिक धूमधाम का एक भाग समझा जाता है। किन्तु वह जिस प्रकार दूध का धोया जैसा दिखलाई देता है, उतना हानि रहित नहीं होता। इस पद में भड़काने वाली मच्छर के जैसी तेज बुद्धि होती है। स्वेच्छाचारिता का नाग घायल हो गया हैं, मरा नहीं। अधिक से अधिक 'नियमित' सम्राट की भी अपनी कचहरी होती हैं और कचहरी सदा ही रोग संक्रामण का केन्द्र होती हैं, जिस प्रकार तालाब में पत्थर के फेंकने से हल्की २ लहरें चारों ओर को फैलती हैं, उसी प्रकार राजसी कचहरी से ही नीचता और दासता का प्रसार होता है। उसकी घृणा योग्य गन्ध से ही राज्य के प्रत्येक भाग में जनतन्त्र शासन की भावना रोगी हो जाती हैं। राजा अथवा बादशाह के पुत्र, पुत्रियां, भतीजे और भतीजियां भीं होते हैं; यह राजसी सन्तान ही वह छोटे २ परमाणु होते हैं, जिनके चारों ओर समाजिक नीचता अपने सब से अधिक हास्यजनक और नीच रूप में सुगमता से जम सकती है। जब यह घोषणा की गई कि बादशाह बेतार के तार पर बोलेगा तो एक अत्यन्त राजभक्त प्रजाजन ने उसके भाषण को घुटनों के बल बैठ कर सुना। एक बादशाह ने किसी दूसरे देश की यात्रा

करने की तयारी की और वह जहाज़ धनी लोगों से भर गया। यह धनी लोग बादशाह के समीप ही केवल कुछ दिनों श्वास लेने और खाने का 'सम्मान' प्राप्त करने के लिये यात्रा कर रहे थे। इसके अतिरिक्त, नियमित राजतन्त्र सदा ही अत्यन्त भयङ्कर होता है। किसी समय यह भी हो सकता है कि बादशाह ओछा और मूर्ख न होकर एक उद्योगी और प्रबल-सम्मति वाला राजनीतिज्ञ हो। इस प्रकार का सम्राट् कार्य करने का कुछ अधिक क्षेत्र चाहेगा। वह वास्तविक शक्ति और अधिकार को फिर पाने की चेष्टा करेगा, जिससे जनतन्त्र शासन प्रणाली पर बड़ी भारी आपत्ति आ जावेगी जनतन्त्र शासन प्रणाली में स्वेच्छाचारिता का कोई भी भाग बचा हुआ न रहे।

हमारे साधारण शब्द ही साम्राज्य के सभी रूपों को नैतिकता विरोधी होने के स्पष्ट साक्षी हैं। नाम मात्र में 'बादशाह' वाले भी किसी देश के निवासी उस बादशाह की 'प्रजा' कहे जाते हैं; किन्तु जनतन्त्र शासन वाले राज्य के निवासी 'नागरिक' कहे जाते हैं। वह अपने राष्ट्रपति की 'प्रजा' नहीं कहे जाते। राजतन्त्र के सिक्कों और स्टाम्पों पर सदा ही 'बादशाह' का सुन्दर अथवा भद्दा चेहरा बना होता है, किन्तु जनतन्त्र शासन की टकसाल प्राय: उस देश के महान् स्त्री और पुरुषों की स्मृति की रक्षा करती है। इस प्रकार राजा के अधिकार के बिल्कुल नगण्य हो जाने पर भी राजतन्त्र वाले देश के वातावरण की अपेक्षा कहीं अधिक पतनशील होता है! इसी कारण जन शासन प्रणाली

पंचायती राज्य चाहती है। उसकी राजतन्त्र, नियमित, अर्द्ध नियमित अथवा अनियमित से कोई तुलना नहीं की जा सकती।

यदि राजतन्त्र अनियमित और बिना विधान का हो, तब तो वह समाज के लिये बड़ा कठोर अभिशाप होता है। इस प्रकार की स्वेच्छाचरिता ने मनुष्यजाति को सदा ही अन्धकार में रखा है। खेद है कि इसका अस्तित्व एशिया, अफ्रीका तथा इन महाद्वीपों में अभीतक है, जहां राजनीतिक जागृति नहीं हुई है। एशिया और अफ्रीका के राजा, महाराजा, अमीर और सुल्तान बिल्कुल स्वेच्छाचारी निरंकुश शासक होते हैं। उनकी प्रजा एक मनुष्य के शासन के अधिक से अधिक कटु फलों का आस्वादन करती रहती है। यूनानी रोमन पंचायती राज्यवादियों ने व्यक्तिगत शासन की निन्दा करके उसको सदा के लिये तिलांजली दे दी थी। हेरोडोटस ने उनके निर्णय का सारांश इस ज़ोरदार और भयंकर वाक्य में निकाला है, "साम्राज्यवाद को जिसमें एक व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार शासन करने दिया जाता है अच्छे विधान वालीं सरकार किस प्रकार कहा जा सकता है? यदि ऐसा स्थान सब से अच्छे मनुष्यों को भी दिया जावे, तो उनके विचार भी बदल जावेंगे। मिलने वाले सुविधाओं के कारण उनमें उद्दण्डता आ जावेगी और ईर्ष्या तो उनमें जन्म से ही उत्पन्न हो जाती है। इन दो दोषों के कारण उनमें सभी दोष उत्पन्न हो जाते हैं। उद्दण्डता के कारण वह अनेक धर्मविरुद्ध कार्य करते हैं। ईर्ष्या के कारण भी वह अनेक अशुभ कार्य

करते हैं। ....वह स्त्रियों का सतीत्व बिगाड़ते और पुरुषों को बिना मुकदमे के दण्ड दे देते हैं।

स्वेच्छाचरिता की उत्पत्ति सैनिकवाद से होती है। क्यों कि सेना का संचालन तथा अनुशासन एक सेनापति द्वारा ही होता है, जिनकी आज्ञा को अफ़सर और सैनिक सभी बिना चूंचरा के मानते हैं। होमर ऐगामेमनन के मुख से साम्राज्यवाद की इस प्रकार प्रशंसा करता है—

"बन्धुओं शान्त बैठे रहो ....क्योंकि आप युद्ध के लिये अयोग्य और निर्बल हो।.........इस स्थान पर हम सब यूनानी शासन नहीं कर सकते, क्यों कि अनेक का शासन अच्छा नहीं होता। केवल एक सरदार, एक राजा बनालो।" किन्तु यूनान और रोम दोनों ही स्थानों में प्रधान और साधारण जन स्वेच्छा-चारियो के अशुभ कार्यों से इतनी अधिक घृणा करते थे। कि वहां अनेक शताब्दियों तक व्यक्तिगत शासन की स्थापना को विश्व पीड़ा का कारण समझा जाता रहा। अन्य देशों का इति-हास भी यूनानियों और रोमनों की भावना का समर्थन करता है उनके मृतक स्वेच्छाचरियों के नाम ही स्वेच्छाचरिता पूर्ण शासन के विरुद्ध पर्याप्त युक्ति हैं। उनके नाम से ही ऐसे आंतक और रक्तपात का स्मरण हो जाता हैं, कि हमारे मन में दया और घृणा का संचार होजाता है। स्वेच्छाचरिता की कई २ बार परीक्षा की गई किन्तु वह सदा ही त्रुटिपूर्ण प्रमाणित होता रहा। इसके परिणाम स्वरूप हिप्पारकस (Hipparchus) फैलेरिस,

टाइबेरियस, नीरो, कैलिगुला (Caligula), मैक्सेनटियस, मैक्सिमाइनस, रूस का इवान (Ivan), मुतवक्किल, हज्जाज, औरंगजेब, मुहम्मद तुग़लक, इंगलैण्ड का जान (John), सीज़र, बोर्जिया तथा अन्य अनेक स्वेच्छाचारी शासक लोभ, निर्दयता, कामवासना, और अहंकार के वास्तविक अवतार हुए हैं। स्वेच्छाचारिता शासक और उसके बेधड़क सैनिकों को अत्यन्त अहंकारी और उसकी प्रजा को चापलूस और कायर दास बना देती है। ईस्वी सोलहवीं शताब्दी के डोनैटो जिया नोटी नामक फ्लोरेंस के इतिहासज्ञ ने इटली के पुनर्जाग्रति (Renaissance) काल के राजनीतिक अनुभव का सारांश निकालते हुए घोषणा की थी कि स्वेच्छाचारी शासकों की प्रजा "पशुओं से भी गई बीती थी। वह इतनी नीच और कमीनी हो गई थी कि उसको यह भी पता नहीं था कि संसार में सो अथवा जाग रही थी।"

यदि राजतन्त्र वंशपराम्परा गत होता है, तो शासक में औसत बुद्धि का भी अभाव होता है। उस अवस्था में यदि वह गुणी और निःस्वार्थी भी हो तो उसके निर्णय पर निर्भर रहना आपत्ति शून्य नहीं होता। यदि वह स्वार्थी इन्द्रियलोलुप होता है जैसा कि उसके चारों ओर की परिस्थिति उसको बना देती है तो उसकी पूर्णशक्ति जनता, उनकी सम्पत्ति, उनके सम्मान, उनकी महिलाओं उनके जीवन और उनकी स्वतन्त्रता के विरुद्ध भयंकर शस्त्र बनी रहती है। इस प्रकार का बदमाश शासक नहीं

वरन् राजसिंहासन पर एक चीता अथवा राजमुकुट धारण किये हुए एक भेड़िया कहा जाता है ।

यदि स्वेच्छाचारी शासक गुणी भी हो और बुद्धिमान् भी तो वह एक दयालु प्रधान पुरुष होता है, और उसका शासन कुछ बातों में अच्छा होता है । ऐसे शासक इतिहास में बहुत प्रसिद्ध हैं । रामचन्द्र चन्द्रगुप्त, अशोक, विक्रमादित्य, पीसीसट्रैटस (Peisistratus), उमर द्वितीय, कोरडोवा (स्पेन) का हाकिम, मार्कस औरिलियस, सेंट लुई, तथा ऐसे अन्य अनेक शासकों का नाम अत्यन्त सम्मान के साथ लिया जाता हैं । किन्तु कुछ गुणी शासकों के कारण उस शासन प्रणाली की प्रशंसा नहीं की जा सकती, जिसके कारण सभी युगों और सभी देशों में असंख्य कष्टों, दोषों और अत्याचारों को भोगना पड़ा । बोसुएट (Bossuet), हाबिल्स, टुर्गोट और हेगल के मिथ्या हेतु उस अनियमित अधिकार के अपराधों और मूर्खताओं की उत्तम व्याख्या नहीं कर सकते । स्वेच्छाचारिता के कड़वे फल ही सैवोनैरोला (Savonarola), ऐल्जरनन सिडनी, मिल्टन, हैरिंगटन, रूसो, पेन (Paine), बेनथम, मैज़िनी और गमबेटा के पंचायती राज्य के सिद्धाँतों के औचित्य को सिद्ध करते हैं । इसके अतिरिक्त अधिक से अधिक दयालु स्वेच्छाचारिता भी जनता को नागरिकता की शिक्षा नहीं देती, अतएव उसकी जनतंत्र शासन प्रणाली से तो किसी प्रकार भी तुलना नहीं की जा सकती निर्वाचित डिक्टेटर भी—यदि उसकी नीति पर नागरिकों द्वारा

ठीक २ ठीक व्याख्या करके विस्तार पूर्वक वाद विवाद नहीं किया जाता—तो बड़ी २ भयङ्कर गलती कर जाता है। सब से अच्छे और सब से अधिक बुद्धिमान नेता का भो भेड़ चाल के समान अन्धानुसरण करना बुद्धिमानी नहीं है। कोई एक मनुष्य कितना ही चतुर होने पर भी सदा ही ठीक नहीं होता। नेता के प्रस्तावों के ऊपर सभा में समालोचना होकर उसी प्रकार निर्णय किया जाना चाहिये, जिस प्रकार ऐथेन्सवासियों ने पेरीक्लिस को प्रस्तावित योजना पर सम्मति दी थी। उन्होंने प्रायः उसका समर्थन ही किया, किन्तु उनकी स्वीकृति से यह प्रगट हो गया कि साधारण जनता उसके निर्णय को पसन्द करती थी। यदि किसी अत्यन्त प्रतिभाशाली व्यक्ति को बिना आरंभिक वादविवाद के कार्य करने की पूर्ण स्वतन्त्रता दे भी दी जावे तो कभी २ अभिमान, महत्वाकाँक्षा, ग़लत सूचना पाये हुए सम्मति दाताओं, अत्यधिक आशावाद, अथवा सत्यानाशी स्वभाव वैचित्र्य के कारण वह भी गलती कर सकता है। जनतन्त्र शासन प्रणाली के नागरिकों के लिये सुरक्षित नियम यही है कि वह अपने ही प्रतिभाशाली मार्ग पर चलें किन्तु अपने नेत्रों को सदा ही खुला रखें। अत्यन्त प्रतिभाशाली व्यक्ति भी तारों को देखते समय अपने सामने की खाई को नहीं देख पाता। साधारण बुद्धि बड़े भारी नेता की अनोखी दृष्टि और कल्पना में भी आवश्यक सुधार कर देती है। अकेला व्यक्ति साधारण बुद्धि की त्रुटि के कारण ग़लती कर सकता है। जो एक व्यक्ति सब का नेतृत्व करे, उसको भी सबके

वरन् राजसिंहासन पर एक चीता अथवा राजमुकुट धारण किये हुए एक भेड़िया कहा जाता है।

यदि स्वेच्छाचारी शासक गुणी भी हो और बुद्धिमान् भी तो वह एक दयालु प्रधान पुरुष होता है, और उसका शासन कुछ बातों में अच्छा होता है। ऐसे शासक इतिहास में बहुत प्रसिद्ध हैं। रामचन्द्र चन्द्रगुप्त, अशोक, विक्रमादित्य, पीसीसट्रैटस (Peisistratus), उमर द्वितीय, कोरडोवा (स्पेन) का हाकिम, मार्कस औरिलियस, सेंट लुई, तथा ऐसे अन्य अनेक शासकों का नाम अत्यन्त सम्मान के साथ लिया जाता हैं। किन्तु कुछ गुणी शासकों के कारण उस शासन प्रणाली की प्रशंसा नहीं की जा सकती, जिसके कारण सभी युगों और सभी देशों में असंख्य कष्टों, दोषों और अत्याचारों को भोगना पड़ा। बोसुएट (Bossuet), हाबिल्स, टुर्गोट और हेगल के मिथ्या हेतु उस अनियमित अधिकार के अपराधों और मूर्खताओं की उत्तम व्याख्या नहीं कर सकते। स्वेच्छाचारिता के कड़वे फल ही सैवोनैरोला (Savonarola), ऐल्जरनन सिडनी, मिल्टन, हैरिंगटन, रूसो, पेन (Paine), बेनथम, मैज़िनी और गमबेटा के पंचायती राज्य के सिद्धाँतों के औचित्य को सिद्ध करते हैं। इसके अतिरिक्त अधिक से अधिक दयालु स्वेच्छाचारिता भी जनता को नागरिकता की शिक्षा नहीं देती, अतएव उसकी जनतंत्र शासन प्रणाली से तो किसी प्रकार भी तुलना नहीं की जा सकती निर्वाचित डिक्टेटर भी—यदि उसकी नीति पर नागरिकों द्वारा

ठीक २ ठीक व्याख्या करके विस्तार पूर्वक वाद विवाद नहीं किया जाता—तो बड़ी २ भयङ्कर गलती कर जाता है । सब से अच्छे और सब से अधिक बुद्धिमान नेता का भी भेड़ चाल के समान अन्धानुसरण करना बुद्धिमानी नहीं है। कोई एक मनुष्य कितना ही चतुर होने पर भी सदा ही ठीक नहीं होता। नेता के प्रस्तावों के ऊपर सभा में समालोचना होकर उसी प्रकार निर्णय किया जाना चाहिये, जिस प्रकार ऐथेन्सवासियों ने पेरीक्लिस को प्रस्तावित योजना पर सम्मति दी थी। उन्होंने प्रायः उसका समर्थन ही किया, किन्तु उनकी स्वीकृति से यह प्रगट हो गया कि साधारण जनता उसके निर्णय को पसन्द करती थी। यदि किसी अत्यन्त प्रतिभाशाली व्यक्ति को बिना आरंभिक वादविवाद के कार्य करने की पूर्ण स्वतन्त्रता दे भी दी जावे तो कभी २ अभिमान, महत्वाकाँक्षा, ग़लत सूचना पाये हुए सम्मति दाताओं, अत्यधिक आशावाद, अथवा सत्यानाशी स्वभाव वैचित्रय के कारण वह भी गलती कर सकता है। जनतन्त्र शासन प्रणाली के नागरिकों के लिये सुरक्षित नियम यही है कि वह अपने ही प्रतिभाशाली मार्ग पर चलें किन्तु अपने नेत्रों को सदा ही खुला रखें। अत्यन्त प्रतिभाशाली व्यक्ति भी तारों को देखते समय अपने सामने की खाई को नहीं देख पाता । साधारण बुद्धि बड़े भारी नेता की अनोखी दृष्टि और कल्पना में भी आवश्यक सुधार कर देती है। अकेला व्यक्ति साधारण बुद्धि की त्रुटि के कारण ग़लती कर सकता है। जो एक व्यक्ति सब का नेतृत्व करे, उसको भी सबके

नेतृत्व में चलना चाहिये। विशेषरूप से जिस समय वह सम्मिलित रूप से किसी विषय पर एक सम्मति प्रकाशित करें तब तो अवश्य ही सिर झुका देना चाहिये । यदि चार्ल्स बारहवां और नेपोलियन पर साधारण नागरिकों की सभा का शासन होता तो स्वेडन और फ्रांस का सत्यानाश न होता । कैसर का व्यक्तिगत शासन सन् १९१४-१८ तक के महायुद्ध में सिर के बल जा कूदा, जिससे जर्मनी नष्ट हो गया। छोटे से क्षेत्र में भी केशव चन्द्रसेन के स्वाधीन ढंग से ब्रह्मो समाज का नैतिक पतन हुआ उसमें फूट पड़ गई। जनता के समूह में सदा ही एक प्रकार की प्रतिषेधात्मक बुद्धि हुआ करती है, जो राज्य की अनेक आपत्तियों से रक्षा करती है। अधिक संख्या में सुरक्षा ही है । जनतन्त्र सम्मति से एक नेता का निर्वाचन करना ही पर्याप्त नहीं है; किन्तु प्रत्येक व्यवहारिक बात पर विचार करना, उसकी समालोचना करना, और सम्पुष्टि करना नितान्त आवश्यक है। विश्वराज्य के नागरिकों की जनतन्त्र शासन प्रणाली दैनिक प्रकृति बन जानी चाहिये। उनका बुद्धिमत्ता पूर्ण निर्णय ही राज्यशासन की नीति का सब से बड़ा बल है।

अल्पसत्तात्मक शासन प्रणाली

इस प्रकार हमको पता चलता है कि वंशपरम्परागत सम्राट् एक दुर्भाग्य होता है और एक निर्वाचित डिक्टेटर भी भूल न करने योग्य मार्ग प्रदर्शक नहीं होता। जन्म धन अथवा बुद्धि के कारण अल्प सत्तात्मक शासन प्रणाली भी ऐसी संस्था नहीं होती

जिसकी रक्षा में कुछ कहा जा सके। यदि सम्पत्ति और धन को समाज में अयोग्य रूप से बाँट दिया जावे तो अल्प सत्तात्मक शासन प्रणाली समाज में केवल दो वर्गों के अस्तित्व को ही प्रगट करेगी। इसमें भी वर्ग-शासन की सभी निर्दयता और लोभी नीति होती हैं, यूनानी और रोमन नागरिकों ने सुविधा प्राप्त अल्प सत्तात्मक शासन प्रणाली वाले होने के कारण ही अपने दासों को निर्दयतापूर्वक लूटा। ऐरिस्टोफेन के मधुर संगीत में हमको अपने कानों को लौरियम (Laurium) की खानों में काम करने वाले दासों के कष्टकर शब्दों के लिये बहिरा नहीं बना लेना चाहिये। वेनिस के सैनिक सेवा देने वाले ज़मींदार और शासक भी जनता को दासता में जकड़े रखते थे। इंगलैण्ड की अल्पसत्तात्मक शासन प्रणाली ने—जिसका पतन सन् १८३२ में हुआ—केवल जमींदारों के लाभ के ही कानून बनाये थे। सन् १८३०-१८४८ तक की फ्रांस की अल्पसत्तात्मक शासनप्रणाली भी उच्चकोटि के धनिकों का ही प्रतिनिधित्व करती थी। प्रत्येक अल्पसत्तात्मक शासन प्रणाली अपने स्वार्थ को ही देखतीं है। स्वेच्छाचारी शासक कभी २ दयालु हो सकता है, किन्तु अल्प-सत्तात्मक शासन प्रणाली सदा ही बुरी से बुरी होती है। बुद्धिमान् अल्पसंख्यकों की राजभक्ति भी सदा जातियों की स्थापना हो करती है वह सदा ही अपने को धनी बनाने का उद्योग करती तथा भारतवर्ष के ब्राह्मणों के समान अपनी सुविधाओं की अपनी शक्तिभर सभी साधनों से रक्षा करती है। इसके कारण

भी घृणा, ईर्ष्या और अशान्ति फैलती है। हेरोडोटस अपने यूनानियों सम्बन्धी अनुभव का इस प्रकार वर्णन करता है, "अल्पसत्तात्मक शासन प्रणाली में यदि अनेक व्यक्ति जनता के हित करने का उद्योग करते हैं तो उनमें कुछ व्यक्तिगत प्रबल शत्रु भी उत्पन्न हो जाते हैं—जिनसे राजद्रोह की उत्पत्ति होती है, इस राजद्रोह से हत्याएं होती हैं।" अंग्रेजी बैरन लोग गुलाब के फूलों के युद्धों में (Wars of the Roses) बिल्लियों के समान एक दूसरे से लड़े थे। पोलैण्ड के रईस लोग कभी भी शान्ति से नहीं रह सकते थे, उन्होंने पोलैण्ड को नष्ट करके ही छोड़ा। फ्लोरेन्स के इतिहास में भी प्रधान परिवारों के रक्त-रञ्जित कार्य कम नहीं हैं। इस प्रकार इतिहास अल्पसत्तात्मक शासन प्रणाली को सब से बुरी शासन प्रणाली बतलाता है। इस प्रकार हम परम्परागत अथवा निर्वाचित राजतन्त्र और अल्पतन्त्र शासन दोनों को ही दूर करना चाहते हैं। अतएव इनके पश्चात् अब जनता का शासन—जनतन्त्र शासन प्रणाली ही बचती है।

पार्लियामेण्ट प्रणाली के दोष

विश्वराज्य में जनतन्त्र शासन प्रणाली सीधी होगी, प्रतिनिधि सत्तात्मक नहीं होगी। एक नागरिक प्रतिनिधि के द्वारा भोजन नहीं करता, जल नहीं पीता, विवाह नहीं करता और न मरता है; अतएव वह प्रतिनिधि द्वारा क्यों कानून बनाए अथवा नीति को निश्चित करे? जनता आरम्भिक योजना और जनमत द्वारा

प्रत्येक विषय पर स्वयं ही वादविवाद करके निर्णय करेगी। वह उस प्रकार पार्लमेण्टों और कौंसिलों के द्वारा कार्य नहीं करेगी, जैसा करने के लिये उसको आज कल विवश किया जाता है। पार्लियामेण्ट एक व्यर्थ की बुराई हैं। पार्लियामेण्ट सम्बन्धी जनतन्त्र शासनप्रणाली बिलकुल ही जनतन्त्र शासन-प्रणाली नहीं है; यह वास्तव में अल्पसत्तात्मक शासन प्रणाली है, जिसका आधार धोखा है। नागरिकों को सदा ही सब बातों पर उसी प्रकार वोट देनी चाहिये, जिस प्रकार वह आजकल निर्वाचन में किसी उम्मेदवार के लिये वोट देते हैं। यदि वह निर्वाचन में विभिन्न उम्मेदवारों की नीति के गुण और दोषों को जांच सकें तो वह निश्चय से या तो उस नीति का स्वीकार करलें अथवा उसको मानने से इंकार कर दें। पार्लियामेण्ट मकड़ी के बड़े २ जाले होती हैं, जिनमें उद्योगी और बुद्धिमान नागरिकों को पकड और घोटा जाता है। वह तो केवल 'वार्तालाप करने के यन्त्र' हैं। उन पर चालाक और वाग्मी वकील लोग शासन करते हैं, जो मिल्टन के शब्दों में सदा ही

"स्पष्टतया बुरे दिखलाई देने वाले के लिये भी
पक्के से पक्के वक्ताओं का
मुकाबला करने और उनको तंग करने के लिये अच्छी युक्तियां
दे सकते हैं।"

पार्लियामेण्ट अब क्षय होने वाले पूंजीवाद की मोरीबन्द संस्थाएं हैं। वह मध्य वर्गीय साहसपूर्ण कार्य करने वालों की

शरण हैं। उन्होंने साधारण बुद्धिवाले नागरिकों की पूजा के लिये उसी प्रकार 'एम० पी०', 'डेपुटी' आदि टीन के नये देवताओं की सृष्टि कर डाली, जिस प्रकार ईसाई सम्प्रदाय ने चालाक पुरोहितों और पादरियों की सृष्टि की थी। वह कपट, प्रबन्ध, दुराचार नीचता और चापलूसी के बाग की उस क्यारी के समान होती है, जिसको गोबर आदि डाल कर उष्ण किया जाता है। उन्होंने नीतिज्ञान-रहित पेशेवर राजनीतिज्ञों के दल को बना डाला। यह भयंकर कीड़े जनतन्त्र शासन प्रणाली के राजनीतिक शरीर में घुन की तरह लगे हुए हैं। यह पार्लियामेण्ट मुद्दत से लुढ़कते आने वाले राजनीतिज्ञों, नोक झोक करने वाले और संकुचित दलों, महत्वाकांक्षी उन्नति करने वालों और बदमाशों से भरी होती हैं, जिनको जनता को उसी प्रकार उठाकर ले चलना पड़ता है जिस प्रकार सिन्दबाद को समुद्र के वृद्ध पुरुष को उठाकर लेजाना पड़ता था। पार्लियामेण्टें कभी भी जनता का प्रतिनिधित्व नही कर सकतीं। वह उनके पक्ष को ठीक उपस्थित न करके उनको धोखा देती हैं। प्रोफेसर एच० जे० लस्की ने, जो राजनीतिक विद्या में प्रमाणिक समझे जाते और जो पार्लियामेंटों को बन्द करना नही चाहते. उनके प्रतिनिधियों के विषय में इस प्रकार के निन्दात्मक शब्द कहे हैं, "सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि आज कल की व्यवस्थापिक सभाओं ने नई २ व्यवस्थाएें देने के अपने रूप को त्याग दिया है। विषम परिस्थिति में वह केवल कार्यकारिणी की इच्छा पर ही मुहर लगा दिया

करती है।.........दल प्रणाली ने एक दल को बहुमत प्राप्त न होने से, नीति सम्बन्धी राजनीति के स्थान में युद्धाभ्यास की राज नीति को स्थान दिया है।.........निश्चय से ही उन सभाओं में रेल्वे कम्पनियों, बैंकों, बीमा कम्पनियों और बड़ी २ व्यापारिक संस्थाओं के प्रतिनिधि हैं। .... निर्वाचक के मन में यह भाव घर कर गया है कि राजनितिक संस्थाओं से उसका वास्तविक सम्बन्ध नहीं है।.........मन्त्री लोग तथा व्यक्तिगत सदस्यों को भी जनता के आन्दोलनों का कुछ पता नहीं होता, उनके पास उन आन्दोलनों का पता लगाने के साधन भी बहुत ही कम हैं।" पार्लियामेंटों के बड़े भारी समर्थक एम० जे० बान भी स्वीकार करते हैं कि, "कुछ देशों में पार्लियामेंट प्रणाली निसंदेह अस्थायी रूप से ऊसर है, कुछ अन्य देशों में, यह प्रणाली बड़ी भारी कठिनाई से काम करती है।" आजकल की पार्लियामेंटें ऐसी होती है। जान डेवे (John Dewey) ने ठीक ही निष्कर्ण निकाला है कि जनतन्त्र सभा की "एक अपनी निराली और स्पष्ट निश्चित सम्मति होनी चाहिये।" किन्तु यह बात बड़ी विचित्र है कि वह यह अनुभव नहीं कर सका कि प्रतिनिधिसत्तात्मक राजनीतिक जनतन्त्र सभा उस 'द्वित्ववाद' को बन्द नहीं कर सकती, जिसकी वह निन्दा करता है। केवल प्रत्यक्ष जनतन्त्र शासन ही जनता का प्रभावपूर्ण ढङ्ग से प्रतिनिधित्व कर सकता है।

साधारण जनता को अब क्रोध में खड़े होकर कह देना

चाहिये, "इन फेरी करने वाले बाजीगरों से, जो हम को धोखा देने और मूर्ख बनाने के लिये बड़े २ वेतन लेते हैं, बचे रहो। वह हमको अपनी इच्छानुसार क्यों चलावें? ४ करोड़ ८० लाख जनता के लिये ६१५ भाड़े के वक्ता कानून क्यों बनावें? हमारी बुद्धि के मन्दिर को चोरों की गुफा बनाने वाले इन राजनीतिक पुरोहितों और बिचवइयों को किसने नियत किया? अब इस सर्कस को सदा के लिये बन्द कर देना चाहिये। भविष्य में अपने लिये हम स्वयं नियम बना कर अपने घर का प्रबन्ध स्वयं ही करेंगे।"

यह कल्पना मत करो कि पार्लियामेंटें इन पूंजीपति राज्यों में ही असफल हुई हैं, और वह सहयोगी शासन वाले विश्व-राज्य में सफल हो जावेंगी। उस जनतन्त्र शासन में तो इनकी आवश्यकता और भी न पड़ेगी। वह शासन तो उन विरोधी दलों के अभिशाप से शुद्ध होगा, जो जनता को मूर्ख बनाने के उद्देश्य से परस्पर विरोधी आर्थिक स्वार्थों से वर्गों तथा दलों द्वारा बनाए जाते हैं। जान डेवे संयुक्त राज्य के दलों के विषय में कहता है, "अनेक वर्षों से राजनीतिक उदासीनता ने हमारे दिलों में घर कर लिया है। इस का मूल कारण यह मानसिक गड़बड़ी हैं कि हम राजनीतिक और अपने दैनिक जीवन के कार्यों में कोई महत्वपूर्ण सम्बन्ध नहीं समझते। पार्टियां हमारी इस मानसिक गड़बड़ और तथ्यहीनता को पुष्ट करने में सदा यत्नशील रहती हैं।.....वर्तमान राजनीतिक रंग मंच दलों, और समस्याओं

की निरर्थकता को सिद्ध करना केवल अपने शब्दों का ही अपव्यय करना है।" आजकल के दलों का आधार उद्देश्य और सम्मत्ति न होकर धन और चालाकी भरे मिथ्या बचन होते हैं। वह किसी विशेष वर्ग के आर्थिक स्वार्थ की रक्षा करते-किन्तु बहाना राज्य की सेवा करने का करते हैं। ब्रिटेन के जमींदारों का प्रतिनिधित्व अनुदार अथवा कंज़र्वेटिव दल (Couservatines), निर्माताओं और उद्योगी धन्दों वालों का उदार अथवा लिबरल दल तथा श्रमिकों का प्रतिनिधित्व मज़दूरदल करता है। नार्वे में सन् १९३३ के निर्वाचन में अठारह दलों ने मुकाबला किया था; इस प्रकार पार्लियामेंटें जनता को विभाजित करती हैं।

प्रत्यक्ष जन मत

विश्वराज्य इस प्रकार के विरोधी और सोने के लिये झगड़ने वाले कैम्पों में विभक्त नहीं होगा। आर्थिक समानता ऐसे दलों को बन्द कर देगी। उस समय पार्लियामेंटें कोई उपयोगी काम कर सकेंगी। सभी नागरिक दैनिक पत्रों को पढ़ा करेंगे, बेतार के तार पर व्याख्यानों को सुना करेंगे, सार्वजनिक सभाओं में जाया करेंगे, और प्रस्तावित प्रत्येक विषय के पक्ष या विपक्ष में अपनी सम्मति दिया करेंगे। यह 'जनता की सम्मति' वेस्टमिनिस्टर की वर्तमान कृत्रिम और नकली 'ग्रह विभागों' वाली सभा के स्थान पर नाम करेगी। प्रत्यक्ष जनतन्त्र शासन का विचार एक दम नया नहीं है। जर्मन लोग इस विचार से पूर्णतया परिचित थे, जिनके विषय में टैसीटस (Tacitus)

ने अपने ग्रन्थ 'जर्मनिया' (Germania) में लिखा है, "कम महत्वपूर्ण विषयों पर मुख्य व्यक्ति विचार कर लेते थे, किन्तु अधिक महत्वपूर्ण विषयों पर सारी की सारी ही जाति विचार करती थी। ......वह किसी विशेष कारण को छोड़ कर कुछ निश्चित अवसरों पर एकत्रित हुआ करते थे। .... जिस समय अनूकूल होता था, वह शस्त्र धारण करके भी बैठते थे।... यदि कोई बात पसन्द नहीं की जाती थी तो जनता उसको ज़ोर ज़ोर से बड़बड़ा कर अस्वीकार कर देती थी, यदि वह उसको पसन्द करते थे तो वह अपने भाले एक दूसरे के भालों में मारते थे।" यूनान के सभी नागरिक जन मत में भाग लिया करते थे। आधुनिक समय में भी यह प्रणाली स्वीज़लैण्ड और संयुक्तराज्य में विशेष कर उसके सुदूर पश्चिम के राज्य ओरेगन (Oregon) में प्रचलित है। स्वीज़लैण्ड में पूंजी एकत्रित करने के प्रस्ताव को सन् १९२२ में १,०९,६,८६, के विरुद्ध ७,३५,८९४ वोटों से अस्वीकार कर दिया गया था । अक्टूबर १९३३ में जेनेवा के निर्वाचक मण्डल ने सड़कों के प्रदर्शन पर प्रतिबन्ध वाले उस कानून को नापास कर दिया था, जिसे वहां की ग्रैण्ड कौंसिल ने स्वीकार कर लिया था। जनता को भविष्य में भी इस प्रकार कार्य करने और नियम बनाने से कौन रोकता है ? मानटेस्कू (Montesquieu), वाल्टेयर और रूसों का विश्वास था कि जनतन्त्र शासन पद्धति केवल छोटे राज्यों में ही सफल हो सकती है; किन्तु नवीन वैज्ञानिक आविष्कारों ने हम सब को ही निकटवर्ती

पड़ौसी बना लिया है। आज कल के महाद्वीप सभी व्यवहारिक उद्देश्यों के लिये म्यूनिसिपैलिटियों के समान ही बन गये हैं। पार्लियामेंटों की निन्दा की जाती है। किन्तु बर्नर्डशा की इस शिक्षा को नहीं माना जा सकता कि एक अच्छे 'डिक्टेटर' की भी आवश्यकता है। यदि आप डिक्टेटरी पर वापिस नहीं आना चाहते तो आपको जन-मत की ओर बढ़ कर आना चाहिये। पार्लियामेंट के द्वारा शासन केवल स्वयं स्वीकार की हुई दासता है। केवल स्थायी और विश्वव्यापी जनमत ही प्रत्येक नागरिक को स्वतन्त्र वोटर और स्वतन्त्र मनुष्य बना सकता है।

बहुमत प्रणाली

विश्वराज्य के नागरिक सभी प्रश्नों को सर्वसम्मति से तय करेंगे, बहुसम्मति से नहीं। सभी प्रस्ताव निर्विरोध पास किये जाया करेंगे। वाद विवाद को दो या तीन असहिष्णु दलों में कुश्ती न समझा जाकर सब के स्वीकार करने योग्य मित्रता पूर्ण निर्णय करने का वार्तालाप समझा जावे। इस प्रकार मतैक्य प्राप्त करने के लिये समय लगाना तथा कष्ट सहना वास्तव में ही उचित है। यदि स्वतन्त्रता और भाईचारे की सम्पुष्टि करनी है तो उस प्रकार की सर्वसम्मति का होना अत्यन्त आवश्यक है। रूस के किसान अपनी पंचायतों और मित्रमण्डलियों में इस प्रकार एक सर्वसम्मत निर्णय पर पहुंचने का यत्न किया करते थे। इस समय पार्लियामेंटों, कौंसिलों, निजी सभाओं और सम्मितियों में बहुसम्मति से निर्णय करने की दूषित प्रणाली प्रचलित है।

यदि सौ सदस्यों में से इक्यावन प्रस्ताव के पक्ष में हो, तो प्रस्ताव पास कर दिया जाता है, और शेष उनंचास व्यक्तियों को बहुमत की आज्ञा माननी पड़ती है। पुरुष का पतन न होने देने और अधिकार जमाने का यह विचित्र और नया सिद्धांत है। किन्तु यह सदा ही निश्चित नहीं है कि इक्यावन पुरुष अवश्य ही उनंचास से अधिक बुद्धिमान् हों। तब इस प्रणाली में बुद्धिमत्ता क्या हुई ? यदि कोई प्रस्ताव ६० प्रति शतक सदस्यों द्वारा पास किया जावे तो उसके पक्ष में प्रबल भावना समझी जा सकती है। इस प्रकार की बहुसम्मति को भी सर्वसम्मति जैसा ही समझा जाता है। दस व्यक्ति नव्वे के निर्णय को नम्रता पूर्वक विरोध कर सकते हैं, अथवा वह "अन्त:करण से आक्षेप वृत्ति" उत्पन्न होने का अपवाद ले सकते हैं, किन्तु केवल कोरी बहुसम्मति ही अधिक बुद्धिमति होने का दावा नहीं कर सकती। यह तो अङ्क-गणित के द्वारा महत्व स्थापित करना है। सशस्त्र अल्पमत को बहुमत को दबाने का कोई अधिकार नही होता किन्तु वोट देने वाली बहुसम्मति को भी अल्पमत को दबाने का कोई अधिकार नहीं होता। सभी निर्णय या तो सर्वसम्मति से हों, अथवा नव्वे प्रतिशतक जैसे अत्यन्त अधिक बहुमत से हो. उसमेंभी जो लोग सहमत न हों उनको मानने के लिये बाध्य न किया जावे। इस प्रकार की जनतन्त्र प्रणाली सर्वसहमत तथा एक सा सहयोग स्थापित करेगीं और साथ ही व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की रक्षा करेगी।

विश्वराज्य का शासन

विश्वराज्य का शासन बिल्कुल सरल होगा। उसमें न्यायाधीश, पुलिस, सेना, जलसेना, कर वसूल करने वाले, गुप्तचर वकील, सालीसीटर, हत्यारे, चोर, जेलखाने और फांसी देने वाले कोई न होंगे। सम्पत्ति सब जनता की होगी और शिक्षा योग्य तथा उत्तम होगी, जिससे अपराध एक दम बन्द हो जावेंगे। उस राज्य में आवारा, सेंध लगाने वाले, डाका डालने वाले, सूदखोर अथवा करोड़पति नहीं होंगे उसमें दल बना कर दान पत्र, ठेकों, ऋणों. परन्यासापहरण, तथा अन्य आर्थिक पेचीदगियों के विषय में कोई झगड़े न होंगे। इस प्रकार के सब मुकदमे धन के कारण होते हैं, किन्तु विश्वराज्य में धन को कोई जानेगा ही नहीं। ऐनाक्रिओन (Anacreon) ने दुःख के साथ कहा था," सोने के कारण भाई, भाई नहीं रहता और माता पिता, माता पिता नहीं बने रहते।" किन्तु जब सोना एकत्रित नहीं किया जावेगा, तो भाई वास्तव में प्यारा भाई होगा और माता पिता प्यार करने वाले और प्यारे माता पिता होंगे। मानव समाज के सुन्दर मुख पर मस्सों और गुमड़ों के समान पुलिस और सेना आज कल के वीरों (नाइट लोगों) और ठगों के समान लोप हो जावेगा। न कोई न्याय करेगा, न किसी का न्याय किया जावेगा। न कोई दण्ड देगा, न किसी को दण्ड दिया जावेगा। न कोई कर देगा, न कोई कर को वसूल करेगा।

सहयोगी जनतन्त्र राज्य में जनता प्रत्यक्ष स्वयं ही कानून बनावेगी; वह स्वयं ही उनको कार्यरूप में परिणत करने वाली कार्यकारिणी होगी। वह लोग शासनकार्य पेशेवर नौकरशाही के हाथ में नहीं देंगे नौकरशाही के लोग निश्चय से ही एक स्वार्थी जाति के रूप में विकसित हो जाते हैं। राजनीति के पेशे को सदा के लिये असम्भव कर देना चाहिये क्योंकि उसका अनिवार्य परिणाम विशेष स्वत्वों वाले छोटे २ दलों की रचना होती हैं। इस प्रकार पुराने रक्त चूसने वालों का लोप होने पर भी एक और ही ठगने वाला वर्ग बन जावेगा; किन्तु जनतन्त्र शासन प्रणाली केवल दूसरा स्वामी ही नहीं चाहती। वह तो सभी स्वामियों को सदा के लिये तिलाञ्जलि देना चाहती है। इसी लिये "राजनीति के पेशे से सावधान रहो।" हम को आजकल के पेशेवर जूरियों अथवा कौंसिलरों (व्यवस्थापकों) की आवश्यकता नहीं है, उसी प्रकार हम पेशेवर अधिकारियों और शासकों की नियुक्ति भी नहीं करेंगे। प्रत्येक व्यक्ति एंथेन्स के नागरिकों के समान अपनी २ बारी से प्रबन्ध किया करेगा। ऐथेन्स-वासियों के विषय में ऐस्चाइलस (Aeschylus) ने लिखा है, "वह किसी मनुष्य को स्वामी अथवा मालिक नहीं करते, वह किसी व्यक्ति के शब्द पर नहीं झुकते।" उस राज्य में हम को सिविल सर्विस के उन स्थायी पुरोहितों का आज्ञापालन करना और सम्मान करना नहीं पड़ेगा, जो आजकल राज्य के अधिकार के वस्त्र पहिने हुए घूमा करते हैं। सामान्य नागरिक

अपना अधिकार किसी प्रतिनिधि को नहीं देगा; वह इस पद के अनुरूप स्वयं ही साहस तथा सार्वजनिक भावना के अनुसार कार्य करेगा। उस समय की कार्यकारिणी का कर्तव्य आजकल के समान पेंचीदा और मिश्रित नहीं होगा। आजकल के राज्य में दो बातें मुख्य होती हैं, धन और हत्या। जब यह दोनों दोष न होंगे तो शासन सम्बन्धी पेंचीदगियाँ सभी दूर होकर काम बहुत हल्का हो जावेगा। उस नौकरशाही शासनप्रणाली की स्वभावतः ही मृत्यु हो जावेगी और सभी नागरिक व्यक्तिगत रूप में, अथवा कमेटियों के सदस्य रूप में अथवा बड़े २ संघों की इकाइ रूप में स्वयं ही प्रबन्ध किया करेंगे। यही वास्तविक जनतन्त्र शासन प्रणाली होगी। उस समय समस्त भूमण्डल स्वतन्त्रता और सुरक्षा के इस प्रकार पूर्ण आनन्द का उपभोग करेगा, जिसका आभास आइसलैण्ड के मध्यकालीन जनतन्त्र शासन में मिला था और जिसका वर्णन एच० ए० एल० फिशर ने निम्न शब्दों में किया है—

"वह जनतन्त्र शासन था। किन्तु अब तक की सभी जनतंत्र शासन प्रणालियों से विचित्र था। वहां न कर थे, न पुलिस, न सेना थी, न शासक पदाधिकारी, न वहां कोई वैदेशिक नीति और न कोई दबाव का सम्मिलित शासन ही था।"

विकटर ह्यूगो ने ऐसे सत्य की भविष्यवाणी की है—

"हे भूमण्डल के जनतन्त्र शासन
आज तू अग्नि की एक चिंगारी के समान है

किन्तु कल को तू सूर्य के समान बन जावेगा !"

पुलिस का शासन

विश्व राज्य की स्थापना बल से अथवा बल के आधार से नहीं की जावेगी। वह पशुबल को उसके सभी रूपों में पूर्णतया नष्ट कर देगा। प्रकृति ने हम को काम करने वाले हाथ और पैर दिये हैं, तेज़ पंजे और शिकारी पक्षियों जैसे नख नहीं दिये। इस प्रकार प्रकृति मनुष्य से कहती है, "काम कर ! न युद्ध कर, न जख़्मी कर और न किसी की हत्या कर।" शक्ति सदा ही न्याय और समानता की शत्रु रही है। जब सभी पुरुष काम करके धन उत्पन्न करें, तो उनमें से थोड़े से परिश्रम से किस प्रकार बचकर घातक शस्त्रों को पा सकते हैं ? इस प्रकार के सशस्त्र लोग निश्चय से ही सम्पूर्ण जाति पर अत्याचार करके इसको दबा लेते हैं, फिर उस संस्था की प्रथमवार स्थापना का उद्देश्य कुछ भी क्यों न हो। सशस्त्र दल राजनीतिक शरीर में कैन्सर नामक घाव के समान होता है, पुलिस और सेना कभी भी उपयोगी सामाजिक संस्थाएं नहीं हो सकतीं। वह तो केवल घृणा और लोभ की सेवा करने वाले राक्षसी साधन होते हैं। यदि सभी स्त्री और पुरुष ईमानदारी से काम करें और शान्ति से रहें तो कोई चोर अथवा सेन्ध मारने वाले न रहें, जिनके विरुद्ध पुलिस से हमारी रक्षा करने की आशा की जावे। और स्वयं पुलिस और उसके अत्याचारों से हमारी कौन रक्षा करेगा ? इस प्रकार हमको पुलिस के निरीक्षण के लिये एक उच्च पुलिस

की और उस उच्च पुलिस के निरीक्षण के लिये नागरिकों के दूसरे दल की आवश्यकता रहेगी और फिर भी यह आवश्यकता बराबर बढ़ती ही रहेगी। वर्तमान पुलिस की आवश्यकता केवल धनिकों की सम्पत्ति की रक्षा के लिये ही है, क्योंकि ईमानदारों के पास चोरों के चुराने योग्य कोई वस्तु नहीं होती। यदि धन और कार्य का उचित रूप से समान बटवारा कर दिया जावे तो चोरो का अस्तित्व ही नहीं रहेगा। जन्म से कोई भी चोर नहीं होता। पूंजीवाद ही चोरों और जेबकतरों को उत्पन्न करता और फिर बिना उत्तराधिकार वाले आचरण हीन वर्ग के कुछ उद्योगी और उत्साही सदस्यों के द्वारा कभी २ की हुई लूट-मार से धनी लुटेरों के रत्नों तथा धन सम्पत्ति की रक्षा करने के लिये पुलिस और जेलखानों को रखता है, हीरों और मोतियों के हारों की अनिवार्य खानें बरबादी और लूट का परिणाम है। ऊपर के अन्याय और उत्पात का उत्तर सदा ही नीचे के अन्याय और उत्पात से दिया जाता है; यह एक ही वृक्ष के भिन्न २ शाखाओं पर लगने वाले फल हैं। अतएक पुलिस और सम्पत्ति दोनों को एक साथ ही समाप्त कर दो। मनुष्यों को अन्य मनुष्यों को घायल तथा जान से मारने के लिये वर्दीदार बुलडाग और कार्यकर्ता मत बनाओ। यह व्यापार लज्जाजनक और बीमार करने वाला है। मनुष्य किसी प्रकार के अस्त्र और शस्त्र धारण करने के लिये नहीं बनाया गया। सशस्त्र मनुष्य प्राचीन दन्त

कथाओं के हार्पी[१] (Harpies) सेण्टौर[२] (Sentours) प्राणियों के समान आधा मनुष्य और आधा पशु होता है। धनुषबाण, तलवार, भाले, रिवॉल्वर, और बन्दूक आदि सभी शस्त्र ऐसे अस्वाभाविक और अरुचिकर आविष्कार हैं; जिनको मूर्ख मनुष्यों ने अपने गले में फांसी के फन्दे के समान स्वयं लटकने के लिये डाला हुआ है। सेनाओं का आरम्भ दलों के झगडों से हुआ करता है। अतः उनकी आवश्यकता केवल दो उद्देश्यों के लिये पड़ती है—अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध और घरेलू दमन के लिये। जब राष्ट्रों में होने वाला युद्ध केवल भूतकालीन दुःस्वप्न मात्र हो जावेगा और जब निर्धनों के गोली मारने को धनी ही न रहेंगे तो फिर सेना की किसको आवश्यकता रहेगी और उसके लिये वेतन कौन देगा? इस प्रकार के भद्दे विचार को एक क्षणके लिये भी सहन नहीं किया जावेगा। पूर्णस्वतन्त्रता भी सशस्त्र शक्ति को अनावश्यक बना देगी। सब नागरिकों की स्वीकृति के बिना न कोई कानून बनाया जावेगा, न उस पर आचरण ही किया जावेगा, न किसी को ऐसे कानूनों को मानने के लिये बाध्य किया जावेगा, जिसको उसका हृदय न मानता

---

१ इन भयंकर प्राणियों का सिर स्त्रियों का सा होता था, इनके लम्बे २ पंजे और पंख होते थे। देवता लोग उनके द्वारा मनुष्यों को भयभीत किया करते थे।

२ यह जाति आधे घोड़े तथा आधे मनुष्य के आकार की होती और पेलिअन पर्वत पर निवास करती थी।

हो। विश्वजनीन सहिष्णुता दण्डप्रणाली को बन्द कर देगी, क्यों दण्ड प्रणाली दण्ड पाने और दण्ड देने वाले दोनों को ही पतित करके पशु बना देती है। निर्दयता का फल कभी अच्छा नहीं हो सकता। जेल में कोई भी अपराधी नहीं सुधरता। एक बार जेल जाकर उसको बार बार जेल जाना पड़ता है। अक्तूबर सन् १६३३ में 'सूसन ऐलीजैबेथ डॉबसन नामक एक ८२ वर्ष की वृद्धा को लन्दन को एक न्यायालय में उपस्थित किया गया था। इसने सन् १८७५ में अदना अपराधी जीवन आरम्भ किया था। इसके विषय में गुप्त पुलिस के अधिकारी ने कहा था, "मिसेज़ डाब्सेन को चोरी तथा दान की सहायता को धोखे से लेने के अपराध में कई २ बार सजा हो चुकी है। उसके सुधार की आशा न होने के कारण ही उसको बराबर सज़ा दी जाती है।" निकरशाम की रिपोर्ट के अनुसार संयुक्त राज्य अमरीका में "जेल तथा रिफार्मेटरी में जाने वाले ६० प्रतिशतक व्यक्तियों को फिर सज़ाएं दी गई।" 'अपराधी' कहे जाने वालों पर मुकदमा चलाने और उनको दण्ड देने की प्रणाली ऐसी हास्यजनक है, कि जैसे कोई विषाक्त रक्त वाला रोगी मनुष्य अपने रक्त को शुद्ध किये बिना ही अपने फोड़े फुन्सियों को नखों से खुरचले। इस प्रकार पशु बल मानव समाज के उद्यान में घुसआने वाला ज़हरीला सर्प है और हम को उसे पूर्णतया पीस कर अन्तिम रूप से इस प्रकार नष्ट कर देना चाहिये कि वह फिर न उठे।

सैनिक शासन

कभी २ यह भी कहा जाता है कि जिस समय निर्बल और पीड़ित की ओर से सशस्त्र आक्रान्तों के विरुद्ध बल प्रयोग किया जाता है तो यह न्याय का साधन होता है। इतिहास फारिस के आक्रमण करने वालों के विरुद्ध यूनानियों की सफलता, यूनानियों के विरुद्ध हिन्दुओं की, रोमनों के विरुद्ध ट्यूटोन लोगों की, मंगोलों के विरुद्ध जापानियों की, पुर्तगाल वालों के विरुद्ध कांगो वालों की, आस्ट्रियनों के विरुद्ध इटली वालों की, स्पेन वालों के विरुद्ध डच लोगों और ब्रिटेन के विरुद्ध अफ़ग़ानिस्तान और आयलैंण्ड आदि की सफलताओं का वर्णन करता है। वर्ग युद्ध में भी कोरसाइरा (Corcyra) फ्लारेन्स, स्वीज़लैंण्ड कृषक संघ, फ्रांस तथा रूस की क्रान्तियों के परिणामस्वरूप श्रमिकों और किसानों को धनी वर्ग पर विजय मिली। किन्तु हमको यह बात नहीं भूलनी चाहिये कि बल न्याय के ऊपर अनेक शताब्दियों में अनेक बार विजय प्राप्त कर चुका है। यूनान और रोम के दास, रोम के आधीन प्रजा राष्ट्र, प्राचीन भारत के शूद्र लोग, सन् १५२५ के जर्मन कृषक युद्ध के वीर लोग, सन् १३८१ के अंग्रेजी विद्रोह के वीर, यहूदी लोग, ऐल्जीरिया निवासी, पोलैण्ड निवासी, फिनलैण्ड के श्रमिक, बल्गेरिया और जर्मनी के साम्यवादी, सूडान निवासी, राजपूत, बोअर लोग आरमीनिया निवासी, ईसा पूर्व सातवीं शताब्दी के ईरानी लोग, कश्मीरी लोग, सन् १८४८ में पेरिस के बेरोज़गार लोग तथा

अन्य भी अनेक वर्ग और जातियाँ शस्त्र के विरुद्ध न्याय तथा स्वतन्त्रता प्राप्त न कर सकीं। उनके निस्सहाय हाथ अधिकार की तलवार द्वारा काट डाले गये। शक्तिशाली को विजय और प्रशंसा मिलती रही। बल के द्वारा शान्त किसानों और श्रमिकों को सदा ही विजय नहीं मिली, वरन् इसके विरुद्ध उनके निर्दय और सुसंगठित शत्रुओं को बार बार विजय मिलती रही। यह तो लाटरी के समान अवसर मिलने का खेल बन गया था, न्याय को तो इस खेल में बहुत कम बार पारितोषिक मिला। यदि समानता और स्वतन्त्रता के कुछ सच्चे प्रेमी आज बन्दूक से बन्दूक का और गोली से गोली का मुकाबला करने का निश्चय करें तो आपके इस रक्त कार्य में सम्मिलित होने की आवश्यकता नहीं है। उनको अपने ढङ्ग पर युद्ध करने दो और न्याय को विजय प्राप्त करने दो। दोनों में किसी के ऊपर न तो सम्मति दो, न किसी की निन्दा करो। शक्ति, लोभ और घृणा से भरे हुए इस अपूर्ण समाज में लाभप्रद परिणामों को प्राप्त करने का बल कभी २ अपूर्ण साधन बन भी जाता है। किन्तु इससे यह विश्वास नहीं करना चाहिये कि अनेकों का निर्दयतापूर्वक रक्त बहा कर पीड़ित लोग पाशविक बल के द्वारा अत्याचार से छूट सकते हैं। ऐसे व्यक्तियों को उनकी पसन्द के अनुसार जीने और युद्ध करने के लिये छोड़ दो। किन्तु आप इस पूर्ण सत्य और पूर्ण प्रकाश के लिये उद्योग करते रहो, जो अकेला ही आपके स्वप्न के पूर्ण समाज का निर्माण कर सकता है। शक्ति

के उपासकों को—यदि वह कर सकें तो—कल के लिये निर्माण करने दो, चाहे वह सफल हों अथवा असफल। किन्तु आपका यह कर्तव्य है कि आप कल, परसों और आगे के लिये भी बिना बल प्रयोग के ही निर्माण कार्य करते रहें, उस अवस्था में आप कभी असफल नहीं हो सकते। ओलीवर क्रामवेल और जार्ज फाक्स के जीवन चरित्र की तुलना कर देखो। यह दोनों ही महान् पुरुष और मनुष्य जाति के संरक्षक थे; किन्तु उन दोनों की कार्यशैली बिल्कुल ही भिन्न थी। फाक्स ने बलप्रयोग का पूर्णतया खंडन किया और पार्लियामेण्ट की उस सेना में सम्मिलित होने से निषेध कर दिया, जो मध्य वर्ग की राजनीतिक और धार्मिक स्वतन्त्रता के लिये युद्ध कर रही थी। उसने अपने समाचार पत्र में लिखा था, "अब मेरा सुधार कार्य प्रायः समाप्त हो चुका है, नवीन सेना भर्ती की जा रही है, कमिश्नर लोग मुझे निश्चय से ही उनके ऊपर कमिश्नर बना देंगे।............... सुधार कार्य के नेता को आज्ञा दी गई कि वह मुझ को सरे बाजार कमिश्नरों और सैनिकों के सन्मुख उपस्थित करें; वहाँ पर उन्होंने मुझे वह पद ले लेने को कहा। उन्होंने मुझ से अनुरोध किया कि मैं चार्ल्स स्टुआर्ट के विरुद्ध प्रजातन्त्र राज्य के लिये शस्त्र धारण करूँ। मैंने उन से कहा, मैं जानता हूं कि सभी युद्ध कहां से आरम्भ होते हैं। जेम्स के सिद्धान्त के अनुसार यह कामवासना से आरम्भ होते हैं। मैं तो उस जीवन और शक्ति के गुणों में निवास करता हूं. जो कभी युद्ध को

अवसर नहीं देता। किन्तु उन्होंने मुझ से भी पद ग्रहण करने का अनुरोध किया।............ किन्तु मैंने उनसे कहा, मैं तो शान्ति के उस संघ में निवास करता हूं, जिसका अस्तित्व युद्धों और झगड़ों से भी पूर्व था। तब उनको क्रोध हो आया और उन्होंने कहा, 'जेलर, उसको ले जाओ और दुष्टों तथा बदमाशों के साथ कालकोठरी में डाल दो।'

अब क्या आप क्रामवेल को दोष देते हैं? अथवा फ़ाक्स ने गलती की? नहीं, आपको किसी की निन्दा अथवा स्तुति करने की आवश्यकता नहीं है। दोनों ने ही उन्नति करने का यत्न किया। किन्तु क्रामवेल ने कल के लिये युद्ध किया और फ़ाक्स ने कल के बाद के दिन के लिये उपदेश दिया और कष्ट सहे। कुछ लोग अच्छा काम करते हैं, कुछ उससे अच्छा करते हैं। किन्तु आपको सब से अच्छे काम से ही प्रेम करके उसी को पकड़े रहना चाहिये, फिर चाहे कुछ भी क्यों न हो।

एक क्षण के लिये विचार करो। सभी प्रकार के अन्याय और अत्याचार का मूल संगठित शक्ति है। युद्ध और विजय ने मनुष्य जाति को स्वामी और दास, जमींदार और रैयत, साम्राज्यवादियों और प्रजा, पूंजीपतियों तथा श्रम-दासों में विभक्त कर दिया। जैसा कि सयुक्तराज्य अमरीका की हड़तालों में देखा जा चुका है सैनिक सदा ही श्रमिक का शत्रु होता है। पहिले कुछ लोगों को विरोधियों से युद्ध करने के लिये प्रथक् रक्खा गया; किन्तु तब वह आलसी बन गये और शान्ति के

समय अपने सजाति भाइयों को ही लूटने लगे। भारतवर्ष के क्षत्रिय लोग और मध्य युग के यूरोपीय सैनिक इसी प्रकार के थे, इस प्रकार के लोगों का प्रथक् वर्ग बनाने का परिणाम यह हुआ कि जनता तलवार की दास बन गयी। योद्धा लोग भी दूसरे दलों पर विजय प्राप्त करके उनमें शासक जमींदार और सेनापतियों के रूप में बसने लगे। किन्तु इस सारी प्रणाली का मूल शक्ति थी। सैनिक लोग किसानों और श्रमिकों को कर देने को विवश करते थे। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि शक्ति स्वभावतः ही श्रम की विरोधी है। अग्नि और जल के समान यह दोनों एक स्थान में कभी नहीं रह सकते। तब फिर श्रम अपनी अन्तिम मुक्ति की आशा शक्ति के हाथों किस प्रकार कर सकता है? क्या एक सहस्र वर्षों के शत्रु आज मित्र बन सकते हैं? यह असम्भव है। यदि संगठित शक्ति पूंजीवाद को नष्ट करती है, तो भविष्य में वह नये ढङ्ग पर श्रम पर अत्याचार करेगी। किसी भी दल के सैनिक क्यों काम करें और पसीना बहावें? वह सदा ही श्रमिकों को लूटने की अधिक सुगम प्रणाली को पसन्द करेंगे। उनका विरोध कौन करेगा? और किस प्रकार? सेना टिड्डीदल के समान होती है, उसको तो पहिले और सदा भोजन ही चाहिये। वह लाल अथवा श्वेत कैसा भी झण्डा क्यों न उड़ाते हों, वह तो सदा दूसरों के सिर चढ़ कर ही खाएँगे। अन्त में सेना का रूप धारण करने वाला श्रमिक आन्दोलन उस अभागी क्लाइटेमनेस्ट्रा (Clytemnestra) के समान है जिसके

पुत्र ऑरस्टीज़ (Orestes) ने उसी की हत्या कर दी थी। सोशिएलिज्म को सभी सेनाओं को बन्द कर देना चाहिये। उसको नयी सेनाओं का संगठन नहीं करना चाहिये। सेना श्रम को कभी नहीं छोड़ सकती, क्योंकि उसको अपना कुछ भी नाम धारण करके अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिये श्रम पर अत्याचार करने पड़ते हैं। सेना के कैसे ही रङ्ग के वस्त्र पहिनने पर भी श्रम को सभी शस्त्रों और वर्दियों से अपनी रक्षा करनी चाहिये। उन सब को श्रम की आय में से ही वेतन दिया जाता है। इस प्रकार शक्ति श्रमिकों के स्वामियो को बदल सकती है, किन्तु वह उनको स्वतन्त्र नहीं कर सकती। नेपोलियन की सेवा करने के लिये फ्रांस के पुराने राजतन्त्र को मत निकालो। राकफेलर (Rockefeller) और वैंडरबिल्ट (Vanderbilt) की दासता करने के लिये जार्ज तृतीय को मत निकालो। इसकी अपेक्षा सैनिकवाद से पूर्णतया पीछा छुड़ा कर भविष्य में अत्याचार होने के मार्ग को ही बन्द करो।

सैनक वाद और शान्तिबाद

संसार को बुद्धिमान् तथा विश्वासी ऐसे सैनिकता विरोधियों के अन्तराष्ट्रीय दल की आवश्यकता है और सदा रहेगी, जो बल प्रयोग को डाक्टर के द्वारा फोड़े के आपरेशन के समान कुछ परिस्थितियों में आवश्यक समझते हुए भी उसको सदा ही बुरा समझें। किन्तु हम सभी राजनीतिक शल्य चिकित्सक नहीं बन सकते, केवल वही लोग अपने को इस योग्य बनावें जो उसकी

अनिवार्य आवश्यकता समझते हों। सम्भव है कि उनकी सेवा की एक शताब्दी में किसी देश में एक बार आवश्यकता आ पड़े। किन्तु ज़मींदारी प्रथा, पूंजीवाद अथवा साम्यवाद सभी आर्थिक प्रणालियों में सामाजिक स्वास्थ्यविज्ञान वेत्ता का पेशा सदा और प्रति दिन उपयोगी और अनिवार्य है। सामाजिक स्वास्थ्यविज्ञान वेत्ता शान्ति और उसकी दशाओं का विशेषज्ञ होता है; वह उनके कारणों, उनकी आवश्यकताओं, उसके परिणामों, उसके लाभों, और उसकी शान को अच्छी तरह समझता है। वह शांन्ति और सामाजिक स्वास्थ्य पर सभीदृष्टिसे विचार करता है। व्यक्तियों में दैनिक शान्ति; परिवारों व्यापारों, म्यूनिसिपैलिटियों, राष्ट्रों और जातियों में शान्ति; मनुष्य, पशु और जङ्गली पशुओं की शान्ति पर वह विशेष रूप से विचार करता है। सब युद्धों और झगड़ों के समाप्त होने के तुरन्त ही बाद ऐसे सामाजिक स्वास्थ्यविज्ञान वेत्ताओं की आवश्यकता पड़ती हैं। विजयी क्रांन्ति के अगले दिन भी नई समाज की स्थापना के लिये घाव भरने वाली मंत्रणा की आवश्यकता होगी। सन् १८४८ की फ्रांस कीं प्रजातन्त्र सरकार का सब से पहिला कार्य राजनीतिक अपराधों के लिये मृत्यु दण्ड को उठा देना था। क्रांति के समाप्त होने पर यदि डाक्टर के ओपरेशन में कोई दुर्घटना न हो गई तो तलवार को तुरन्त ही म्यान कर लेना चाहिये। चिकित्सक क़साई काटने और रक्त बहाने के पश्चात् चला जाता हैं और मधुर भाषिणी तथा नम्र नर्से उस दृश्य पर उपस्थित होती हैं। टेनीसन कहता है कि

चतुर राजनीतिज्ञ को

"यह विश्वास रहता है, कि ज्ञान ही तलवार को निकालता है
और ज्ञान ही तलवार को म्यान करता है।"

किन्तु 'तलवार को म्यान करने का' वह गम्भीर और उच्च ज्ञान किसमें है ? यह ज्ञान केवल उस सामाजिक स्वास्थ्यविज्ञान के विद्वान् में है, जो अपने जीवन भर अपने स्वभाव और परम्परा में सैनिकता विरोधी होने का अभ्यास करता रहा है। राष्ट्रीयवाद के सैनिकवादी जनता से कहा करते हैं, "अपने देश के लिये युद्ध करो, किन्तु अपने वर्ग के लिये युद्ध मत करो।" वर्ग युद्ध के सैनिकवादी कहते हैं, "अपने वर्ग के लिये युद्ध करो, किन्तु अपने देश के लिये नहीं।" यह दोनों ही उक्तियां मानव मनोविज्ञान के अज्ञान को प्रकट करती हैं। देशभक्ति के अग्नि में श्वास लेने वाले अजगर के लिये यह सम्भव नहीं है कि वह विदेशी राजनीति से घरेलू मामलों पर विचार करते समय अचानक अपने को शांति के कबूतर रूप में परिवर्तित करले। राष्ट्रीयवाद अथवा समाजवाद की सेवा में सैनिकवाद का आन्दोलन इस प्रकार का आचरण बना देता है, जो एक निश्चित विधि से सभी उत्तेजक कार्यों के लिये प्रतिक्रिया का कार्य करेगा। कोई भी युद्ध करने वाला देशभक्त और शान्त समाजवादी, अथवा शान्त अन्तराष्ट्रियतावादी और युद्ध प्रिय समाजवादी नहीं बन सकता। इस प्रकार के दुहरे व्यक्तित्व की अधिक समय तक रक्षा नहीं की जा सकती, क्यों कि आचरण के पास दो कोट

नहीं होते कि उनमें से चाहे जिस को चाहे जब उच्छानुसार पहिन लिया जावे। सैनिकवाद को अनूकूल बन कर नवयुवकों से कह देना चाहिये, "अपने देश, वर्ग, क्लब, परिवार, क्रिकेट टीम, व्यापारिक दूकान, साहित्य सम्मिति, प्रेमकार्य, धर्म, और सम्प्रदाय आदि सभी बातों के लिये सदा शस्त्रलेकर युद्ध करो।" सच्चे व्यक्तियों ने अपने परिवार और धर्म के लिये अनेकबार वीरतापूर्वक युद्ध किया है। उनको केवल देश के ही लिये क्यों युद्ध करना चाहिये और किसी के लिये क्यों युद्ध नहीं करना चाहिये ? वास्तव में झगड़ालू मुष्टियुद्ध के स्वभाव के कार्यक्षेत्र को परिमित नहीं किया जा सकता। एक बार बल का आश्रय लेने पर आप उसको निश्चित रूप से एक निश्चित दिशा में उसी प्रकार नियमित नहीं रख सकते, जिस प्रकार आग लगाने वाला आग से यह नहीं कह सकता कि इतने की घरों को जलाना उससे अधिक को नहीं। सैनिकवादी अपने विचार और कार्य के ढङ्गों को बदल नहीं सकता। वह युद्ध और विजय के शब्दों में ही अनुभव करता, विचार करता और स्वप्न देखता है। सैनिक-वादी और शान्तिवादी का उद्देश्य एक होने पर भी वास्तव में वह पूर्णतया भिन्न भिन्न प्रणाली का अनुसरण करते और उनका आ-चरण भी बिल्कुल भिन्न प्रकार का ही होता है। यदि आप किसी उन्नतिशील आन्दोलन के समर्थन में सैनिक नीति का अनुसरण करते हो तो आपको अपने झंडे के नीचे उन सभी बलिष्ट पहल-वानों, बदमाशों और कसाइयों, कठोर तथा विलासी खिलाड़ियों

निर्दयी सैनिकों को एकत्रित कर लेना चाहिये, जो होमर के नायकों के समान चोट करने, घायल करने, रक्त बहाने और हत्या करने में ही आनन्द मानते थे, और यदि इसके विरुद्ध आप उसी आन्दोलन के पक्ष में शान्तिपूर्ण आन्दोलन का उपाय निकालते हो तो आपको सभी नम्र और आत्मसंयमी आदर्शवादियों निर्बल स्वभाव वाली स्त्रियों, उच्च उपदेशकों, स्टोइक्स लोगों के दर्शनशास्त्रियों, और अत्यन्त सहनशील आत्म बलिदान करने वाले ऐसे व्यक्तियों को एकत्रित करना चाहिये, जो शिक्षा देने और सहन करने के लिये तो दृढ़निश्चय हों, किन्तु मारने को कभी तयार न हों। यदि किसी आन्दोलन का नेतृत्व सैनिकवाद के हाथ में हो तो वह फासिस्टों तथा इस्लामी सेनाओं के समान हत्यारी तथा आक्रमण सम्बन्धी वीरता को मुख्य गुण मानता है। यदि उस आन्दोलन का मार्ग प्रदर्शन शान्तिवाद कर रहा हो तो उसमें प्राचीन ईसाई धर्म के समान सरलता और सहनशीलता को सब से बड़ा गुण माना जाता है। इस प्रकार सैनिकवाद और शान्तिवाद का उद्देश्य एक होने पर भी मार्ग बिल्कुल ही प्रथक् २ और परस्पर विरोधी होते हैं। सैनिकवाद सफल भी हो सकता है और असफल भी यहां तक कि उसकी सफलता भी कुछ दोषों को उत्पन्न कर सकती है, किन्तु शान्तिवाद कभी असफल नहीं हो सकता और उसकी सफलता सदा हित ही करती है। जो लोग एक उचित कारण से एक युद्ध का बीज बोते हैं, उनको अनुचित कारणों के लिये अनेक युद्धों के बगूले का मुकाबला करने को तयार

रहना चाहिये ! ऐथेन्स और स्पार्टा के सैनिकों ने सौभाग्य वश ज़रसीज़ (Xerxes) और मरडोनियस (Mardonius) का बड़ी सफलता पूर्वक मुकाबला किया, किन्तु इस प्रकार उत्तेजित हुई सैनिक भावना ने उनको अनेक युद्धों में डाल दिया । रोम के शासकों ने कारथेज, गाल और एशिया को विजय किया; किन्तु उनके पश्चात् अनेक भयङ्कर युद्ध हुए । सेंट बर्नर्ड ने ईसा की बारहवीं शताब्दी में यूरोप के बदमाशों और ज़मींदारों को फिलिस्तीन में धर्मयुद्ध करने का उपदेश दिया था, और उन्होंने वैसा ही किया था; किन्तु जब उसने फिर उनको यूरोप में ईसाई भाई भाई के समान मिल जुलकर रहने का उपदेश दिया तो वह उस के उपदेश पर आचरण न कर सके । उनको आपस में लड़ते ही रहना था, वह इससे कुछ नहीं कर सकते थे । मुहम्मद ने सातवीं शताब्दी में अरबों को काफ़िरों के विरुद्ध युद्ध करके उन्हें इस्लाम में दीक्षित करने का आदेश दिया था; और उन्होंने उसकी आज्ञा का पालन भी किया । किन्तु जब दीन वाले काफ़िरों को पराजित कर चुके तो आपस में ही लड़ते रहे, जैसा कि सैयद अमीर अली ने कहा है, "एशिया, उत्तरी अफ्रीका और स्पेन के विजेता अरबों ने.........अपनी पूर्व शक्ति में मरुभूमि की वासना, शत्रुता, और तुच्छ ईर्ष्या को भी बड़े उग्र रूप में सम्मिलित कर लिया । उन्होंने फिर अधिक विस्तृत क्षेत्र में इस्लाम के सामने ही अरबों से युद्ध किया।" भारतवर्ष के सिक्खों ने पंजाब में मुग़लों की स्वेच्छाचारिता को नष्ट कर दिया, किन्तु

उन्होंने निस्सहाय कश्मीरियों को दमन करना आरम्भ किया। फ्रांस के प्रजातन्त्र की सेनाएं अत्यन्त अहंकारी नेपोलियन के हाथों में पड़ गई। जिन्होंने जर्मनों को बुरी तरह से पराजित जिससे किया। इस ठेस से जर्मनों में राष्ट्रीय भाव की जाग्रति हुई, उन्होंने अलसेस और लारैन को अपने राज्य में मिला लिया। इससे फ्रांस वालों के हृदय में गांठ पड़ गई और 'बदला' लेने की भावना जड़पकड़ गई। इस प्रकार सन् १७८९ की क्रांति के कारण सन् १९१४ का महायुद्ध हुआ। गत महायुद्ध में लड़ने वाले एक अंग्रेज़ ने हत्या की और जज ने कहा, "मैंने विचार किया कि मैंने अपने देश के लिये इतने मनुष्यों की हत्या की तो एकाकी हत्या मैं अपने लिये भी कर सकता था।" समान वस्तुओं से समान की ही उत्पत्ति होती है। जिस प्रकार आमने सामने रखे हुए दो दर्पणों के बीचमें रखेहुए लैम्पके अनेकप्रतिबिम्ब दिखाई देतेहैं उसीप्रकार एकयुद्ध सेदूसरा, उससे फिरतीसरा और उससे फिर चौथा आदि होते रहते हैं। यह विश्व का नियम है, यह मनोवैज्ञानिक रूपसे आवश्यक और ऐतिहासिक रूप से प्रमाणित है। इसको किसी प्रकार नहीं बदला जा सकता। जैसा कि शिलर हम को चेतावनी देता है, "बुराई का परिणाम बुरा ही होता है।" फिर इस प्रकार की इस रक्त बहाने वाली शृङ्खला को कौन तोड़ सकता है, जिस कारणकी प्रत्येक कड़ी हत्या कियेहुए मनुष्यकी खोपड़ीसे बनी हुई है? दन्तकथाओं के केन (Cain) के अपराध से लगाकर आज कल के युद्धों तक इतिहास में रक्त की रेखा को बराबर देखा जा

सकता है। यह रेखा मनुष्य की सदा ही पशुपची बनी होने का प्रमाण है। इस रक्त रेखा का अपराध सभी मनुष्यों के सिर पर सामान्य रूप से है। आप को स्मरण रखना चाहिये कि आप इस हत्याचक्र से चाहे जब छूट सकते हैं, आपको केवल यह शपथ पूर्वक निश्चय कर लेना चाहिये कि आप सैनिक के रूप में कभी युद्ध न करेंगे और न सैनिक व्यापार को सीखेंगे। यह कार्य कुछ कठिन नहीं है। इसके लिये आपको सार्वजनिक निश्शास्त्री करण और संसार की शान्त की प्रभाव पूर्ण विश्व-सन्धि की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है। यह सब भी उचित समय पर ही हो जावेगा। किन्तु यह सब तभी होगा जब आप पहिले स्वयं निःशस्त्र हो जावें। महान् विलियम पेन ने रेड इंडियन लोगों से मिलने में अपने को निश्शस्त्र करके कारनीले (Carneille) की इस उक्ति को चरितार्थ किया था, "नम्रता अशान्ति से अधिक प्रबल होती हैं।" बेवरली निकोलस ने घोषणा की है कि वह कुछ परिस्थितियों में अन्तराष्ट्रीय सेना में युद्ध कर सकता है। किन्तु आप को युद्ध के विचार को पूर्णतया छोड़ देने के विचार को सीखना चाहिये । किसी भी सेना में किसी व्यक्ति से किसी प्रकार का युद्ध मत करो । सदा शान्ति के लिये, न कि युद्ध के लिये, ही सोचते हुए पहिले अपने मन को निःशस्त्र करो। युद्ध के सभी शस्त्रों के प्रयोग का त्याग करके अपने हाथ को निःश्शस्त्र करो। सैनिकवाद के उस अथाह गढ़े से निकलने का यही उपाय हैं जिसमें मनुष्य जाति धीरे २ डूबती जाती है। वीरों को एक २

करके बाहिर निकलकर ठोस पृथ्वी पर बाहिर खड़ा होने दो। तब वह दूसरों को बुलावेंगे, और उनके पीछे जनता चलेगी। आरम्भिक ईसाइयों को रोमन सेना में नौकरी न करने की शिक्षा दी जाती थी। ओरीगेन (Origen) ने साहसपूर्वक कहा था, "हमारे धर्म के शत्रु हम से शस्त्र धारण कराना चाहते हैं, जिस से हम राज्य की रक्षा और मनुष्यों की हत्या करें।......यद्यपि सम्राट को हमारी आवश्यकता है किन्तु हम उसकी आधीनता में युद्ध नहीं करते।" एक चीन के भद्र पुरुष ने सैनिक के नीच कार्य अथवा एक सैनिक अधिकारी बनने को कभी पसन्द नहीं किया। गत महायुद्ध के समय मित्रमण्डली (The Society of Friends) तथा कई मजदूर संस्थाओं ने हत्यारे की वर्दी पहिनने से इंकार कर दिया था—पागलों के इस संसार में केवल वही लोग बुद्धिमान् सिद्ध हुए। इस प्रकार शाँतिवाद का विचार एक दम नवीन और अपरिचित नहीं है, और यदि यह नवीन और अपरिचित भी हो तो इस सैनिक और भौतिक 'सभ्यता' के फूंकने नष्ट करने, और त्रास देने वाले भवन से बाहिर आने का एक मात्र मार्ग होने के कारण इसकी अब अवश्य ही परीक्षा करनी करनी चाहिये। जब आप बाहिर टहलने जावें तो आप दूसरे को बचाने में सहायता कर सकते हैं। सम्भवतः 'नेताओं' और आग लगवाने वालों को तो जीवित ही आग में डाल दिया जावेगा, किन्तु अधिक देर होने से पूर्व उनको भी बचा लेने में कोई हानि नहीं है। जिस प्रकार रोमन

साम्राज्य में ईसाई बनना अपराध था, उसी प्रकार शान्तिवादी बनने से भी आप पर अत्याचार किये जावेंगे; किन्तु आपका बलिदान जनता को ईसामसीह और बुद्ध के उपदेशों को फिर स्मरण करा देंगे, जिनको वह भूल गये हैं। साधु टेलीमेकस (Telemachus) रोमन सैनिकों के दल में कूद पड़ा था, उसने अपने जीवन का बलिदान देकर रक्तक्रीड़ा को बन्द कराया। डौखोबोर (Doukhobors) लोगों ने शस्त्र ग्रहण करने के पाप से बचने के लिये अपने देश को छोड़ दिया था। आज भी अनेक शान्तिवादी अनेक 'ईसाई' देशों के जेलखानों में पड़े सड़ रहे हैं यदि वह एक बार जेल से बाहिर आ जावें तो ईसा-मसीह के सभी देवदूत वहां स्वयं जाकर बन्द हो जावें। जापानी सैनिकवादी बुद्ध के सम्मान में स्तुतियां करते हैं, किन्तु वह उसकी इस उक्ति पर कोई ध्यान नहीं देते, "घृणा पर घृणा से बिजय प्राप्त नहीं की जा सकती, उसको केवल प्रेम से ही जीता जा सकता है।" सैनिकवाद के इस सर्वव्यापी भूत को केवल व्यक्तिगत उदाहरण के जादू से हीं उतारा जा सकता है, गुन-गुनाये हुए राजनीतिक जादूटोने और देश स्थिति के जादू से नहीं; क्योंकि वह अब बिल्कुल प्रभावशून्य बन गये हैं। किसीं दिन सभी सरकारें निःशस्त्र हो जावेंगी, किन्तु इस समय वह व्याकुल हैं। तो भी सरकार के छोर को पकड़ना, सदा ही व्यक्त का अवसर होता है। जब कि राजनीतिक लोग हिचर मिचर करते और टालमटोल कर रहे हैं, शान्तिवादियों को आगे बढ़

कर अपने अस्त्र शस्त्र इस निश्चय के साथ रख देने चाहियें कि वह उनको उसी प्रकार फिर कभी न छुएंगे, जिस प्रकार युवा पुरुष अपने बाल्यावस्था के वस्त्रों को कभी नहीं छूता। किन्तु किसी न किसी को आरम्भ करना चाहिये और आप ही वह किसी न किसी हो सकते हो। यह हो सकता है कि आप सभाओं की कार्यवाहियों और मन्त्रिमण्डलों की नीति पर प्रभाव न डाल सको; किन्तु आपको अपने व्यक्तिगत जीवन में तो पूर्ण शक्ति और स्वतन्त्रता है। आपको कोई भी सैनिक शक्ति शान्तिवाद का अभ्यास करने तथा उसका कारखानों, खेत, बाज़ार, जेलख़ाने और सम्भवतः फांसी के तख्ते तक पर प्रचार करने से नहीं रोक सकती। आप नम्रता किन्तु दृढ़ता और अभिमान पूर्वक कह सकते हैं, "मेरे हृदय और घर से तो युद्ध का विचार सदा के लिये निकल गया। अच्छा हो कि यह संसार भर के सभी मनुष्यों के हृदयों और घरों से भी शीघ्र निकल जावे।"

इस भारी कार्य के महत्व को कम मत समझो। प्रत्येक युग की अपनी ही महत्वपूर्ण समस्याएं और उसके उच्चकोटि के उन्नति-शील आन्दोलन रहे हैं। भिन्न २ समय में वीरों ने बौद्ध, ईसाई, प्रोटेस्टैंट, प्यूरीटन, निषेधवादी, प्रजातन्त्रवादी और समाजवादी होने के अपराध में विद्रोहियों और धर्मविरोधियों के रूप में कष्ट सहन किये हैं। आज युद्ध के मनुष्यजाति को मृत्यु के मुख में डालने वाली सब से बड़ी आपत्ति और बुराई होने के कारण

शान्तिवाद उन्नति और प्रतिक्रिया के बीच सीमा की स्पष्ट रेखा है। यदि आप इस कर्तव्य से जी चुरावें तो आप अन्य अनेक छोटे २ ढंगों पर सेवा कर सकते हैं, किन्तु तब आप मनुष्यजाति के रक्षकों में अपने स्थान से भाग जावेंगे। लावेल की इस चेतावनी को स्मरण रखो—

"प्रत्येक मनुष्य और राष्ट्र के सन्मुख एक बार निश्चय करने का
समय आता है। कि
वह सत्य और असत्य के झगड़ों में, अच्छे का साथ दे या बुरे का।
... ...
हम वर्तमान में छोटे बड़े और शिथिल विश्वास को थोड़ा २ देखते हैं
कितना भी निर्बल हाथ भाग्य की लोहे की पतवार बन सकता है;
किन्तु आत्मा तब भी गूढ़ है, बाज़ार के कोलाहल वाले दंगल में,
अन्दर की भविष्यवक्ता महात्मा वाली गुफा में से यह कठोर तथा
अशुभ शब्द सुनाई देता है
'पाप के साथ समझौता करने वाले अपने बच्चों के बच्चों को भी
दास बना देते हैं।"

जनतन्त्र शासन प्रणाली

विभिन्न देशों में जनतन्त्र शासन प्रणाली भी अनेक अत्याचार करती जा रही है। अत्याचार प्राप्त मनुष्यों ने अपने भयानक कष्टप्रद शब्दों और दुःख की निराशापूर्ण भविष्यवाणियों से वायु को भर दिया है। वह यह घोषणा करते हैं कि जनतंत्र शासन प्रणाली मर रही है अथवा मर चुकी है। एच० जी०

वेल्स (H. G. Wells) ने निर्भयता पूर्वक अपने एक ग्रन्थ का नाम 'जनतन्त्र के बाद' रखा है। जनन्त्र प्रणाली का एच० स्नेल (H. Snell) नामक एक सच्चा मित्र कहता है, "हमारे पास पहिले से एकाधिकार वाली सरकारें हैं और जनतन्त्र प्रणाली तो जनहित की दृष्टि से पहिली प्रणाली से भी कम सुरक्षित है।"

कहीं २ तो इच्छा विचारों को उत्पन्न करती है। जन-तन्त्र की बढ़ती हुई लहर ने हमारे वर्ग शास्त्र वाले समाज के प्राचीन गढ़ों को भी बहा लिया है। अल्प सत्ता के शासन वाले प्रत्येक पीढ़ी में बढ़ने वाली इन लहरों के बड़े भय के साथ बरा-बर ऊपर चढ़ते हुए देखते और अपने धन और सम्मान के लिये कांप रहे हैं। श्रमिक जनता की लूट पर आनन्द मनाने वाले सभी लोग जनतन्त्र की आपत्ति पर प्रसन्न हो रहे हैं। किन्तु जनतन्त्र प्रणाली पर्वत पर बरसने वाली वर्षा और बरफ के समान एक निर्बाध शक्ति है; विशेष कर जिस समय यह बुद्धि-वाद के साथ उसकी अटूट मित्रता में बँधी होती है तो इसको कोई नहीं रोक सकता। अल्प सत्ताक शक्ति वाले जनतन्त्र प्रणाली और बुद्धिवाद की चक्की के ऊपर और नीचे के पाटों में समय पर पिस कर पूर्णतया चूर्ण हो जावेंगे। यदि जनता कोई ईश्वरवाद के अन्ध विश्वास अथवा अध्यात्मिक निराशा-वाद की लोरियों से थपक २ कर न सुला दिया गया तो वह इस पार्थिव जीवन में संस्कृति के उच्च मान को मांगेंगे। जिस प्रकार

बरफ़ के पर्वत बरफ़ के अन्दर अथवा नीचे गिरने वाले अभागे पहाड़ियों की अस्थियों तक को पीस डालते हैं, उसी प्रकार संसार भर के सम्पत्ति हीन करोड़ों प्राणियों की सङ्गठित शक्ति का दबाव अत्याचारी तथा धनी लोगों को समाप्त कर देगा। जनतन्त्र प्रणाली बिना बुद्धिवाद के कभी विजय प्राप्त नहीं कर सकती, क्योंकि इसके बिना जनता और उसके नेता सदा ही मुक्ति और निर्माण की खाली छाया का पीछा करके धोखे में पड़ते रहेंगे। किन्तु यदि जनतन्त्र प्रणाली बुद्धिवाद के कवच को पहिन लेगी तो वह सब कहीं सफलतापूर्वक मुक़ाबला करके विजय प्राप्त करेगी। जनतन्त्र प्रणाली मार्ग में कहीं रुक कर भले ही देर लगा दे, किन्तु उसका आविर्भाव अनिवार्य है। साधारण लोगों की चक्कियां धीरे २ पीसती हैं, किन्तु वह अत्यन्त बारीक पीसती हैं। अब की बार बुद्धिवाद का दमन किसी प्रकार न किया जा सकेगा, क्योंकि यह विज्ञान और वैज्ञानिक शिक्षा का आवश्यक परिणाम है। विज्ञान स्वयं अल्पसंख्यक शक्तिवालों के हाथ में भी पूर्णतया सुरक्षित है, क्योंकि वह पूंजीपतियों को लोभ के स्वप्नों से भी अधिक धनी बनाता है। यह मशीनों का आविष्कार करता है, जिनसे कारखाने बनते हैं। कारख़ाने मालिकों की पूंजी को अधिक बढ़ाते हैं, किन्तु साथ ही वह श्रमिकों को एक समूह के रूप में संगठित करते हैं। वह उनको मैसीडोनिया के सैनिकों का ऐसा व्यापारिक जत्था बना देते हैं, जो पूंजीपतियों के धन और उनके किराये के सैनिकों के द्वारा किसी

प्रकार नहीं तोड़ा जा सकता। कारख़ाने पूंजीपतियों के लोभ के द्वारा बनाये हुए वास्तव में ही विनाशक शक्ति है; वह अपने निर्माता को ही पूर्णतया नष्ट कर देते हैं। केवल विज्ञान और वैज्ञानिक शिक्षा ही जनता की ईश्वरवाद और अन्ध विश्वास की नींद को तोड़ेगी और जब जनता पूर्णतया जग जावेगी तो सब अल्पसंख्यक शक्ति वालों और उनकी नीच सन्तति पर आपत्ति आ जावेगी।

ईटली के अत्यत कष्ट सहन करने वाले प्रजातन्त्रवादी टॉमैसो कैम्पैनेला (Tommaso Campanella) ने जनता की इस शक्ति का तीन सौ वर्ष पूर्व की एक कविता में इस प्रकार वर्णन किया है—

"लोकमत कीचड़ से भरे हुए मस्तिष्क वाला एक पशु होता है,
जिसको स्वयं अपनी ही शक्ति का पता नहीं होता, और इसलिये वह
लकड़ी और पत्थर से लदा हुआ खड़ा रहता है; एक सामान्य बच्चे के
निर्बल हाथ भी उसको बाग अथवा लगाम से मार्ग प्रदर्शन करते
रहते हैं:
उसकी श्रृंखला को तोड़ने के लिये एक ठोकर ही काफी होती है;
किन्तु पशु डरता रहता है, और बच्चा जो चाहता है वह
वही करता है वह अपने भय को स्वयं ही नहीं समझता,
और व्यर्थ के हउवे से गड बड़ मे पड़ कर मूर्ख बनता रहता है।"
(जे० ए० साइमंडस्)

अतएव इस सैनिकवाद अथवा फासिस्टवाद के किसी रूपसे

भी मत डरो; यह एक अस्थायी कार्य और पूंजीवाद के बुझते हुए दीपक की अन्तिम चमक हैं। जनतन्त्र प्रणाली शीघ्र ही अधिक लम्बा और ऊंचा कूदने के लिये थोड़ा पीछे को हट रही है। यहां तक कि निर्दय फासिस्टवाद भी ट्रेड यूनियनों को जो सामान्य श्रमिकों के दृढ़ संगठन है, भंग करने में सफल न हो सका। यह जनतन्त्रवादी 'नेताओं' को (जिनमें अनेक नाम लेने योग्य भी नहीं है) देशनिर्वासित कर सकता और उनको जेल भेज सकता है, किन्तु वह न तो विज्ञान को देशनिर्वासित कर सकता है और न वह सभी कारखानों अथवा ट्रेड यूनियनों को बन्द कर सकता है। जब तक विज्ञान जीवित है, जनतन्त्र प्रणाली के लिये पूर्ण आशा है। विज्ञान अब अमर हो गया है। फिर चाहे किसी भी वर्ग का शासन क्यों न हो। विज्ञान हमको रोटी, कपड़े, जूते, घर, सीनेमा, पुस्तकें और दैनिक आवश्यकता की सभी वस्तुएं देता है। मनुष्यजाति की दुधारू गाय होने के कारण इसको चारा दे २ कर मोटा किया जाता रहेगा। जिस प्रकार वायु के लेशमात्र झोंके से ही मच्छर भाग जाते हैं, उसी प्रकार विज्ञान के निश्वास में अन्ध विश्वास नहीं रह सकता। दिलीला (Delilah) नामक सुन्दरी की चालाकी के बिना जन साधारण के बलवान् सैमसन (Samson) को बांध कर शत्रुओं द्वारा अंधा नहीं किया जा सकता। खेद है कि आज उसकी वास्तव में ऐसी ही दशा है। अंधविश्वास के नष्ट हो जाने पर जनता के करोड़ों कण्ठों से निकली हुई धन, आराम और शिक्षा

की ध्वनि अल्पसंख्यक शक्ति वालों की मृत्युघन्टी को इतनी सुगमतासे बजा सकेगी, जितनी सुगमता से विस्फोटक डैनोमाइट की सुरंग मार्ग में आने वाले पर्वतों को उड़ा देती है। जैसा कि बुद्धिमान् डे टौकेविले (De Tocqueville) ने पूछा है, "क्या कोई विश्वास कर सकता है कि बादशाहों को जीतने और सैनिक ज़मीदारी प्रथा को नष्ट करने वाली जनतन्त्र प्रणाली व्यापारियों और पूंजीपतियों के सन्मुख सिर झुका देगी ?"

एक ओर आप जन साधारण को संगठित करके शिक्षित करते जाओ तो साथ ही साथ अंधविश्वास के विरुद्ध युद्ध भी करते जाओ, उस समय जनतन्त्र प्रणाली की विजय हेली के पुच्छलतारे के वापिस आने के समान निश्चित होगी। फ्रांस के दोनों नेपोलियन सोचतेथे कि फ्रांसकी अन्तिम जनतन्त्र शासन प्रणाली को वह समाप्त कर चुके। उनकी मृत्यु तो देशनिर्वासन की दशा में हुई, और फ्राँस की जनतन्त्र शासन प्रणाली अब पूर्व की अपेक्षा कहीं अधिक प्रबल है। फासिस्टवाद (सैनिकवाद) का छोटा सा युग एक नाट्यशाला के इण्टर्वेल (बीच की छुट्टी के समय) के समान हैं, इस बीच में भांडों और नक़ालों को रंगमंच पर नक़ल करने की अनुमति दे दी गई हैं। जनतन्त्र प्रणाली दृश्य के पीछे अगले अंक के योग्य वस्त्रादि से तयार हो रही है, जिसमें वह पूंजीवाद की चिथड़ों से ढकी हुई भूखी नौकरानी का रूप धारण करेगी। किन्तु वास्तव में वह अपने हाथ में स्वतन्त्रता का झंडा धारण किये अपने समानता की देवी के रूप में पहिले से भी

अधिक सुन्दर, तेजस्वी, प्रतापी और प्रशंसनीय दिखलाई देगी। इस पीढ़ी में उत्पन्न होने वाले हम लोगों को यह अमूल्य सुविधा प्राप्त हुई कि हम

"खेद जनक लम्बी रात्रि के समाप्त होने पर
प्रात:कालीन उषा के समय।"

उत्पन्न हुए हैं। हम इस पवित्र उषा काल में काम करते हुए उस समय की प्रतीक्षा कर रहे हैं। जब हम जनतन्त्र प्रणाली के भक्त यात्रियां को आनन्द दायक दृश्य प्रदान किया जावेगा। इसी लिये में कहता हूँ कि, "काम करो, ठहरो और प्रतीक्षा करो और क्लान्ति तथा थकान मत होने दो। प्रकाश के फैल जाने पर पूर्णतया जग जाओ, और हमारी श्रम की देवी मशीन की दयालु और तेजस्वी देवी अत्यन्त कृपा और अनुग्रह करके अपनी पूर्ण कलाओं में आपको प्रत्यक्ष होकर दर्शन देगी वह आपको शांति, बहुलता, पुस्तकें और चित्र सभी प्रकार के उपहारों को देगी। पूर्णतया जग जाओ!

२. स्वतन्त्रता

जनतन्त्र प्रणाली और स्वतन्त्रता सदा साथ ही साथ रहती हैं। वह एक ही मुद्रा के अगले और पिछले भाग हैं। सभी नागरिकों को भाषण, सभा, समिति, वादविवाद, छापेखाने और समालोचना की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिये। यूनानियों की 'भाषण की निर्भीकता' अपने पूर्ण रूप में मानवी व्यक्तित्व की स्वा-

भाविक सुविधा है। मनुष्य की उत्पत्ति के समय उसकी जिव्हा धागे में और हाथ हथकड़ियो से नहीं बंधे हुए हैं अपनी इच्छा के अनुसार सोच न सकना, बोल न सकना और काम न कर सकना—मनुष्यता से गिरा हुआ होना है। ऐसा जीवन तो पशु पक्षियों से भी अधिक गिरा हुआ है, क्यों कि वह अपनी इच्छा-नुसार तो रहते हैं। केवल स्वतन्त्र स्त्री और पुरुष ही सीधा चल सकते, सत्य बोल सकते, और मनुष्यजाति के पूर्ण रूप को प्राप्त कर सकते हैं। पूर्ण स्वतन्त्रता एक कोमल उपजाऊ भूमि है, जिसमें व्यक्तित्व उगता, पकता, और सुन्दरता, ज्ञान, गुण, आनन्द और प्रेम के सुन्दर फलों को देता है। केवल स्वतन्त्र मनुष्य ही यह कह सकता है कि "मैं सोचता, अनुभव करता और इच्छा करता हूं; और इसी कारण मेरा अस्तित्व है॥" केवल स्वतन्त्रता ही मनुष्य को मशीन के ऊपर उठाकर उसमें आवश्यकता से अधिक उत्पादक शक्ति उत्पन्न करती है। यह प्रत्येक व्यक्ति को उसी रूप में प्रगट होने योग्य कर देती है, जिस रूप में उसे प्रकृति ने बनाया है। उसका वह प्राकृतिक रूप शक्ति, कानून और प्रथा द्वारा कुचला, दबाया अथवा नष्ट किया हुआ नहीं होता। प्रत्येक आत्म संवेदन और आत्म विकास वाला आत्मा जन्म के समय कहता है (यदि हम उसको समझ सकते), "स्वतन्त्रता मेरा अधिकार है, मुझको किसी को दाबना और दास बनाना नहीं चाहिये। मैं अपने रूप में स्वयं ही कानून हूं। यदि दूसरे मुझे सहायता करें तो अच्छा; किन्तु मेरी उन्नति में

कोई भी बाधा न डालें। मेरे हाथ खुले हुए हैं, मैं सदा के लिये मैं ही हूं। मैं कानून से भी पूर्व था और अब भी हूं।" प्रत्येक आत्मा यह कहता है। उसकी स्वतन्त्रता को बेड़ियों में बांधने वालों को धिक्कार है। मस्तिष्क किसी प्रकार की बाधा को सहन नहीं करता। विश्वराज्य व्यक्तित्व को पवित्र समझ कर उसका सम्मान करेगा। किसी का मुख बन्द नहीं किया जावेगा, क्योंकि तीक्ष्ण जिव्हा गन्धक की तीक्ष्ण गन्ध को सुखाने वाले उस समय कोई विशेषाधिकार न होंगे। स्वतन्त्रता समानता की उपजाऊ भूमि में ही अच्छी फूलती है, वहां वह धनी लोगों की रुपयों की थैलियों के बोझ से नहीं कुचली जाती। स्वतन्त्रता ही उन्नति की बलशालिनी माता भी है, वह उसकी प्यारी माता और बाल्यावस्था की कोमल धाय है। जिस प्रकार चमगीदड़ सूर्य के प्रकाश से डरती है उसी प्रकार तर्क न करने वाला अनुदारवाद समालोचना से डरता है। किन्तु विश्व-राज्य उन्नति को अपने मौलिक रूप में स्वीकार करेगा। वह यूनान, भारत और चीन की प्राचीन शासन सम्बन्धी विधियों के समान शीशे की ढली हुई तख्ती के समान स्थिर नहीं है। जिस प्रकार वैज्ञानिक को नये २ आविष्कारों से आनन्द आता है, उसी प्रकार वह नये २ प्रयोगों और संस्थाओं से प्रसन्न होगी। उसके स्वप्न से खाली कोई दिन न होगा, कोई माह नवीनता से शून्य न होगा, उसकी कल्पना से शून्य कोई वर्ष न होगा। नागरिक लोग निराश प्रेमी के कष्टकर शब्द को लॉक्सले हाल (Locksley Hall) में

निम्न रूप में सुनेंगे, "आकाश दीपक के अन्तर को व्यर्थ मत जाने दो। एक पंक्ति बना कर आगे बढ़े चलो। यह बड़ी भारी पृथ्वी परिवर्तनों में से सदा ही आगे बढ़ती रहे।" दान्ते द्वारा फ्लोरेंस की निम्न लिखित गलत निन्दा विश्वराज्य का अभिमानी शब्द होगी—

"...........तू, कैसी धूर्त है,
जिस सूत को तू अक्तूबर में बुनती है
वह वनम्बर तक समाप्त हो जाता है,
तेरी स्मृति में कितनी २ बार
प्रथाएं, कानून, मुद्राएं और पद
बदले गये हैं और जातियों को नवीन रूप दे दिया गया है।"

आज हम जानते हैं कि उन्नति परिवर्तन और विभिन्नता पर ही निर्भर है। अतएव सभी नागरिकों को समालोचना और मतप्रकाश करने की पूर्ण स्वतन्त्रता दी जानी चाहिये। नया विचार सदा ही एक या अनेक मस्तिष्कों में उत्पन्न हुआ करता है। समाज उस पर विचार करके या तो उसमें सुधार करती है अथवा उसे उसी रूप में स्वीकार कर लेती है। स्वतन्त्रता के अभाव के परिणाम स्वरूप बुद्धि कुण्ठित रह जाती है। दासबुद्धि में या तो नये विचार आते ही नहीं और यदि आते भी हैं तो वह तत्काल ही नष्ट हो जाते हैं। नये विचारों को उत्पन्न न होने देना अथवा उनको दूसरे वस्त्र पहिना देना मनुष्य जाति के विरुद्ध भारी अपराध है। इस प्रकार की आत्मिक बालहत्या

प्राचीनकाल की अरब और स्पार्टा वालों की बालकों को धूप में पड़े रखने की प्रथा से लाखों गुनी अधिक निन्दनीय है। मिल्टन ने कहा है. "एक अच्छी पुस्तक को नष्ट करना एक अच्छे मनुष्य को मारने के समान है।" किंतु इस पर मैं यह कहना चाहता हूं कि "अच्छे विचार को मारना एक अच्छे मनुष्य को मारने के समान है।" विश्व राज्य इस नीति की घोषणा करेगा। बच्चे उत्पन्न करने के लिये सन्तति निग्रह के सिद्धान्त का कठोरता से पालन करना होगा, किन्तु विचारों और आदर्श के लिये कोई सन्तति निग्रह का नियम न होगा। उत्पादक मस्तिष्क यथासम्भव अधिक से अधिक नये २ विचारों और आदर्शों को उत्पन्न करें। उनको टिड्डियों और चूहों के समान अधिकता से उत्पन्न होने दो। फिर विचारों का कठोर संघर्ष उनके भाग्य का स्वयं ही निर्णय कर देगा। पूर्ण स्वतन्त्रता के वातावरण में सब से अधिक योग्य विचार ही जीवित रहेगा। तब राज्य उन विचारों को स्वीकार करके उनको पूर्ण तथा उन्नत करेगा।" व्यक्तिगत स्वतन्त्रता में बाधा डालने वाला समाज वास्तव में अपना गला स्वयं ही घोटता है। वह अत्यधिक स्थिरता के कारण मर जावेगा। स्थिर जल में भी कीड़े पड़ जाते हैं। बिना स्वतन्त्रता के समाज में मस्तिष्क की वह गति न होगी, जो सामाजिक स्वास्थ्य के लिये सब से उत्तम व्यायाम है। उन्नति करने के लिये रेबेले (Rabelai) का निम्न लिखित प्रसिद्ध नियम सब से अच्छा है, "जो चाहो सो करो।" स्वतन्त्रता की

प्रतिभाशालिनी पुजारिन की यह पूर्ण देववाणी है।

पैस्कल (Pascal) कहता है, "मनुष्यों के लिये अत्यधिक स्वतन्त्रता अच्छी नहीं होती।" किन्तु मैं कहता हूँ कि जिस प्रकार हम अत्यधिक वायु नहीं ले सकते। उसी प्रकार अत्यधिक स्वतंत्रता भी नहीं ले सकते। आज आप और मैं जिस बड़ी से बड़ी स्वतन्त्रता का विचार कर सकते हैं, पूर्ण स्वतन्त्रता के आदर्श से वह भी कम ही है।

कुछ विद्वानों ने इस विचित्र प्रश्न पर वादविवाद किया है, "स्वतन्त्रता की क्या सीमाएं हैं ?" उन्होंने कुछ फार्मूले निकाले हैं, जो निरर्थक और न समझने योग्य हैं। उनको जीवन पर लागू करना तो अत्यन्त कठिन है। हर्बर्ट स्पेंसर शिक्षा देता है कि, "प्रत्येक मनुष्य को यदि वह किसी दूसरे मनुष्य की स्वतन्त्रता में बाधा नहीं डालता तो अपनी इच्छानुसार कार्य करने की पूर्ण स्वतन्त्रता है।" जान स्टुआर्ट मिल ने लिखा है, "मनुष्य जाति पर व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूप से बाधा डालने का एक मात्र उद्देश्य आत्म रक्षा है; यदि किसी व्यक्ति अथवा समाज पर शक्ति का ठीक ठीक प्रयोग किया जा सकता है तो वह केवल दूसरों को हानि न पहुँचाने देने के लिये। जहां तक उसके व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के अधिकार का प्रश्न है उसमें कोई बाधा नहीं है।" किन्तु मिल ने अपने सिद्धांत का अत्यन्त स्वतन्त्रता पूर्वक प्रयोग किया है, जिसके लिये उसका स्टेफेन, बोसैंकेट मैककन (McCunn) ने खंडन किया है।

बेंजैमिन आर० टकर "सभी नागरिकों के लिये अधिक से अधिक व्यापक स्वतन्त्रता" चाहता था, किन्तु समाज के आक्रमणात्मक तत्त्वों के विरुद्ध वह "रक्षात्मक सभाओं" की स्थापना भी स्वेच्छा-पूर्वक ही करानी चाहता था। जोहेन कैस्पर स्मिट (Johannes Casper Schmidt) 'अभिमानियों की सभा' का प्रस्ताव करके लिखता है, "यदि मेरे ऊपर किसी व्यक्ति को नियत किया जावे तो वह मनुष्य हो अथवा देवता, वह मेरी व्यक्तिगत भावनाओं को निर्बल करता और आत्म-सम्वेदन के सूर्य को मन्द करता है।" प्रोफेसर एल० टी० होबहाउस स्वीकार करते हैं कि "व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के क्षेत्र की "परिभाषा करना अत्यन्त कठिन है और योग्य स्वतंत्रता की सीमा को सिद्धांत अथवा व्यवहार किसी से भी बतलाना सुगम नहीं है।" एच० जे० लस्की इस झूठे दिखाई देने वाले सिद्धांत का प्रस्ताव करके वास्तविक समस्या से पीछा छुड़ाता है, "निषेधाज्ञाएं और उनके नियमों का निर्माण उन्हीं की इच्छा से करना चाहिये, जिन पर उनका प्रभाव पड़ता हो।..........नियम अनुभव के आधार पर बनाये जाने चाहियें और वह सबके स्वीकार करने योग्य हों।" किन्तु तथ्य यह है कि कानून का सारांश ही यह है कि वह अनिवार्य और बरबस रोकने वाला है। वह व्यक्ति की स्वीकृति पर निर्भर नहीं होता। होब्स (Hobbes), हक्सले, कोम्टे, तथा कुछ कैथोलिक विद्वानों की शिक्षा है कि सिद्धांत के राज्य के हस्तक्षेप की कोई सीमा निश्चित नहीं की जा सकती।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दार्शनिक लोग इस विषय पर एक मत नहीं हैं।

मेरा विश्वास है कि यह कठिन गांठ राजनीतिक तर्कशास्त्र की कोमल अंगुलियों से नहीं खुल सकती। इसको आचारशास्त्र की तेज तलवार की एक चोट से ही काट देना चाहिये। मेरी सम्मति में स्वतंत्रता स्वभाव से ही निःसीम और पूर्ण होती है और ऐसा ही उसको होना चाहिये। सीमित स्वतंत्रता शब्द चोकोर वृत्त अथवा चपटे गोलक जैसे शब्दों के समान अपना खंडन स्वयं ही करती है। यदि स्वतंत्रता कानून से सीमित है, तो वह स्वतंत्रता नहीं रहती। छोटे से छोटा कानून भी स्वतन्त्रता को उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जिस प्रकार मनुष्य के शरीर में जाकर प्रूसिक एसिड (Prussic Acid) की एक बूंद ही उसको समाप्त कर देती है। कानून और स्वतन्त्रता में दिन और रात्रि के समान विरोध है। वह कभी भी एक साथ मिल कर नहीं बैठ सकते। स्वेच्छापूर्ण शासन के लिये बुद्धिमत्ता पूर्ण ढंग से क्षमा मांगने वाले हेगेल (Hegel) ने कहा है कि कानून की आज्ञा पालन करने में ही स्वतंत्रता है। सिसेरो ने यह कह कर कि "कानून सम्मत कार्य का करने की शक्ति ही स्वतन्त्रता है" बुद्धि विरुद्ध बात कह डाली है। फ्रांस के सन् १७८६ के प्रसिद्ध घोषणा पत्र में कहा गया था कि "स्वतन्त्रता की सीमा कानून द्वारा ही निश्चित की जा सकती है।" किन्तु कानून बहिःस्थ, विवश करने वाला, सन्दिग्ध, एक समान, और धमकाने

वाला होता है। स्वतन्त्रता आन्तरिक मनुष्य की, वरन् सब से अन्दर के मस्तिष्क की होनी चाहिये। वह स्वेच्छा पूर्ण, सामाजिक और सहयोगपूर्ण होती है। कानून शासन करता है; स्वतन्त्रता उकसाती है। कानून धमकी देता है, स्वतन्त्रता मुस्कराती है। कानून अधिकार प्रगट करता है, स्वतन्त्रता आपके अतिरिक्त अन्य किसी से अनुरोध नहीं करती। जैसा कि शिलर ने कहा है, "कानून ने कभी किसी महान् व्यक्ति को उत्पन्न नहीं किया, किन्तु स्वतन्त्रता देवों और उत्तमोत्तम मनुष्यों को उत्पन्न करती है।" स्वतन्त्रता या तो पूर्ण और निर्बाध हो, अथवा उसका उसी प्रकार कोई अस्तित्व नहीं होता, जिस प्रकार मनुष्य या तो जीवित रहता अथवा मर जाता है। जीवन और मृत्यु के बीच में कोई मध्यवर्ती दशा नहीं होती, कोई शव अर्द्ध मृतक नहीं होता। अतएव 'स्वतन्त्रता की सीमा' के फ़ार्मूलों का निकालना असम्भव है। वायु और धूप के समान स्वतन्त्रता को पतले से पतले धागे में भी नहीं बांधा जा सकता।

यदि आप स्वतन्त्रता की सीमा को किसी नियम द्वारा बांधने की अव्यवहारिकता के विषय से संतुष्ट होना चाहते हैं तो तनिक राष्ट्रों के कानूनों और प्रथाओं पर विचार करो। भूतकाल में वस्त्र, खेल, धर्म और भोजन के सम्बन्ध में राज्य द्वारा नियम बनाये जाते थे। इंगलैण्ड में तेरहवीं से लेकर पन्द्रहवीं शताब्दी तक पार्लियामेंट के ऐक्ट के द्वारा पोशाक निश्चित की जाती थी। एक और समय टेनिस आदि कई खेल कानून द्वारा वर्जित थे। आज

भी एक देश की प्रथा को दूसरे देश में अपराध समझा जाता है। भारत के कुछ देशी राज्यों में गोमांस का खाना कानून द्वारा वर्जित है, किन्तु अंग्रेजों को प्राचीन इंगलैण्ड में अच्छा गोमांस मिलने का अभिमान है। मुसलमानी राज्य बहुपत्नीत्व प्रथा को स्वीकार करते और वेश्यावृत्ति के लिये दण्ड देते हैं; किन्तु प्रायः योरोपीय राष्ट्र और संयुक्त राज्य बहुपत्नीत्व और मारमनवाद * (Mormunism) का विरोध करते और वेश्यावृत्ति को या तो स्वीकार करते अथवा सहन करते हैं। वहाबी राज्य में तम्बाकू पीना वर्जित है, किन्तु फ्रांस और स्वडेन में उसपर राज्य का एकाधिकार है। स्पेन वाले सांडों के युद्ध से बड़े प्रसन्न होते हैं, किन्तु अंग्रेजों ने मुर्गों कीं लड़ाई और भालू की लड़ाई तक को वर्जित कर दिया है; जबकि मृगका शिकार और जीवित पशु को चीरफाड़ डालना उनके यहां वैध है। एक मुसलमानी राज्य में कोई मुसलमान ईसाई अथवा बौद्ध नहीं बन सकता; किन्तु वह अन्य लोगों को इस्लाम की दीक्षा देने में स्वतन्त्र है। चचेरी बहिन के साथ विवाह कुछ देशों में वैध और कुछ में वर्जित है। अफ़गानिस्तान में मद्यपान वर्जित है। किन्तु यूरोप में यह एक ऐसा सामाजिक गुण है, जहां आप 'अपने मित्र के स्वास्थ्य का पीते

* यह संयुक्तराज्य के उटाह (Utah) राज्य का एक ईसाई सम्प्रदाय है। सन १८६० में इसमें खुले आम बहुपत्नीत्व प्रथा प्रचलित थी। इसकी स्थापना सन् १८३० में जोसेफ स्मिथ ने, एक सन् १८११ की सोलोमन स्पौलडिंग की पुस्तक के आधार पर की थी।

हैं।" इंगलैण्ड में आप ईसा और मूसा की निन्दा नहीं करसकते; किन्तु रूस में आप इनकी निन्दा तो कर सकते हैं, किंतु मार्क्स और लेनिन की नहीं कर सकते। भारत में कुछ नागे साधु जुलूस में भी नंगे जा सकते हैं, किन्तु अमरीका में नंगे फिरने वाले को जेल में डाल दिया जाता है। इत्यादि। राष्ट्र केवल इसी व्यवहारिक नियम का अनुसरण करते हुए जान पड़ते हैं कि वह ऐसे कार्यों और विचारों का दमन करके उनके लिये दण्ड देते हैं जो किसी विशेष युग में किसी व्यक्ति अथवा समाज के लिये अत्यन्त भयंकर समझे जाते हैं। किन्तु यह प्रणाली वैज्ञानिक नहीं है। यह नियम शासकवर्ग अथवा समस्त जनता के विचारों रुचियों, तथा अन्धविश्वासों के अनुसार बनाए जाते हैं। व्यक्ति अथवा समाज को अत्यधिक कष्ट किस बात से होता है? सभी सम्प्रदाय, दल और धर्म अपने सिद्धांतों और व्यवहारों को उचित और संसार भरके लिये लाभदायक समझते हैं। यह सारा खेल वास्तव में मूर्खता और अज्ञानता का है, जिसको पुलिस वालों तथा संस्थाओं की सहायता से खेला जाता है। स्वतन्त्रता इस प्रकार की निर्दयता और कानून के दुष्प्रयोग की निन्दा करती है। प्रत्येक स्त्री और पुरुष को पूर्णतया स्वतन्त्र होना चाहिये।

"उनको समुद्र की ओर जाने वाली
नदियों के समान स्वतन्त्र होना चाहिये
उनको हमारे ऊपर बहने वाली
पवन के समान स्वतन्त्र होना चाहिये।" (व्हीटियर)

उचित नियम यह है कि "स्वतन्त्रता की कोई सीमा नहीं होनी चाहिये।" विश्व-राज्य में योग्य शिक्षा तथा अच्छी संस्थाएं गुणी और उन्नत विचार वाले नागरिकों को उत्पन्न करेंगी, जो स्वयं ही ठीक कार्य करेंगे। वह सदा ही बुद्धिमान् साथियों के समान उसी प्रकार आचरण करेंगे, जिस प्रकार जुगनू अंधेरे में अवश्य ही चमकता है। प्रकृति और शिक्षा उनके अपने विचारों, शब्दों और कार्यों से सभी की प्रसन्नता और उन्नति के लिये कार्य करा लेगी। उनको कानूनों की आवश्यकता न पड़ेगी, क्यों कि उनकी पूर्ण स्वतन्त्रता उनके द्वारा कोई भी समाज-विरोधी कार्य न होने देगी। भय के द्वारा प्राप्त कराया हुआ गुण स्वतन्त्र दोष से भी बुरा है, क्यों कि स्वतन्त्र मनुष्य एक दिन गुण की शिक्षा प्राप्त कर सकता है, जब कि दास उसको कभी भी प्राप्त नहीं कर सकता। शक्ति स्वतन्त्रता को नष्ट कर देती है। जब स्वतन्त्रता नष्ट होती है तो गुण भी नष्ट हो जाते हैं। सेंट फ्रांसिस ने अपने साधुओं के लिये दण्ड और जुर्मानों के नियमों को बनाने से इंकार कर दिया तो वह इस तथ्य को स्पष्टतया समझ गया था। उसने प्रेम और कानून को विषाक्त करने के स्थान में सम्प्रदाय की प्रधानता से त्यागपत्र दे दिया। उसने अपने अंतिम दिनों में कहा था, "मैं अपने पद के कर्तव्य का पालन करने के लिये शक्ति प्राप्त कर लेता। किन्तु यह पद पूर्णतया आत्मिक है; मैं राजनीतिक शासकों के समान मारने और दण्ड देने के लिये जल्लाद न बनूँगा।"

स्वतन्त्रता की सीमाओं' पर वादविवाद करने वाले आधुनिक दर्शनशास्त्री अशुद्ध परिणाम से आरम्भ करते हैं। मैं कहता हूं, "हमको अच्छी शिक्षा-संस्थाएं, और नयी आर्थिक तथा राजनीतिक संस्थाएं दीजिये और एक ओर अधिक से अधिक स्वतन्त्रता का प्रसार होने दीजिये। अच्छे नागरिकों को शिक्षा द्वारा तयार करो; सहयोग बढ़ाओ; प्रतियोगिता और दबाव को बन्द कर दो; उस समय उस असीमित स्वतन्त्रता को देने में लेशमात्र भी भय न होगा, जो वास्तव में ही प्रत्येक नागरिक का जन्म सिद्ध अधिकार है।" इस वर्तमान दासता से मुक्त होने का यही ढंग है। दासता में स्वतन्त्र मनुष्य को उसी प्रकार बांध कर अनेक दमानात्मक कानूनों से कष्ट दिया जाता है, जिस प्रकार सेंट सेबैस्टियन (St. Sebastian) को वृक्ष से बांध कर एक सौ बाणों से बींधा गया था। इस विचार को वाल्ट व्हिटमैन ने इस प्रकार प्रगट किया है—

"पूर्ण और स्वतन्त्र व्यक्तियों के महान् विचार के लिये,
नेताओं का नेता कवि टहलता हुआ आगे २ चलता है।
उसकी भावभंगी से दासों को आनन्द आता और विदेशी स्वेच्छाचारियों को भय लगता है।
स्वतन्त्रता कभी नष्ट नहीं हो सकती, समानता कभी पीछे नहीं हट सकती।
वह नवयुवक पुरुषों और सब से उत्तम स्त्रियों में रहते हैं।
(पृथ्वी के अनेक नेता बिना किसी स्वार्थ के सदा ही स्वतन्त्रता के

लिये मर मिटने को तयार रहे हैं।)"

३. समानता

समानता स्वतन्त्रता की ही जौड़िया बहिन है। अमरीका की स्वतन्त्रता की घोषणा में दोनों का एक साथ उल्लेख किया गया है; जैसा कि मैसिंगर (Massinger) कहता है—

"समान प्रकृति ने हम सब को
एक सांचे में ढाल कर सजाया है।"

समानता छै प्रकार की होती है—शारीरिक समानता, आर्थिक समानता राजनीतिक समानता, सामाजिक समानता, सांस्कृतिक समानता, और आचरण की समानता। इस छै प्रकार की समानता के बिना विश्व-राज्य कभी भी समृद्ध और समुन्नत न हो सकेगा।

(क) शारीरिक समानता

हमारा उद्देश्य जाति की शारीरिक स्थिति को उतना समुन्नत बनाने का होना चाहिये कि उसके बल, स्वास्थ्य और सौंन्दर्य में प्रायः समानता हो। अंधों, बहिरों और गूंगों बहिरों को निर्दय अन्याय और असमानता को सहन करना पड़ता है। बल और वीर्य शक्ति में अत्यधिक असमानता झगड़ालुओं और कायरों को उत्पन्न करती है। किसी भी राज्य को बल में इस प्रकार की असमानता को सहन नहीं करना चाहिये जैसी एक अफ़ग़ान और तिब्बत-वासी अथवा रूसी और अफ़गान बौने में होती है। यदि सुंदर

नागरिक थोड़े से ही हैं तो वह अभिमानी और ओछे बन जावेंगे; जबकि बहुत कुरूप स्त्री और पुरुषों को जन्म भर नीचा ही समझना पड़ेगा। बहुत छोटी नाक से कितना दुःख भोगना पड़ता है। इस समय हम सौंदर्य के सुविधा प्राप्त अल्प संख्यक अधिकार में रहते हैं। यह सौंदर्य अत्यंत मधुर और ईर्ष्या योग्य होता है। राष्ट्रों और व्यक्तियों में बल और सहनशीलता की वर्तमान असमानता को व्यवहारिक जनतंत्र शासन के लिये मिटाकर एकसा कर देना चाहिये। ''हमारे पंचायती राज्य में निर्बल और कुरूप नागरिक न होंगे।'' प्राचीन स्पार्टा वालों को तथा नार्वे-स्वेडन वासियों के समान हमारा उद्देश्य यह होना चाहिये।

(ख) आर्थिक समानता

इस विषय पर 'धन के बटवारा' शीर्षक में पर्याप्त विचार किया जा चुका है।

(ग) सांस्कृतिक समानता

शिक्षा की समानता को राज्य की बीमानीति कहा जा सकता है। शिक्षा नागरिकों को राज्य के योग्य बनाती है। यह ऐक्य और एकरसता को स्थापित करती है। यह आचरण का निर्माण करती और आदर्शों को निश्चित करती है, रोटी और जल के समान यह सभी को मिलनी चाहिये। इस समय उच्च शिक्षा पर कुछ धनी परिवारों का ही एकाधिकार है, जब कि लाखों नागरिकों को विज्ञान और साहित्य के उन टुकड़ों पर ही सन्तोष करना पड़ता है, जो कालेजों और विश्वविद्यालयों की मेजों से

गिर जाते हैं। समाज का सांस्कृतिक वर्ग कालेज में शिक्षा पाये हुए स्त्री पुरुषों और आरम्भिक स्कूलों के विद्यार्थियों में विभक्त है। भूमण्डल भर की महिला ग्रेजुएटों ने तो अपनी एक प्रथक ही संस्था बना ली है। उनका वर्ग भाव इतना प्रबल है! कुछ देशों में शिक्षितों और अशिक्षितों में एक स्पष्ट सीमाबन्दी है। शिक्षा सम्बन्धी असमानता आज इतनी अधिक बढ़ी हुई है कि कुछ व्यक्ति तो कतिपय विद्याओं के डाक्टर होते हैं, जब कि जनता का अधिकांश ठीक २ लिख पढ़ भी नहीं सकता। इन दोनों जातियों में मित्रतापूर्ण सामाजिक सम्बन्ध असम्भव हो गया है। शिक्षित पुरुष राजनीति कला और विज्ञान के विषय में वार्तालाप करना चाहता है, जब कि किसान और मज़दूर केवल ऋतु, मज़दूरी, मूल्य, अन्धविश्वास और मूर्खता के सम्बन्ध में ही बातचीत कर सकते हैं। हमको अपने अन्दर डाक्टरों और मूर्खों को नहीं रखना चाहिये। हमको सभी नागरिकों के लिये शिक्षा का अच्छा मान निश्चित कर देना चाहिये, जब कि मौलिक आविष्कार तथा शोध का कार्य विशेष विद्वानों पर छोड़ दिया जावे। इस प्रकार जन्म के समय अनेक प्रकार से असमान स्वाभाविक बुद्धि भी भविष्य में अधिकाधिक समान होती जावेगी। सभी नागरिक अपनी शारीरिक रचना के समान शिक्षा में भी लगभग समान ही होंगे। बुद्धि द्वारा वंश गत परम्परा के नियमों से बच कर निकला जा सकता है। चतुरता का निश्चय से ही जात्युन्नति सम्बन्धी तथा शिक्षा सम्बन्धी वैज्ञानिक प्रणाली से

समान रूप से न्यायपूर्वक बटवारा किया जावेगा। उस समय सभी चतुर और बुद्धिमान् ही उत्पन्न होंगे, सब को एक सी ही शिक्षा दी जावेगी और दोनों वर्ग मिट जावेंगे।

मस्तिष्कों और स्कूल की समानता के अतिरिक्त एक और प्रकार की समानता भी सभी को देनी पड़ेगी। सभी नागरिकों को हाथ का काम तथा मस्तिष्क का कार्य दोनों को ही करने का अभ्यास डाला जावे। इस समय सभी देशों का समाज मस्तिष्क का कार्य करने वालों और हाथ का परिश्रम करने वालों इन वर्गों में बंटा हुआ है। कुछ 'सभ्य पुरुष' यह दिखलाने के लिये कि वह फावड़े अथवा हथौड़े को कभी भी नहीं छूते, अपने नाखूनों को खूब बढ़ा लेते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि श्रमिकों के मस्तिष्क निकम्मे हो जाते हैं और बुद्धिमानों के हाथ निर्बल तथा निकम्मे हो जाते हैं। कुछ शिक्षित स्त्री पुरुष जन्म भर न चूल्हे में फूंक मारते, न कमीज़ में बटन लगाते, न लकड़ी काटते, न अपने कमरे में झाड़ू देते, न बाग में खुदाई करते और न पुस्तक की जिल्द ही बांधते हैं। व्यवहारिक कार्य की आवश्यकता के समय वह लूलों जैसे निःसहाय हो जाते हैं। मनुष्य जाति के इन हास्यचित्रों को 'दर्शन शास्त्र के आचार्य' (Doctors of Philosophy) और एम० ए० जैसी उच्च उपाधियां दी जाती हैं। उनको अपनी अपूर्णता पर अभिमान होता है। किन्तु योग्य शिक्षा, मानसिक योग्यता और हाथ की फुर्ती दोनों में ही उन्नति तथा विकास करेगी। अतएव यदि आप

केवल बुद्धि सम्बन्धी कार्य ही करते हो तो कुछ न कुछ हाथ का कार्य अवश्य किया करो। यदि आप केवल जिव्हा और लेखनी से ही काम लेते हो तो आप जीवन के आधे मिठास से वञ्चित रहते हो। सेंट पाल उपदेशक था और पैदल घूमता भी बहुत था। उसने बड़े ईश्वरवाद के सिद्धान्त के अतिरिक्त बड़े सुन्दर तम्बुओं को भी बनाया। सेंट बेनीडिक्ट के अनुयायी साधु अध्ययन के साथ कृषि सम्बन्धी परिश्रम भी करते थे। हेनरी डी० थारौ (Henry D. Thoreau) एक ग्रन्थकार और व्याख्याता था; किन्तु वह मालीगिरी, बाड़ बनाने, सफेदी करने और पेंसिल बनाने का काम भी करता था। क्लीनथीज़ (Cleanthes) दिनमें दर्शनशास्त्र का और रात में परिश्रम का काम किया करता था। इस प्रकार के महान् मनुष्यों के जीवन से आपको अपने त्रुटि-पूर्ण जीवन की त्रुटि को पूर्ण करने के लिये उत्साहित होना चाहिये। यदि आप केवल एक मस्तिष्क का काम करने वाले हैं तो आप हस्तश्रम करनेका अभ्यास भी अवश्य डाल लो। यदि आप मज़दूर हो तो अपने फुर्सत के समय को अध्ययन और ज्ञान के कार्यों में लगाओ। इस नियम का पालन करने से यह दोनों वर्ग अपने आप मिट जावेंगे।

(घ) राजनीतिक समानता

इस प्रकार की समानता जनतन्त्र शासन में हो सकती है। नागरिकों को वोट देनी चाहिये; सभी को पद ग्रहण करने और शासन में भाग लेना चाहिये। सब को एकसे अधिकार और सुवि-

धायें मिलनी चाहियें। किसी वर्ग को भी अधिकारशून्य न रखा जावे। पदों पर किसी जाति अथवा वर्ग का एकाधिकार न हो। वंश परम्परागत किसी प्रकार के दावों को स्वीकार न किया जावे। राज्य में सब पूर्णतया समान हों। राज्य बिना समानता के केवल दासों की बस्ती के समान होता है। शेली ने उसकी प्रशंसा में ठीक ही कहा है—

"हे स्वर्गीय समानता ! तू सब वस्तुओं से बड़ी है।
बुद्धि और प्रेम तेरे तुच्छ सेवक हैं।"

(ङ) सामाजिक समानता

विश्वराज्य में समान नागरिक होंगे, स्वामी और सेवक नहीं। सभी प्रकार की व्यक्ति सम्बन्धी सामाजिक विशेषता पर प्रतिबन्ध लगा दिया जावेगा। सब को एक सा खाने, पीने और बिना किसी प्रकार की बाधा के विवाह करने की स्वतन्त्रता होगी। पदवियां कोई न दी जावेंगी। विश्वराज्य में सब 'सहयोगी' (Comrade) ही होंगे। उसमें कोई भी नाइट, लार्ड, अर्ल, विस्काउण्ट, पाशा, सरदार, माननीय और दीवान आदि न होंगे। कोई भी नागरिक अपने को उस प्रकार मोर के पंखों से सजाना पसन्द न करेगा। यदि आप 'सहयोगी' (कामरेड) के प्रतापी पद से सन्तुष्ट नहीं हो तो आप एक व्यर्थ अभिमान करने वाले मूर्ख हो और आपको अच्छी शिक्षा मिलनी चाहिये। जाओ राबर्ट से यह शिक्षा लो—

"आप लार्ड कहलाने वाले एक अकड़ कर चलने वाले को उधर देखते हो,

उसको देखने से उसमें अकड़ की क्या विशेषता दिखाई देती है,
उसके शब्द का पूजन दो सौ व्यक्ति करते हैं,
अपनी उस प्रवृत्ति पर उसको केवल मूर्ख ही समझा जाता है।
क्यों कि अपनी उस प्रकृति से
कुछ उसकी शान नहीं बढ़ती,
उनकी बुद्धि, अभिमान और योग्यता का गर्त
उससे कुछ उच्च स्थान तक नहीं भर जाता।"

(च) आचरण की समानता

नागरिकों के अन्दर या तो समान गुण प्रगट किये जावें, नहीं तो राज्य की मृत्यु हो जावेगी। सभी को निःस्वार्थी, संयमी और परिश्रमी होना चाहिये। आचरणशास्त्र के समान मान को बनाना चाहिये। साधुओं और दुर्जनों का समाज अधिक दिन नहीं चल सकता। इस समय नागरिकों की नैतिक बुद्धि और योग्यता उसी प्रकार विषम है, जिस प्रकार पृथ्वी तल मैदानों, पहाड़ियों और पर्वतों से विषम है। कुछ व्यक्ति अत्यन्त गुणी और प्रशंसनीय होते हैं, जब कि अनेक दुर्गुणी और दुष्ट होते हैं। इतिहास हम को प्लैटो और क्रीटिअस (Critias), नीरो और सैंट पाल, एलेरिक और सेंट जेरोम, अजातशत्रु और बुद्ध, लैण्ड्रू और ईरीगोयेन जैसे समसामयिक व्यक्तियों का परिचय देता है। इस प्रकार की आचरण सम्बन्धी असमानता राज्य के लिये भयंकर है; क्यों कि राज्य को सुरक्षित और समधरातल की आवश्यकता है। यह एक ओर अयथार्थ आदर्श

और दूसरी ओर भयंकर दुराचार को उत्पन्न करती है।

सहयोगिता और नागरिकता को आचरण सम्बन्धी समानता से स्थापित करके उसकी रक्षा करनी चाहिये। उसकी स्थापना शिक्षा की उत्तम प्रणाली से ही की जा सकती है।

इस छै प्रकार की समानता को प्राप्त तथा अनुभव करने के पश्चात् हम समान बन्धुत्व (भाई चारे) का वर्णन करेंगे।

समानता के लिये आपका कर्तव्य

जनतंत्र शासनप्रणाली, स्वतंत्रता और समानता के यह सिद्धान्त हैं। इन्हीं के आधार पर सहयोगी सर्वसाधारण राज्य की स्थापना की जावेगी। किन्तु आप पूछ सकते हैं, कि "इन सिद्धान्तों को सहायता देने के लिये मैं क्या कर सकता हूं?" आप बहुत कुछ कर सकते हैं। यदि आप ऐसे देश में रहते हैं जहां जनतन्त्र शासन प्रणाली नहीं है तो वहां आप सार्वजनिक मताधिकार और ऐंसी उत्तरदायी सरकार स्थापित करने के लिये आन्दोलन करो, जो व्यक्तियों और सभाओं की स्वतंत्रता के सभी अधिकारों को स्वीकार करके उनकी रक्षा करे। एक राजनीतिक समिति की स्थापना करो, सभाएं किया करो, व्याख्यान दिया करो, प्रस्ताव पास किया करो तथा जनमत को अन्य प्रकार से तब तक शिक्षित करते रहो जब तक राजा और अल्पसंख्यक सत्ताधारी झुक कर नवीन शासन-विधान को स्वीकार न कर लें। इस बात को स्मरण रखो कि दासता का अस्तित्व पृथ्वी के कुछ भागों में अब भी है उसको पूर्णतया बन्द

करने के आन्दोलन में सम्मिलित होकर उसको सहायता दो। अन्य देशों की सभी जनतन्त्र प्रणाली वाली संस्थाओं की सहायता करो। उन बड़ी २ क्रान्तियों के इतिहास का अध्ययन करो, जिन्होंने गत चार सौ वर्षों में हालैण्ड, इंगलैण्ड, अमरीका, फ्रांस और स्पेन की राजनीतिक तथा सामाजिक संस्थाओं की एक दम कायापलट कर दी। फ्रांस के उस जनतन्त्र दल के प्रतापी वर्णन को ध्यानपूर्वक पढ़ो जिसको सन् १८७० में अन्तिम रूप से विजय प्राप्त हुई। उस रूसी आन्दोलन का भी अध्ययन करो, जिसने स्वतन्त्रता के सच्ची लगन वाले अनेक देवदूतों और आत्मबलिदान करने वालों को उत्पन्न किया। यदि आपके देश को पार्लियामेण्ट सम्बन्धी जनतन्त्र शासन प्रणाली प्राप्त हो चुकी है, तो प्रत्येक प्रश्न के जनमत-निर्णय से ही तय किये जाने का आन्दोलन करो। प्रत्येक समय पदाधिकारियों अथवा प्रसिद्ध बहुमत से स्वतन्त्रता की रक्षा करने के लिये सावधान तथा यत्नशील रहो। यदि आपको इन आन्दोलनों में अधिक बलिदान करना पड़ा है तो अन्य आत्म-बलिदान करने वाले वीरों के विषय में विचार करो। कैम्पनेला (Campanella) छब्बीस वर्ष तक जेलखाने में रहा। ब्लैंकी (Blanqui) भिन्न २ समय पर कुल मिला कर सैंतीस वर्ष तक जेलखानों में रहा। वेरा फाइनर (Vera Figner) श्लूसेलबर्ग (Schluesselburg) में बीस वर्ष तक बन्द रहा था। इसके अतिरिक्त रूसों (Rousseau), डाइडेरॉट (Diderot), मैरट (Marat),

बौनैरोटी (Bounarroti), विक्टर ह्यूगो, गैरीज़न (Garrison) अर्नेस्ट जोन्स, लेरौक्स, (Leroux), पेन (Paine), हर्ज़ेन (Herzen), क्रोपोटकिन (Kropotkin), मार्क्स, मैज़िनी, बैकुनिन (Bakunin), प्लेखानौ (Plekhanov), सन यात-सेन, लेनिन, लौरौफ (Lovroff), डे लिओन (De Leon) डेब्स (Debs), लुईज़ माइकेल (Louise Michel), ओवेन, सेंट. साइमन, फौरियर (Fourier), ब्लैंक (Blanc), महात्मा गांधी तथा अन्य प्रसिद्ध जनतन्त्र वादियों और समाज-वादियों के जीवन चरित्रों को पढ़ना चाहिये। मनुष्य जाति के इन उद्धारकों के जीवनचरित्रों से आपको पता लगेगा कि जनतन्त्र शास्त्र प्रणाली और स्वतन्त्रता के वीरों ने सदा निर्धनता, देशनिर्वासन और कष्टों को ही भोगा है। उन्होंने अपने बलिदान की शक्ति से अल्प संख्यक सत्ताधारियों और स्वेच्छा-चारियों की बड़ी २ शक्तिशाली शासनप्रणालियों को भी उलट दिया। बलिदान की जादू की शक्ति के सन्मुख साम्राज्य और पूंजीपतियों की सभी सेनाएं और शक्तियां अन्त में निष्फल और निस्सहाय सिद्ध होती हैं। बलिदान ही धनियों की निर्दयता और निर्धनों के कष्टों को समाप्त कर सकता है। किंतु बलिदान धन, स्वास्थ्य, प्रेम और जीवन तक का करना पड़ता है। आत्म समपर्ण करो और संसार की विजय करो ! इस के अतिरिक्त जहां कहीं आप रहते हो अपने चारों ओर देखो; अपने देश के अत्याचार पीड़ित निर्धनों को शिक्षित और संगठित करो । ऐसे निर्धन

आपको किसानों, कृषक मज़दूरों, उम्मेदवारों, कारखाने के मज़-दूरों, घरेलू सेवकों, दूकान के सहायकों, क्लर्कों तथा अन्य उन लोगों में मिलेंगे, जिनको परिश्रम शक्ति से अधिक करना पड़ता और भोजन पेट से कम मिलता है और जिनका धनी लोग सदा पसीना निकाला करते हैं। उनकी परिस्थिति को सुधारने के लिये उनमें ट्रेड यूनियनों का संगठन करो। ट्रेड यूनियन वाद समा-नता का प्रथम चरण है। पीड़ित वर्ग में से एक राजनीतिक मज़-दूर दल भी बनाओ। उत्पत्ति और खपत के लिये सहयोग समि-तियों की स्थापना करो। राजनीति, अर्थशास्त्र तथा अन्य विषयों की शिक्षा के लिये स्कूलों और रात्रि कक्षाओं की स्थापना करो। चतुर्मुख मज़दूर आन्दोलन की उन्नति करो। वह आन्दोलन ट्रेड यूनियन वाद, राजनीतिक आन्दोलन, सहयोग और स्वतंत्र शिक्षा है। यह संसार व्यापी मज़दूर आन्दोलन के चार पंख हैं।

इस सब से अधिक अपने दैनिक जीवन में जनतंत्रवाद, स्वतंत्रता और समानता का अभ्यास करो। सरकार तो धीरे २ ही बदलेगी, किन्तु आपका दैनिक जीवन ऐसी प्रतापी संस्था है, जिसकी आप तुरंत स्थापना करसकते हो। सबसे सहयोगियों जैसा समान व्य-वहार करो। धनियों की चापलूसी मत करो और निर्धनों को घुड़की मत दो। अपने स्वभाव और रुचि में सरल बनो। तुच्छता से घृणा करो; पूंजीपति समाज के सभी प्रकार के सम्मान और उपाधियों का त्याग करो। विलासिता का विषके समान त्याग करदो। सब के प्रति सदा सहनशील बने रहो। किसी को विवश करके

उसको अपने से सहमत मत बनाओ। राजनीति और धर्म में मत भेद रखने वालों के अधिकार का सम्मान करो। केवल अपनी स्वतंत्रताके ही लिये नहीं, वरन् सभी की स्वतंत्रता के लिये उत्साह पूर्वक यत्न करो। सभाओं में स्वेच्छाचारिता से काम मत लो। सरल, स्वतंत्र और सहिष्णु बन कर विश्वराज्य के उसी प्रकार वीर बनो, जिस प्रकार हेनरी डेविड थौरो अभिमान पूर्वक कहा करता था—

"किसी भी राज्य के शासन की रीति से
मेरा जीवन अधिक सभ्य और स्वतन्त्र है।"

४. भ्रातृभाव (भाई चारा)

स्वतंत्रता और समानता विश्वराज्य में सभी नागरिकों के कम से कम दावे को प्रगट करती है। किन्तु भ्रातृभाव उनके पाने योग्य अधिक से अधिक दावे को बतलाता है। भ्रातृभाव 'प्रेम' का ही दूसरा नाम है। यह समाज का वह ध्रुवतारा है, जिसकी परिक्रमा सभी नियम और संस्थाएं सदा करती रहती हैं। पृथ्वी की अक्ष सदा ध्रुव तारे की ओर को ही न रहेगी, किन्तु मनुष्य का आत्मा प्रत्येक समय प्रेम के नित्य आदर्श का सच्चा भक्त बना रहेगा। स्वतंत्रता और समानता योग्य अधिकारों की पुकार करती रहती हैं; किन्तु प्रेम योग्य भाग से भी अधिक दे देता है। बटवारे में भाईचारे का नियम यह है कि, "प्रत्येक को अपनी योग्यता के अनुसार काम करना चाहिये और अपनी आवश्यकता

के अनुसार प्रत्येक वस्तु को प्राप्त करना चाहिये।" बच्चे अधिकार के अनुसार नहीं बढ़ते और पलते, वरन् स्वतंत्र और पूर्ण प्रेम से पलते हैं। रोगी धन नहीं कमाता, अतएव न्याय के कठोर नियम के अनुसार वह कोई वस्तु नहीं पा सकता; किन्तु प्रेम न्याय से कहीं अधिक प्रबल है और वह रोगी को स्वस्थ पुरुषों से अधिक दे देता है। कैबेट (Cabet) के इकैरिअन (Icarian) समाज में सब से आरम्भ के अंगूर रोगियों और बच्चों के लिये सुरक्षित रक्खे जाते थे। प्रेम की कोई सीमा नहीं है। प्रेम और स्वतंत्रता की सामानान्तर रेखाएं अन्त में वहीं आकर मिलती हैं। प्रेम केवल अपनी चिन्ता नहीं करता, वरन् सब की करता है। उसको इन्द्रियोंके विषयोंकी चिन्ता नहीं होती, वरन् रुचियों और आत्माके आनन्द की चिन्ता होती है। उसको दूसरे के कष्ट में कष्ट और दूसरे के आनन्द में सुख होता है। वह अधिक बकवास नहीं करता, वरन् प्रत्येक बात को चुपके से देखता और शांति से सेवा करता है। वह सदा ही मुस्कराहट और कोमल शब्दों से भरा होता है। वह दूसरे को अपनी आवश्यकता बिना जनाए भी दूसरे की आवश्यकता को अनुभव करता और जानता है। वह प्रार्थना की प्रतीक्षा नहीं करता, वरन् समय पर स्वयं ही सहायता करता है। वह न्याय नहीं करता, वरन् प्रत्येक बात को समझने के कारण क्षमा कर देता है। वह किसी मूर्ख को मूर्ख और असत्यभाषी को झूठा नहीं कहता। वह न तो शेखी मारता है और न अपने ऋणी को उस ऋण का स्मरण कराता है। वह देता

है और भूल जाता है, फिर देता है और फिर भूल जाता है। वह अपने परिश्रम की मज़दूरी सब के बराबर लेकर भी उसको सब में बांट देता हैं। वह प्रायः 'मेरा' और 'तेरा' नहीं कहता, वरन् 'हमारा' कहा करता है। वह किसी को दोष नहीं देता, किन्तु सबके लिये बहाने निकाल लेता है। चुम्बक जिस प्रकार लोहे को खींच ले ा है, वह उसीप्रकार सबको आकर्षित करता है। वह सब के गुणों को बहुत शीघ्र देखता, किंतु उनके अपराधों को देखने में अत्यन्त आलसी होता है। वह प्रशंसा करने से सदा प्रसन्न होता है, किन्तु निन्दा करने को तयार नहीं होता। वह दूसरों की उत्तम सूक्तियों को बार बार दोहराया करता है, किन्तु वह कही हुई बुरी बातों को दाब देता है। वह सूर्य की धूप के समान प्रत्येक क्षेत्र में जाता है। वह प्रत्येक आकृति को प्रसन्न और प्रत्येक हृदय को प्रफुल्लित करता है। वह सब को यह अनुभव करा देता है कि स्त्री और पुरुष बहुत से नहीं होते, वरन् एक और ऐसे एक होते हैं कि वह अनेक परिवर्तन होने पर भी एक ही बने रहते हैं। वह एक मनुष्यजाति—विश्व-राज्य है, जिसमें सभी रहें, चलें फिरें और व्यवहार करते हैं। इस प्रकार प्रेम को दुहरा उपहार मिलता है। आज उसकी आनन्द और शान्ति के देवदूत के रूप में प्रशंसा की जाती है और कल उसकी उस राज्य के कोने के पत्थर के रूप में प्रशंसा की जावेगी, जिसके नागरिक इस उद्देश्य के अनुसार रहेंगे, "प्रत्येक वस्तु सब के लिये और सब वस्तुएं प्रत्येक के लिये हैं।"

विश्वराज्य के लिये आपका कर्तव्य

विश्व-राज्य के विषय में पीछे बतलाया जा चुका है। किन्तु आप पूछ सकते हैं कि "मैं व्यक्तिगत रूप से विश्व राज्य की स्थापना के लिये क्या कर सकता हूं ?" आप उसके लिये बहुत कुछ कर सकते हैं। इस बात को स्मरण रक्खो कि गुणी और उत्तम शिक्षा प्राप्त बुद्धिवादियों की विश्व-सहयोगिता निश्चय से विश्व-राज्य के फुलिंगे को जलावेगी। ऐंटिओक (Antioch) और कोरिन्थ के छोटे २ ईसाई समाजों ने ही बाइज़ैनटाइन राज्य के लिये मार्ग पारिष्कृत किया था। अब विश्वराज्य को अपने वीरों की आवश्यकता है। आप भी एक ऐसे वीर हो सकते हैं। आज आप अपने कर्तव्य का पालन अपने राष्ट्रीय-राज्य के अन्दर रहते २ करो, किन्तु उसका पालन भावी विश्व-राज्य के नागरिक की भावना में करो। अन्य राष्ट्रों और जातियों के लिये सभी प्रकार की घृणा और निन्दा को बंद करदो। विश्व-इतिहास का अध्ययन करो। यथा सम्भव अधिक से अधिक बार यात्रा करो, एक विश्व-भाषा का अध्ययन करो, विश्व-साहित्य का अध्ययन करो, विदेशियों और अतिथियों की एक सभा बनालो और इस प्रकार स्वयं अपने आप को और अपने मित्रों को विश्व नागरिकता के योग्य बनाओ। अपने नगर में एक विश्व-बन्धुत्व क्लब (Cosmopolitan Club) की स्थापना करो। किसी अन्तर्राष्ट्रीय संसर्ग समिति के सदस्य बन जाओ। जब कि दूसरे घृणा से गुर्राते अथवा बदले के लिये क्रोध करते हैं

तो आप शान्ति का प्रचार करो। जाति अथवा रङ्ग का विचार किये बिना काले और गोरे, भूरे और पीले, शुद्ध यूरोपीय रक्त वालों, यूरोप और एशिया के सम्मिलित रक्त वालों, गृहविहीन जातियों और अफ्रीका की जङ्गली जातियों के सभी स्त्री, पुरुष और बच्चों का अपने घर और हृदय में स्वागत करो। सब के साथ खाओ और पीओ। सब से प्रेम करो, सब की सेवा करो, सब का हित साधन करो, पूंजीवाद और राष्ट्रीयतावाद की निर्दय और अनाचारपूर्ण संस्थाओं का समर्थन मत करो। उनसे यथा-शक्ति अधिक से अधिक दूर रहो। वह निश्चय से नष्ट हो जावेगी। विश्व-सहयोगिता का निर्माण करो। वर्तमान प्रणाली की पार्लियामेण्टों, कौंसिलों, सेनाओं, जलसेनाओं, न्यायालयों, दलों और सम्प्रदायों में भाग मत लो। प्राचीन ईसाई समाज ने रोमन सम्राज्य की संस्थाओं का त्याग किया और उनसे प्रथक् रहे। इस प्रकार काम करते हुए विश्व-राज्य की प्रतीक्षा करते रहो। विश्व-राज्य आज या कल में ही नहीं आवेगा, वह अपने अच्छे समय पर आवेगा। किन्तु यदि आप अब और यहां उसके आदर्श पर जीवन व्यतीत करेंगे तो आप पहिले ही उस राज्य के नागरिक बन जावेंगे। आपका उससे सम्बन्ध है। भले ही आप वर्तमान राष्ट्रीय राज्य में उत्पन्न हुए हो, किन्तु आप उसके नहीं हो। आपका हृदय किसी और ही स्थान पर है, आप टहलते और सोते हुए उस विश्व-राज के विषय में ही विचार करते हो और उसके आने की इच्छा करते

हो। सूर्य प्रातःकाल के समय जब अन्तरिक्ष से नीचे होता है तो देखने में नहीं आता। किन्तु अरुण, पवित्र उषा और प्रकाशित अरोरा को वह पहिले ही भेज देता है और यह सभी सूर्य के समान ही प्रशंसा योग्य हैं। इस युग में आपको इस प्रकार धीरे २ प्रकाशित होने वाले सूर्योदय को देखने की सुविधा मिली है, यद्यपि आपके नेत्र सूर्य को नहीं देख सकते। आपके बेटे और पोते सूर्य के उस प्रकाश और तेज से आनन्दित हो जावेंगे, जो आने वाले दिनों में पृथ्वी को प्रकाशित करेगा। वह सूर्य निर्मल और विशाल, एक और अविभक्त विश्व-राज्य होगा।

"हमारे पार्थिव कार्य नव निर्मित संसार में रहेंगे,
यद्यपि उस समय की जनता हमारे नामों और हमारे
बलिदानों की कहानी को भूल जावेगी।"

....

"यह जहाज़ कौन सी पृथ्वी को जावेगा ?
उसके सभी यात्री जानते हैं कि वह दूर, बहुत दूर है।
वह कौनसी पृथ्वी से यात्रा करके आ रहा है ?
वह केवल यही कह सकते हैं कि वह भी यहां से बहुत दूर है।"

हमारा चतुर्थ ग्रन्थ
शरीर विज्ञान

शरीर धर्म, अर्थ और काम का साधन है । अतएव इसकी रक्षा करना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है । आज पराधीन भारत को तो स्वस्थ नवयुवकों की विशेष विशेष रूप से आवश्यकता है। अतः यह आवश्यकता थी कि 'कला पुस्तक माला' के ग्राहकों को एक उच्च कोटि का ग्रन्थ 'शरीर विज्ञान' के विषय में दिया जाता ।

पाठकों को यह जान कर अत्यंत हर्ष होगा कि कला पुस्तक माला के विद्वान् लेखक 'आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री' न केवल साहित्य, इतिहास, विज्ञान और राजनीति आदि के ही विद्वान् हैं, वरन् वह 'आयुर्वेद' के 'आचार्य' और होमियोपैथी के एम० डी० (M. D.) भी हैं। ऐलौपैथी का भी उन्होंने गम्भीर अध्य-यन किया है। अतः 'शरीर विज्ञान' के सम्बन्ध में उनकी लेखनी को प्रामाणिक समझा जा सकता है ।

इस ग्रन्थ में विकासवाद के अनुसार जीव की शरीर रचना के इतिहास को देते हुए जीवन की वैज्ञानिक परिभाषा और पृथ्वी के आरंभिक प्राणी-वृक्षों का वर्णन किया गया है। क्यों कि पृथ्वी के आरंभिक प्राणी वृक्ष ही थे और वह भी पहिले जल में उत्पन्न हुए थे। फिर प्राणियों के जल से स्थल पर आने का वर्णन करके जीवों द्वारा शरीर की रचना का वर्णन किया गया है। भिन्न-भिन्न प्रकार के सूक्ष्मजीवों अथवा कीटाणुओं(Microbes)

का वर्णन करके शरीर में जीव के प्रधान स्थान—सेल (Cell) के केन्द्र का वर्णन किया गया है। फिर रक्त के लाल सेल, श्वेत सेल, हृदय और उसके कार्य के साथ २ शरीर की रक्तावर्त (Blood circulation) प्रणाली का पूर्ण वर्णन कर दिया गया है। इसके पश्चात् शरीर के श्वास संस्थान के वर्णन में जीवन क्रिया और फुप्फुसों (Lungs) का वर्णन करके मनुष्य शरीर की त्वचा का वर्णन किया गया है।

फिर शरीर की रचना होने की विधि का वर्णन करके उसके प्रथक् २ अंगों की रचना और कार्य विधि का वर्णन किया गया है।

इस विषय में शिर और हाथ पैर, मांसपेशियों और उनकी संचालक नाड़ियों का वर्णन करके पाचन संस्थान के वर्णन में मुख और दांतों का वर्णन किया गया है।

इस ग्रन्थ में भोजन का वर्णन अत्यंत विस्तार से किया गया है। भोजन पचाने की विधि, भोजन और उसके उपयोग, प्रकृति के आश्चर्य जनक भोजन, रोटी और शराब का प्रथक् २ विस्तृत वर्णन किया गया है।

इसके पश्चात् शरीर के नाड़ी संस्थान के वर्णन में शरीर के नाड़ीचक्र और मस्तिष्क के रहस्य को बतलाया गया है। मस्तिष्क के बाएं और दाहिने भाग की रचना का अत्यंत विस्तार से वर्णन किया गया है।

फिर शरीर को चुल्लिका, उपचुल्लिका आदि आश्चर्य जनक

ग्रन्थियों (Glands) का वर्णन करके कर्ण, स्वरयंत्र, आंख, नाक और जिव्हा की रचना का प्रथक् २ विस्तार से वर्णन किया गया है।

अन्त में अन्तःकरण का वर्णन करके अन्तःकरण की मुख्य २ वृत्तियों का भी संक्षिप्त वर्णन कर दिया गया है।

इस प्रकार यह ग्रन्थ शरीर, मन और मस्तिष्क की रचना का आदि से लेकर इति तक का इतिहास भी है।

इस ग्रन्थ को पढ़ कर आप निश्चय से अपने स्वास्थ्य के विषय में अधिक सतर्क रह कर उसकी अच्छी उन्नति कर सकेंगे। स्थान २ पर इस ग्रन्थ में भोजन आदि के परिवर्तन से निरोग रहने के प्राकृतिक नियम भी बतलाए गए हैं। प्राय: सभी विषयों को चित्रों से समझाया गया है।

'कला पुस्तक माला' के अन्य ग्रंथों के समान इसके आर्डर भी हाथों हाथ आ रहे हैं। शीघ्रता कीजिये अन्यथा आगामी संस्करण के लिये ठहरना पड़ेगा।

'कला पुस्तक माला' की प्रत्येक पुस्तक के समान लगभग ४०० पृष्ठ की इस पुस्तक का मूल्य भी ३) ही है। इसमें अनेक चित्र भी हैं। साथ में कपड़े की पक्की जिल्द और तिरंगा टाइटिल है।

हमारा पंचम ग्रन्थ

राष्ट्रनिर्माता मुसोलिनी

आज यूरोप की राजनीति में इटली का स्थान अत्यन्त महत्व-पूर्ण है। आज राजनीति का केन्द्र लन्दन, पेरिस, मास्को, बर्लिन अथवा वाशिंगटन न होकर रोम हो गया है। आज इटली और जर्मनी के अन्दर यूरोप के भावी इतिहास का निर्माण किया जा रहा है। अतः अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के प्रत्येक विद्यार्थी को आज मुसोलिनी और हिटलर के चरित्र को उनसे मतभेद होते हुए भी ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिये।

कला पुस्तकमला ने हिटलर के ऊपर एक अद्वितीय ग्रन्थ रत्न हिन्दी संसार की भेंट किया है, इस समय उसके द्वारा प्रस्तुत ग्रन्थ मुसोलिनी पर दिया जा रहा है।

पूर्व ग्रन्थ के समान इसमें भी पहिले इटली का मुसोलिनी से पूर्व तक का संक्षिप्त इतिहास दिया गया है। इसमें रोम नगर की स्थापना का वर्णन करके रोमन साम्राज्य के इतिहास का इस प्रकार संक्षिप्त वर्णन किया गया है कि उल्लेखनीय घटना एक भी छूटने नहीं पाई है। फिर पूर्वी रोमन साम्राज्य, पश्चिमी रोमन साम्राज्य और पवित्र रोमन साम्राज्य का वर्णन कर के रिनासेंस अथवा साहित्यिक जागृति का वर्णन किया गया है। इटली का इस समय और इसके बाद का इतिहास उसकी परत-न्त्रता के दुःखपूर्ण समय का इतिहास है। इस समय की सब घटनाओं का वर्णन करके चार्ल्स ऐल्बर्ट मैज़िनी, कावूर और

गैरीबाल्डी द्वारा स्वतन्त्रता के लिये किये हुए उद्योग का वर्णन किया गया है। राजा विक्टर एमैनुअल द्वितीय की आधीनता में सन् १८७० में इटली की स्वतन्त्रता का वर्णन करके पोप की व्यवस्था, राजा हम्बर्ट प्रथम और राजा विक्टर एमैनुअल तृतीय के वर्णन में इटली के तत्कालीन परराष्ट्र सम्बन्धों का वर्णन किया गया है।

फिर मुसोलिनी के पूर्वजों का वर्णन करके उसकी बाल्यावस्था, शिक्षा, दीक्षा, अध्यापकी, स्वीज़लैंण्ड के प्रवास, सैनिक शिक्षा, सम्पादन कार्य और अवन्ती नामक पत्र की डायरेक्टरी का वर्णन करके महायुद्ध से पूर्व हुए लीबिया युद्ध का वर्णन किया गया है।

महायुद्ध की अन्तिम घटनाओं के वर्णन के पश्चात् इटली की तत्कालीन विषम राजनीतिक स्थिति, मुसोलिनी के समाजवादियों से सम्बन्ध विच्छेद और उसके नये पत्र का वर्णन किया गया है। मुसोलिनी के महायुद्ध में भाग लेने के पक्ष में प्रचार का वर्णन करके सन् १९१५ ई० की प्रसिद्ध लन्दन सन्धि (London Pact) तथा इटली के महायुद्ध में भाग का वर्णन किया गया है।

फिर मुसोलिनी के महायुद्ध में भाग, उसके घायल होकर युद्ध स्थल से आने और इटली की विजय का वर्णन करके महायुद्ध के वर्णन को समाप्त किया गया है।

फिर 'महायुद्ध के बाद इटली की राजनीतिक दशा' के वर्णन

में फ़ासिस्ट दल के जन्म, वारसाई की सन्धि, सेंट जर्मेन की सन्धि, डी० एननजिओ की फ़्यूम पर चढ़ाई, मुसोलिनी की गिरफ़्तारी, हड़तालों की शृङ्खला, नीती और गिओलिटी के मन्त्री-मण्डल और रैपेलो की सन्धि का वर्णन करके फ़ासिस्टों के साम्यवादियों और समाजवादियों से संघर्ष का वर्णन किया गया है।

फिर 'फ़ासिज्म के अभ्युदय काल' के वर्णन में फ़ासिस्टों की उस उन्नति के कारणों का वर्णन किया गया है, जिससे वह इतने शक्तिशाली हो गये कि रोम पर सैनिक आक्रमण की तयारी करने लगे।

इसके पश्चात् 'रोम की विजय' के वर्णन में मुसोलिनी के इटली का प्रधानमन्त्री बनने का वर्णन करके 'मुसोलिनी की नई सरकार' का वर्णन किया गया है। इसमें वाशिंगटन की शान्ति परिषद्, फ़ासिस्ट मिलिशीया, फ़ासिस्ट ग्रैण्ड कौंसिल, मुसोलिनी के राष्ट्रसुधार के कार्यों, उसकी हत्या के लिये किये गये प्रयत्नों, उसकी बीमारी, उसकी दमन नीति और नई नई सन्धियों आदि का वर्णन किया गया है।

फिर मुसोलिनी के व्यक्तित्व का वर्णन करके फ़ासिज्म के मौलिक सिद्धान्तों, उनके कारपोरेटिव राज्य, उनकी शासन पद्धति और राष्ट्र सङ्गठन का वर्णन किया गया है। इस विषय में इटली की सेना, मिलिशिया, राष्ट्रीय बलिल्ला संघ आदि का वर्णन भी किया गया है।

इसके पश्चात् 'इटली तथा अन्य राष्ट्रों' का वर्णन करते हुए आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय इतिहास के वर्णन में इटली और यूनान (कार्फू) के झगड़े, फ्यूम की समस्या के इतिहास, मुसोलिनी के अन्य अन्तर्राष्ट्रीय कार्यों, इटली और अफगानिस्तान, लोकार्नो पैक्ट (जर्मनी का), चार शक्तियों के समझौते । (१९३३) लोकार्नो पैक्ट के टूटने तथा इटली और आष्ट्रिया के सम्बन्ध का वर्णन किया गया है ।

फिर यूरोप के महायुद्ध से पहिले और पीछे के उपनिवेशों के अङ्कों को देकर इटली के उपनिवेशों के दावे सम्बन्धी विचारों को दिया गया है ।

इसके पश्चात् तीन अध्यायों में ऐबीसीनिया का वर्णन किया गया है । इनमें से प्रथम अध्याय में ऐबीसीनिया का संक्षिप्त इतिहास देकर उसके और इटली के झगड़े का इतिहास भी दिया गया है

इनमें से दूसरे अध्याय में 'ऐबीसीनिया युद्ध' के वर्णन में युद्ध के तत्कालीन कारण, राष्ट्रसङ्घ के हस्तक्षेप और बहिष्कार की आज्ञा का वर्णन कर के इटली ऐबीसीनिया युद्ध का पूरा और विस्तृत वर्णन किया गया है ।

ऐबीसीनिया वर्णन के तीसरे अध्याय का नाम है 'परतन्त्र ऐबीसीनिया की तड़प' । इसमें इटली के सन्मुख राष्ट्रसङ्घ की पूर्ण पराजय का वर्णन करके ऐबीसीनिया के स्वतन्त्रता प्रेमी देशभक्तों द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये किये हुए उन उद्योगों

का वर्णन किया गया है, जो अदीसअबेबा की विजय हो चुकने पर भी तब से लगा कर अब तक किये जाते रहे हैं और आगे भी अवश्य किये जावेंगे। इस सम्बन्ध में दोनों पक्ष की अनेक चढ़ाइयों का वर्णन करके जेनरेल ग्रैज़ियानी पर की हुई बम-वर्षा और ऐबीसीनियनों के लोमहर्षण भीषण हत्याकाण्ड का वर्णन किया गया है।

उपसंहार में मुसोलिनी की एल्बा यात्रा, इटली के अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव, इटली के श्रमिकों, इटली और यूगोस्लाविया की सन्धि, मुसोलिनी की लीबिया यात्रा, स्पेन के युद्ध, इटली और जर्मनी के नये सम्बन्ध, ऐंग्लो इटालियन संधि तथा शस्त्रीकरण की होड़ में इटली की नीति का वर्णन करके ग्रन्थ को समाप्त किया गया है।

इस ग्रन्थ में इटली के अथ से लेकर इति तक के सम्पूर्ण इतिहास के साथ २ मुसोलिनी की विस्तृत जीवन घटनाओं को भी दिया गया है। इससे आपको पता लगेगा कि राष्ट्रों का उत्थान और पतन किस प्रकार हुआ करता है। इससे आपको एक सामान्य लुहार के पुत्र द्वारा इस बीसवीं शताब्दी में भी संसार की प्रधान शक्ति बन जाने के रहस्य का पता लगेगा। इस पुस्तक में देशभक्ति कूट २ कर भरी हुई है। इसको पढ़ते २ आपके हृदय में उत्साह की तरंगें हिलोरें मारेंगी और आप स्वयं भी देशभक्ति के रङ्ग में रंग जाओगे। इटली और मुसोलिनी के सम्बन्ध में ऐसी पूर्ण पुस्तक हिन्दी में तो क्या संसार की किसी

भी भाषा में अभी तक प्रकाशित नहीं हुई।

इसके प्रकाशित होने की घोषणा पहिले से होने के कारण इसके अनेक आर्डर हमारे कार्यालय में पहिले से ही आये हुए हैं। शीघ्रता कीजिये अन्यथा आगामी संस्करण के लिये ठहरना पड़ेगा।

'कला पुस्तक माला' की प्रत्येक पुस्तक के समान लगभग ४०० पृष्ठ की इस पुस्तक का मूल्य भी ३) ही है। इस में अनेक उत्तम २ चित्र, कपड़े की पक्की जिल्द और तिरङ्गा टाइटिल है।

मैनेजर, भारती साहित्य मन्दिर,
चांदनी चौक, देहली।

कला पुस्तक माला के नियम

१—इस पुस्तक माला में कुल बारह ग्रंथों का प्रकाशन होगा और प्रत्येक ग्रंथ में लगभग ३५० पृष्ठ तथा १२ हाफ़टोन ब्लाक कपड़े की पक्की जिल्द में होंगे ।

२—इसके प्रत्येक ग्रन्थ का मूल्य ३) होगा ।

३—॥) प्रवेश की जमा करके स्थायी ग्राहक बनने वाले महानुभावों को इस पुस्तकमाला की प्रत्येक पुस्तक पौने मूल्य में दी जावेगी ।

४—जो स्थायी ग्राहक हमारी प्रति मास भेजी जाने वाली सूचना के साथ प्रत्येक पुस्तक के लिये २।) मनीआर्डर या डाक टिकटों द्वारा अग्रिम भेज देंगे, उन्हें डाक व्यय कुछ नहीं देना होगा ।

५—जो ग्राहक २४॥) मनीआर्डर या चेक द्वारा एक मुश्त भेज देंगे उन्हें बारहों ग्रंथ प्रतिमास बिना डाक व्यय के घर बैठे मिला करेंगे । किंतु यह रियायत केवल १ अक्तूबर १९३७ ई० तक ग्राहक बनने वाले सज्जनों को ही दी जावेगी ।

६—प्रकाशक को ग्रंथों के क्रम तथा नामों आदि में लेखक की सम्मति से परिवर्तन करने का अधिकार होगा ।

मैनेजर—भारती साहित्य मन्दिर, चांदनी चौक, देहली ।

हिन्दी में यह अपने ढंग की निराली पुस्तक है। आज तक हिन्दी में इस विषय पर इतनी रोचक और सुन्दर पुस्तक प्रकाशित नहीं हो सकी है। देखिये इस पुस्तक के विषय में अन्य विद्वान् क्या कहते हैं।

भारतीय सोशिएलिस्ट पार्टी के सर्व प्रधान नेता, अखिल भारतीय केन्द्रीय कार्य समिति के सदस्य, काशी विद्या पीठ के **आचार्य नरेन्द्रदेव** जी लिखते हैं—

"आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री का ग्रन्थ 'हिटलर महान्' देखने में आया। यदि पुस्तक का नाम 'हिटलर महान्' न होकर कुछ और होता तो अच्छा होता। हिटलर अन्तर्राष्ट्रीय जगत की प्रतिक्रियागामी शक्तियों का एक विशेष प्रतिनिधि है। इसलिये उसको 'महान्' कहना अनुचित है। वह हमारे लिये आदर्श नहीं हो सकता।

"यह जानकर मुझको कुछ सन्तोष हुआ कि शास्त्री जी ने हिटलर को एक महान पुरुष के रूप में पेश करते हुए भी उसके दोषों को छिपाने का प्रयत्न नहीं किया है। पुस्तक के लिखने में अच्छा परिश्रम किया गया है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के विद्यार्थियों के लिये पुस्तक उपयोगी है। विशेष कर जर्मनी की राजनीति को समझने में उससे अच्छी सहायता मिलेगी।

नरेन्द्रदेव"

"मदरास का प्रसिद्ध कांग्रेसी पत्र 'हिन्दू' लिखता है:—

"...Even his most hostile critics would admit that if there be one man who did more than any other to revitalise Germany and restore the morale of the German nation, crushed by the Great war and the treaty of Versailles, it was Hitler...To Indians to day the struggle of a brave and virile nation to redeem itself will surely be an interesting study. The present book, giving ample information about Hitler and his contribution to the struggle is bound to be of interest,"

लाहौर का प्रसिद्ध राष्ट्रीय पत्र 'ट्रिब्यून' लिखता है—

"Mr. Shastri's book is a welcome publication for all Hindi-knowing persons. It is one of the best and most thorough books in Hindi on the subject...

...The greatest paradox seems to be that of all the belligerents in the Great war Germany, the vanquished nation, is said to be nearest to the solution of her internal problems, while the victors are still caught in the whirlpool. It is an undeniable fact that Germany has, since the rise of Nazism, progressed at an encredible speed. What-ever the faults and foibles of this theory of national

socialism it cannot be gainsaid that Germany owes her rejuvenation to this doctrine and its principal exponent Herr Adolph Hitler.

The author has discussed all these facts systematically. While, taking nothing for granted, the author takes his start from the earliest period of German history. He does not leave out a single notable event. Thus the book has acquired the rare merit of satisfying the beginner as well as the most well read student of international politics.

The language of the book is chaste Hindi untouched by pedantic expressions or difficult Sanskrit words."

काशी का प्रसिद्ध राष्ट्रीय पत्र 'आज, लिखता है—

"...हिटलर के इन गुणावगुणों का और जर्मनी की समस्या के साथ यूरोप की समस्या को समझाने का प्रशंसनीय प्रयत्न पण्डित चन्द्रशेखर शास्त्री ने किया है। आज जर्मनी और इटली में संसार का 'इतिहास' बनाया जा रहा है, इसे जो देखना और समझना चाहते हैं, उन्हें यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये।"

विश्व मित्र, कलकत्ता—

'लेखक ने जर्मनी सम्बन्धी प्रायः सभी प्रश्नों पर अच्छे ढंग से विचार किया है। हिन्दी में इस प्रकार को राजनीतिक पुस्तकों का सर्वथा अभाव है, अतः लेखक का प्रयत्न प्रशंसनीय है।

इस विषय की हिन्दी में इतनी अच्छी यह पहली ही पुस्तक है ।"

'लोकमान्य' कलकत्ता—

"अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों का ज्ञान रखने वाले छात्रों के लिये पुस्तक बड़े काम की होगी । शास्त्री जी ने हिन्दी में अन्तर्राष्ट्रीय विषय की यह किताब देकर भाषा के एक अंग की पूर्ति में अच्छी सहायता की है । एतदर्थ उनको धन्यवाद है ।"

'नवयुग' देहली ।

"जो लोग हिटलर को समझना चाहते हैं उनको इस पुस्तक से सहायता अवश्य मिलेगी......नाज़ीवाद के प्रवर्तकों के मुंह से उसकी प्रशंसा सुनना इधर उधर से परिचय प्राप्त करने की अपेक्षा कहीं अच्छा है । इस लिये हम पाठकों से अनुरोध करेंगे कि वह इस पुस्तक को अवश्य पढ़ें ।"

'अभ्युदय' प्रयाग—

"कितने हैं जो यह जानते हैं कि वियाना की गलियों में भूखा और प्यासा फिरने वाला यह अनाथ इतना महान् कैसे हो गया । ऐसे महा पुरुष के विषय में जानकारी होना जरूरी है और 'हिटलर महान्' नामक प्रस्तुत पुस्तक से यह सब बातें मालूम हो सकती हैं ।.....पुस्तक में हिटलर की जीवनी के अतिरिक्त जर्मनी के अतीत के इतिहास, उसकी उन्नति और

वर्तमान शासन व्यवस्था पर भी दृष्टि डाली गई है। और उसके अब तक के कार्य दिये गये हैं।

"पुस्तक को उपयोगी बनाने में लेखक ने काफी परिश्रम किया है और इसमें उन्हें सफलता भी मिली है। पुस्तक उपादेय है।"

ब्रह्मा देश की राजधानी रङ्गून का हिन्दी दैनिक **बरमा-समाचार** लिखता है:—

"भारतीय जनमत हर हिटलर और जाग्रत जर्मनी की नीति के विषय में चाहे जो हो, किन्तु नवयुग के निर्माण कर्त्ता नवयुवकों को संसार की क्रान्तियों और राजनीतिक चालबाजियों से अवश्य ही परिचित होना और उनके गूढ़ रहस्यों से अवगत होना है। पुस्तक नवयुवकों के बड़े काम की है। इसके द्वारा उन्हें नाज़ी जर्मनी के हृदय हिटलर और नवजाग्रत जर्मनी की परिस्थितियों का पूरा पता चल जायगा। हिन्दी में ऐसे विषय की पुस्तकों का अभाव नवयुग में खटकता है। जब भारत का राष्ट्रीय संग्राम अखिल विश्व से सम्बन्ध स्थापित करने जा रहा हो और हिन्दी राष्ट्र भाषा हो रही हो, उस समय विदेश विषयक साहित्य की कमी हमारे लिये लज्जा और हानि का विषय हो सकती है। **इस पन्थ में आचार्य जी का कलम उठाना स्तुत्य और युवकों को उत्साहित करने वाला होगा।"**

इतिहास तथा अर्थशास्त्र में अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विद्वान्

प्रोफ़ेसर विनय कुमार सरकार लिखते हैं:—

'As a study in contemporary history Pandit Chandra Shekhar Shastri's **"Hitler the Great"** has appeared to me to be a very fine contribution to Hindi Literature. The author has analysed the special economic and constitutional features of the present regime and placed them all in the perspective of the post war developments in Germany and the world. The presentation is lucid and the author's historical view point is noteworthy'.

हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध इतिहास लेखक **मिश्रबन्धुओं** में से रायबहादुर पं० **शुकदेव बिहारी मिश्र** लिखते हैं:—

"हिन्दी में इस ऊंचे दर्जे के ग्रन्थ कम देखने में आते हैं। बहुत ही उपादेय है। हम शास्त्री जी को ऐसा उच्च ग्रन्थ लिखने पर बधाई देते हैं। ऐसे ग्रन्थों से हिन्दी का शिर ऊंचा होता है। हमारे प्राचीन प्रथानुयायी लोग जहां अभी तक **रामायण और महाभारत की ही गुत्थियां, सो भी प्राचीन नेत्रों से सुलझाने में लगे हैं, वहीं हमारे शास्त्री जी बीसवीं शताब्दी के ग्रन्थ लेखन को चरितार्थ करते हैं।"**

प्रसिद्ध इतिहासज्ञ बैरिस्टर **काशीप्रसाद जायसवाल** लिखते हैं:-

"पण्डित चन्द्रशेखर शास्त्री जी की कला पुस्तक माला उपयोगी है। इस लिये कि दुनिया में इस समय क्या हो रहा है, जिससे बड़े २ देशों मे ऐसे उलट फेर हो रहे हैं कि जैसे रेडियो का निकलना और आधुनिक आकाशयान का चलाना। ऐसी तेज़ी से संसार बदल रहा है कि पलट कर हमको प्रगति की लीक नहीं दीख पड़ती। ऐसी दशा में हमारे देशवासियों को उनका बराबर पता रहना वेद और उपनिषद् के ज्ञान की तरह ऐहिक उपनिषद् द्वारा बाध्य है।

"इस कारण मैं शास्त्री जी की योजना से प्रसन्न हूं। ऐसे ग्रन्थ जितने निकलें और हिन्दी जनता इनको जितने चाव से पढ़े मैं उतना ही देश का अच्छा भाग्य मानूंगा। लाला हरदयाल का ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी है। नए विचार भरे हुए हैं। इसी तरह योरुप के ख़ास २ देशभक्त, जैसे हिटलर और मुसोलिनी, जो अपने देश के भाग्य विधाता हैं—उनका हाल जानना बहुत आवश्यक है। शास्त्री जी उन सब का चरित्र देश के सामने उपस्थित कर रहे हैं, यह बड़ी बात है।"

संसार के प्रसिद्ध विद्वान् **महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज** M. A. प्रिंसिपल गवर्नमेंट संस्कृत कालेज बनारस, लिखते हैं;—

Pandit Chandra Shekhar's presentation is lucid and interesting and is calculated to be highly useful to those, for whom it is intended".

देहली रेडियो स्टेशन

"...लेखक ने काफी अध्ययन और संकलन के बाद पुस्तक लिखी है। सुधार और शिक्षा की दृष्टि से ऐसी पुस्तकों की बड़ी आवश्यकता है, जिनके द्वारा केवल हिन्दी जानने वाले नर नारियों को संसार के महान् राष्ट्रों के आपस में सम्बन्ध और उन्नति की दौड़ का पता रहे।...जर्मनी पन्द्रह वर्ष तक क्यों दासता के बन्धन में जकड़ा हुआ पड़ा रहा और किस प्रकार उसने अपनी खोई शक्ति पाई ये सब बातें भारत जैसे उठते राष्ट्र की उन्नति के लिये बहुत हितकारी हैं।......"

बा० सुमत प्रसाद जैन M. A. L. L. B. ऐडवोकेट नगीना लिखते हैं—

"आपका ग्रन्थ......बहुत अच्छा और शिक्षाप्रद है। एम० ए० में राजनीति मेरा विषय था और जर्मनी के विकास का अध्ययन मैंने विशेषतया किया था। आपके ग्रन्थ ने मेरी जानकारी बहुत बढ़ाई है।

पंडित रामनारायण मिश्र, हेडमास्टर सेंट्रल हिन्दू स्कूल बनारस लिखते हैं:—

"भारतवर्ष के नवयुवक, जो अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से जर्मनी का इतिहास समझना चाहते हैं, उनको इस पुस्तक के पढ़ने से बहुत लाभ होगा। हिटलर के प्रभाव का रहस्य इससे अच्छी तरह मालूम हो जावेगा।"

प्रयाग का साहित्यिक पत्र "चांद" लिखता है—

"संसार की वर्तमान राजनैतिक हलचल को समझने की इच्छा रखने वालों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये ।"

आर्य सार्वदेशिक सभा के प्रधान **महात्मा नारायण स्वामी** जी 'सार्वदेशिक' में लिखते हैं:—

"पुस्तक वास्तव में मूल्यवान् है। यह किसी भी देशवासी में उत्साह का संचार करने वाली और पुरुषार्थ की मात्रा बढ़ाने वाली है। इस पुस्तक से हिन्दी साहित्य में एक अच्छे ग्रन्थ का समावेश हुआ है। छपाई और गेट अप बहुत अच्छा है।"

'जैनमित्र' सूरत

"विद्वान् लेखक ने इस पुस्तक को बड़ी ही खोज बीन के साथ लिखा है। राष्ट्रभाषा में ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय विषयों का विवेचन नहीं के बराबर हुआ है।........यह पुस्तक जर्मनी का ज्ञान प्राप्त करने के लिये पर्याप्त है। इसमें सभी ज्ञातव्य विषयों का समावेश है। भारतीयों को ऐसी पुस्तकें पढ़कर अपने राष्ट्रप्रेम को उन्नत बनाना चाहिये। पुस्तक की भाषा सरल, विवेचन सुगम और पद्धति उत्तम है।"

"श्रद्धानन्द देहली"

"यह पुस्तक प्रत्येक स्वात्माभिमानी भारतीय को ज़रूर पढ़नी चाहिये। इसके पठन से जीवन में एक नई स्फूर्ति, शक्ति तथा ज्योति संचारित होती है।"

हमारा दूसरा ग्रन्थ
आत्म निर्माण

अथवा

विश्व बंधुत्व और बुद्धिवाद

देशभक्त ला० हरदयाल के ग्रन्थ

Hints for Self Culture

के पूर्वार्द्ध के आधार पर

वर्तमान युग वैज्ञानिक युग है। आधुनिक विज्ञान के द्वारा किये हुए आधुनिक आविष्कारों ने न केवल प्रान्तों की, वरन् देशों, महाद्वीपों और महासागरों की सीमाओं तक को तोड़ डाला है। आज समस्त देशों के मनुष्य जाति के नाम पर अधिक से अधिक समीप होने की आवश्यकता है। इस विश्वबन्धुत्व (Cosmopolitanism) के मार्ग में बाधक-समाज, धर्म, जाति और राष्ट्र तक को भूल जाने की आवश्यकता प्रतीत हो रही है। देशभक्ति भी जब तक हमको अन्य देशों के निवासियों से घृणा करने का पाठ सिखाती है इस विश्वबन्धुत्व के मार्ग में बाधक है। यह पुस्तक वास्तव में बुद्धिवाद (Rationalism) और विश्वबन्धुत्व की बाइबिल है। इसके चार खण्ड हैं:—

बुद्धि निर्माण, शरीर निर्माण, ललित रुचि निर्माण और चरित्र निर्माण। प्रस्तुत पुस्तक में आरम्भिक तीन खण्डों को ही दिया गया है।

बुद्धि निर्माण में अनेक प्रकार के विज्ञानों तथा अन्य विद्याओं—गणित, तर्कशास्त्र, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, ज्योतिर्विज्ञान, अकाशज विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान, बनस्पति विज्ञान, प्राणि विज्ञान, विज्ञान के इतिहास. विज्ञान के आरम्भिक सिद्धान्त, इतिहास, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र, दर्शनशास्त्र, समाज विज्ञान, भाषाओं, अन्तर्राष्ट्रीय भाषा अथवा विश्वभाषा और तुलनात्मक धर्मका वर्णन करते हुए उनके अध्ययन की विधि और बुद्धिवाद में उनके प्रयोग का वर्णन किया गया है।

शरीर निर्माण में उत्तम स्वास्थ्य को प्राप्त करने की विधि और ललित रुचि निर्माण में भिन्न २ ललित कलाओं—वातु कला (Architecture), आलेख्यकला (Sculpture), चित्रकला, संगीतकला, वक्तृत्व कला, कवित्व कला और उनके बुद्धिवाद में उपयोग का वर्णन किया गया है।

वास्तव में इस पुस्तक को पढ़कर आप सब प्रकार के अन्यविश्वास तथा रूढ़िपन्थों को छोड़कर प्रत्येक बात पर विशुद्ध वैज्ञानिक ढंग से विचार करना सीख जावेंगे।

देशभक्त ला० हरदयाल की अनुपम लेखनी का चमत्कार देखना हो तो आज ही इस पुस्तक को मंगा कर पढ़ें।

आर्डर हाथों हाथ आ रहे हैं। शीघ्रता कीजिये अन्यथा आगामी संस्करण के लिये ठहरना पड़ेगा।

कला पुस्तक माला की प्रत्येक पुस्तक के लगभग ४०० पृष्ठ की इस पुस्तक का मूल्य भी ३) रूपये ही है। साथ में कपड़े की पक्की जिल्द और सुन्दर टाइटिल है।

मैनेजर—भारतीय साहित्य मन्दिर, चांदनी चौक, देहली।